मानवीय मंत्रालय

अरविन्द तिवारी

विवेक पब्लिशिंग हाउस
जयपुर

मानवीय मंत्रालय : (व्यंग्य संग्रह)

अरविन्द तिवारी

(राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित)

प्रथम संस्करण : 1998
मूल्य : 160 रुपए

प्रकाशक :
विवेक पब्लिशिंग हाउस
धामाणी मार्केट, चौडा रास्ता
जयपुर-302 003

शब्द संयोजन :
अतुल ऑन लाइन कम्प्यूटर्स
92-ए, त्रिवेणी नगर, जयपुर

मुद्रक :
शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर

Manaviya Mantralaya (Satire)

By Arvind Tiwari

व्यंग्यकार को नोबल पुरस्कार

विश्व प्रसिद्ध व्यंग्यकार दारियो फ़ो को 1997 का साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार मिलना इस बात का द्योतक है कि विश्व स्तर पर, व्यंग्य को मान्यता मिल गई है। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि तथाकथित विदूषक को यह पुरस्कार मिल जाएगा। यह घटना, भू-मंडलीकरण और उदारीकरण का परिणाम लगती है, क्योंकि पुरस्कार देने वालों पर व्यंग्य करने में दारियो फ़ो ने कभी, कोई कसर नहीं छोड़ी। खैर, कुछ भी हो, एक बार फिर व्यंग्य ने पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

हिन्दी में लम्बे अर्से से बहस होती रही है कि व्यंग्य विधा है या शैली। स्वर्गीय परसाई, भले ही अपने लेखन को निबन्ध, कहानी आदि कहते रहे हों - लेकिन व्यंग्य को विधा का दर्ज़ा दिलाने वाले वे स्वयं थे। व्यंग्य को 'स्पिरिट' कहने वाले इस अप्रतिम व्यंग्यकार ने, अपने लेखन से व्यंग्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। अब, यह कहना कि व्यंग्य विधा नहीं, शैली हैं, बचकाना सा लगता है। आज व्यंग्य के क्षेत्र में अनेक प्रयोग हो रहे हैं - और ये प्रयोग, व्यंग्य विधा के अंतर्गत ही हो रहे हैं।

इस संग्रह की रचनाओं का चयन करते समय मेरे ज़ेहन में, पूर्व के व्यंग्य संकलनों से श्रेष्ठ रचनाएं देने की आकांक्षा रही है। यह पाठक ही तय करेंगें कि इसमें मैं, कहां तक सफल हो पाया हूं। 'मानवीय मंत्रालय' की 48 रचनाओं में से कम से कम 40 रचनाओं का रचनाकाल 1996-97 रहा है। इनमें से अधिकांश रचनाएं विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछेक बेहद चर्चित हुई हैं। इन रचनाओं के विषय टटके तो हैं ही, साथ ही - प्रश्नों से साक्षात्कार करने की उनकी सामर्थ्य भी पूर्व संकलनों से भिन्न दिखाई देगी। पुराने राजनैतिक क्षत्रपों का टूटना-बिखरना, सत्ता के लिए राजनैतिक दलों के असंगत गठजोड़, साहित्य में शिखर पर चढ़ने के शार्टकट तरीके, विद्रूपताओं की समाज द्वारा सहज स्वीकृति, लोकतंत्र के गंदे फेन में डूबी हुई विकास प्रक्रिया, राजनीति का अपराधीकरण, रोजमर्रा की ज़िन्दगी में बढ़ती हुई त्रासदियां आदि इस संकलन के

विषय हैं।

व्यंग्य इतना लिखा जा रहा है कि व्यंग्य के प्रभावहीन हो जाने का ख़तरा उत्पन्न हो गया है। आज हर व्यक्ति, साधारण व्यंग्य कर सकता है। ऐसी स्थिति में व्यंग्य के क्षेत्र में नए प्रयोग आवश्यक हैं, क्योंकि जब तक व्यंग्य से तिलमिलाहट उत्पन्न न हो, व्यंग्य प्रभावी नहीं होता। समकालीन परिदृश्य ने व्यक्ति को दिशाहीन चौराहे पर लाकर छोड़ दिया है। व्यक्ति की इस भाव-भंगिमा को व्यंग्य कुछ इस ढंग से पकड़ता है कि तिलमिलाहट चलते वह सही मार्ग ढूंढ़ लेता है।

मैं दावा नहीं करता कि ऐसा लेखन मैं कर सका हूं, किन्तु विनम्रतापूर्वक यह कहने का साहस करता हूं कि मैं इस दिशा में पूरी ईमानदारी से, कोशिश अवश्य करूंगा। मेरे लिए व्यंग्य लेखन एक मिशन है। इस मिशन में मैं असफल भी हो सकता हूं, लेकिन यदि कामयाबी मिलती है, तो उसका श्रेय व्यक्तिगत जीवन की विडम्बनाओं को ही दूंगा। जागरूकता लाना व्यंग्यकार का अंतिम उद्देश्य नहीं है। उसकी रचना की सार्थकता इतनी ही है कि वह अपनी पीड़ा को जन-जन की पीड़ा बनाकर, जन-जन तक, उनकी पीड़ा प्रच्छन्न रूप से पहुंचा देता है। इस प्रक्रिया में व्यंग्यकार, अन्य विधाओं के रचनाकारों से कहीं अधिक संवेदनशील हो उठता है।

✍ अरविन्द तिवारी

क्रम

मानवीय मंत्रालय

विश्व इक्कीसवीं सदी के दरवाज़े पर दस्तक दे रहा है, बल्कि यह कहना उचित जान पड़ता है कि विश्व ने दस्तक दे दी है। इक्कीसवीं सदी थोड़ी सी मेकअप में व्यस्त है, सज-संवर कर ही दरवाज़ा खोलेगी। विश्व के अन्य देशों की भांति भारत ने भी उत्तर आधुनिकता ओढ़ ली। साहित्य में यह उत्तर आधुनिकता बाईसवीं सदी के लेबल की चल रही है, ऐसा एक समीक्षक का विचार है। इन समीक्षक महोदय की हालत यह है कि लेख चाहे आलू की पकौड़ी पर ही लिखें, मगर कम से कम पच्चीस बार, उस लेख में उत्तर आधुनिकता शब्द को प्रयोग में लेंगे। यथासंभव वे इस लेख का नाम - 'उत्तर आधुनिक पकौड़ी या कचौड़ी' रख देंगे। उसे बनाने की विधि, वही पुरानी, अट्ठारहवीं सदी की होगी।

खैर, जब सांस्कृतिक विकास अपनी चरम परिणति को प्राप्त कर लेता है, तब मानवीय मूल्यों का ह्रास हो ही जाता है। आज अनेक वरिष्ठ नागरिक, साहित्यकार तथा कुछ सिरफिरे लोग कह रहे हैं कि देश में मानवीय मूल्यों का ह्रास हो गया है। अपसंस्कृति ने भारतीय संस्कृति की मूल धारा को गंगा के पानी की तरह प्रदूषित कर दिया है। "सासू" जी बीमार हैं मगर 'बहू' जी किटी पार्टी में व्यस्त हैं। पूरा घर भूख से परेशान है मगर केबल टी.वी. पर चल रहे कार्यक्रम के कारण, खाना नहीं बन पा रहा है। पड़ौस में मौत हो गई, इसलिए आज टीवी नहीं चलेगा। पूरा घर उदास है - पड़ौसी की मौत पर नहीं, टी.वी. न चला सकने की लाचारी से। सड़क पर घायल व्यक्ति पड़ा है, हमने अपनी गाड़ी इसलिए नहीं रोकी, क्योंकि हमें दफ़्तर पहुंचने की जल्दी थी। ऐसी बात नहीं है कि मानवीयता से हम खाली हैं - वह तो हमारे अन्दर कूट-कूट कर भरी है, लेकिन समय की पाबन्दी हमें घायलों की मदद नहीं करने देती। मानवीय कार्यों के लिए हमने अलग से एक सांस्कृतिक संस्था बना रखी है। घायल व्यक्ति चाहे तो उस संस्था से मदद ले सकता है।

सरकार से कहो, देश में मानवीयता नहीं रही, तो सरकार कहेगी - देश की

पुलिस को मानवीय बनाया जा रहा है। कई राज्यों की पुलिस काफी मानवीय हो चली है - वर्दी पहन कर डकैती करने लगी है। सरकार ने मानवीयता का सम्पूर्ण प्रभार पुलिस को स्वतंत्र रूप से सौंप रखा है। कहीं कोई लाश, घायल व्यक्ति या फिर कोई अन्य अमानवीय हादसा होता है, तो पुलिस ही उससे निपटती है। मानवीयता पर बड़े-बड़े लेख लिखने वाले, दिल दहलाने वाले दृश्य नहीं देख पाते। मानवीयता पर कलम चलाना अलग बात है - मानवीय होना अलग। पुलिस को बहुत-सी जिम्मेदारियां सौंप दी गई हैं, मसलन यदि किसी वर्ष किसी राज्य में बलात्कार के आंकड़े कम पड़ रहे हैं, तो उन्हें स्वाभाविक अंकों तक पहुंचाना, हत्याएं कम हो रही हों तो एनकाउन्टर आदि के बहाने ग्राफ ऊंचा उठाना आदि-आदि। पुलिस कहां-कहां काम करे, फिर मानवीयता वाला मसला अन्य मसलों की तरह निहायत ज़रूरी भी नहीं है, इसलिए पुलिस भी इसे 'सिरियसली' नहीं ले पाती। हर ज़गह पुलिस जूझ रही है, फिर भी कुछ पत्रकार, साहित्यकार पुलिस की मानवीयता पर शक करते हैं। किसी के बेटे का कत्ल हुआ है तो बाप को थाने बुला लिया तो क्या बुरा किया। आजकल लोग क्या नहीं करते परन्तु पत्रकार - भगवान बचाए इनसे - छाप देंगे चोरी के आरोपी की थाने में मौत। तो, क्या पुलिस मानवीय बनने के चक्कर में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना भी छोड़ दे। इससे अच्छा है पुलिस को मानवीय कार्यों की जिम्मेदारी से मुक्त कर दो। मानवता कायम रखने के लिए केवल पुलिस ही बची है क्या ? हम मूलतः मानवीय होते, तो पुलिस की नौकरी में नहीं आते।

घोटालों के कारण आजकल नेताओं की महत्वाकांक्षाएं बढ़ गई हैं। सांसद चुनाव लड़ने से पहले ही संचार घोटाले के सपने देखता है। पहली बार सांसद या एम.एल.ए. बनते ही, हर नेता मंत्री बनना चाहता है। मंत्रालयों में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हुई, मंत्रियों की संख्या अवश्य बढ़ गई है। बिना पोर्टफोलियो के मंत्री भी पाए जाने लगे हैं। अतः नए मंत्रालयों के गठन के बारे में देश की सरकार को विचार करना चाहिए। उन सभी खेमों का पता लगाया जाए, जिनके लिए मंत्रालयों का गठन किया जा सकता है।

अपसंस्कृति के चलते, अधिक नेताओं को संतुष्ट करने के लिए तथा पुलिस पर काम का बोझ कम करने के लिए - एक मानवीय मंत्रालय का गठन - आज की पहली आवश्यकता है। सरकार बार-बार आरोप लगाती है - देश के दफ़्तर अमानवीय हो गए हैं, पुलिस संवेदनहीन हो गई है, जनता उपभोक्ता में बदल

कर यांत्रिक हो गई है। इन समस्याओं से निपटने के लिए मानवीय मंत्रालय की स्थापना हेतु तुरन्त अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता है।

मानवीय मंत्रालय का गठन होने से, एक असंतुष्ट नेता को संतुष्ट किया जा सकता है। वह अगर मानवीय मंत्रालय का मंत्री बनने से कतराए, तो उसे उसके महान होने का हवाला दो - महान व्यक्ति ही मानवीय मंत्रालय संभाल सकता है। उससे कहो आपके अन्दर सदाशयता है, गरीबों के प्रति हमदर्दी है। करुणा का झरना बहता है - आपके हृदय में। इसलिए इस मंत्रालय को आपसे बेहतर कोई नहीं चला सकता।

अगला भी सब समझता है - मुझे मूर्ख बनाया जा रहा है। इतनी करुणा बगैर होती, तो हम चुनाव जीत पाते ? मान लो जीत भी जाते, तो सियासत की काली कलूटी बदरंग सूरत देख कर इस्तीफा न दे देते। हमने चुनाव में करोड़ों रुपए इसलिए तो नहीं खर्च किए कि हमें एक ऐसा मंत्रालय मिले, जिसमें घोटाले के चान्स न के बराबर हों। इस मंत्रालय में रहना है तो चौबीसों घंटे गंभीरता ओढ़नी पड़ेगी। मंत्री होना, न होना बराबर है।

वह, बड़ी हिचकिचाहट के साथ मानवीय मंत्री बनना स्वीकार करेगा - इस उम्मीद में कि एक न एक दिन उसे महत्वपूर्ण मंत्रालय मिल जाएगा। वैसे भी, अनिश्चित लाभ के लिए निश्चित लाभ को छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं होती। हाँ, यह मानवीयता हो सकती है, लेकिन सियासत में मानवीयता का स्थान गौण होता है, फिर चाहे वह मानवीय मंत्री ही क्यों न हो।

उधर सरकार एक प्रेस कान्फ्रेंस आयोजित कर घोषणा कर देगी कि सरकार संवेदनशील हो गई है। पत्रकारों ! देख लो, हमने मानवीय मंत्रालय खोल दिया है। लोकतांत्रिक सरकार का प्रथम कर्त्तव्य दीन-दुखियों, गरीबों, असहायों की सेवा करना है, और हमारी सरकार मानवीय मंत्रालय खोल कर यह सब करने जा रही है। बेशक, महंगाई को हम नहीं रोक पाए, ट्रेन डकैतियां भी बढ़ रही हैं, कश्मीर की समस्या जस की तस है, कावेरी विवाद सनातन है, परन्तु मानवीय मंत्रालय हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है। जब जन प्रतिनिधि यांत्रिक हो गए हों, अधिकारियों के चेहरे पथरा गए हों, दफ़्तर के बाबुओं की संवेदना को काठ मार गया हो - ऐसे में मानवीय मंत्रालय इस देश के लिए रामबाण औषधि है। अब गरीबों को अमीर होने की आवश्यकता नहीं बिना अमीर हुए वे, मानवीय मंत्रालय के जरिए सुख-सुविधा भोग सकेंगे। नवजात शिशु के स्वास्थ्य से लेकर, मरे हुए गरीब के कफ़न

तक की जिम्मेदारी मानवीय मंत्रालय की होगी। मानवीय मंत्रालय के लिए हमने चालू वित्तीय वर्ष में काफी बड़ी रकम का प्रावधान रखा है। इस मंत्रालय के लिए जो संसदीय सलाहकार समिति गठित की है, उसमें कुछ कवि साहित्यकार किस्म के सांसद शामिल हैं, अतः मानवीय मंत्री को कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है।

मानवीय मंत्रालय में नियुक्ति होने पर अफ़सर तथा उनके मातहत कर्मचारी खुश नहीं रह सकते। ऊपरी आमदनी होगी नहीं, ऊपर से हर प्रकार के कार्य करने पड़ेंगे। किसी दफ़्तर के बाहर कुत्ता मरा पड़ा है, मानवीय मंत्रालय में फोन घनघना रहे हैं। सर्दियों में, शहर के भिखमंगों के लिए रैन-बसेरे खोलने का काम मानवीय मंत्रालय ही करेगा। कुल मिलाकर भिखमंगे टाइप के लोगों से सरोकार रखने वाला मानवीय मंत्रालय, किसी भिखमंगे से कम नहीं होगा। बूढ़े बाप को बेटे ने घर से निकाल दिया। मानवीय मंत्रालय की शरण में बूढ़ा बाप जाएगा। बाबू कहेंगे - बाबा! जब तुम्हारे बेटे ही तुम्हें नहीं रख सके, फिर हम तो गैर हैं। अधिकारी बाबू को डांटेंगे - मानवीय मंत्रालय में होकर ऐसी बातें करते हो। अधिकारी, उस बूढ़े को किसी वृद्धाश्रम में भेज देगा। वृद्धाश्रम, कोढ़ी आश्रम, भिखमंगों का रैन बसेरा, निःशुल्क श्मशान घाट इत्यादि का संचालन मानवीय मंत्रालय के जिम्मे होगा। घोटाला करना है तो कफन में करो, लकड़ियों में करो, भिखमंगों की रोटियों में करो - इससे अधिक 'स्कोप' इस मंत्रालय में नहीं है।

बेरोज़गारों को जब कहीं नौकरी नहीं मिलेगी, तो वे मानवीय मंत्रालय में भर्ती हो जाएंगे। एक दोस्त, दूसरे दोस्त को बधाई देगा - कांग्रेचुलेशंस! सुना है तुम किसी सरकारी विभाग में क्लर्क हो गए हो। दूसरा दोस्त कहेगा काहे की नौकरी और काहे का विभाग। मानवीय मंत्रालय के दफ़्तर की क्लर्की से अच्छा था बेरोजगार बना रहता। पहले वाला तसल्ली देगा -जी छोटा मत करो, दूसरे विभाग में तबादला करवा लेना। वैसे सुनते हैं, मानवीय मंत्रालय में कफन घोटाला किया जा सकता है।

लड़की वाले ऐसे दूल्हे को पसन्द नहीं करेंगे, जिसकी नौकरी मानवीय मंत्रालय में हो। वे, अपनी लड़की को युवावस्था में आध्यात्मिक क्षेत्र में नहीं उतारना चाहेंगे। मानवीय मंत्रालय के मंत्री अति व्यस्त रहेंगे। जहां-जहां मौत, तबाही तथा वीभत्स अमानवीय दृश्य उपस्थित होंगे, वहां मानवीय मंत्री का पहुंचना आवश्यक होगा। किसी नए श्मशान घाट का उद्घाटन करवाना है, तो मानवीय

मंत्री से उपयुक्त कोई नेता नहीं होगा। कवि सम्मेलन, मुशायरे आदि मानवीय भावनाओं का उदात्त रूप होते हैं, अतः मानवीय मंत्री को इन कार्यक्रमों का अध्यक्ष बनाया जाएगा। उनके दौरे, कवि सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए ही होंगे। गाड़ी पटरी से उतर जाए, बसें लड़ जाएं, शहर में कुत्ते पागल हो जायें, बन्दर रोटी छीन ले जाए या किसी महिला के सूखते हुए कपड़े उठा ले जाएं, भिखमंगे मर जाएं तो मानवीय मंत्रालय सक्रिय हो जाएगा। आम जनता से जुड़े हुए जितने मसले हैं, मानवीय मंत्रालय के कार्य क्षेत्र में आएंगे।

सरकारी दफ्तरों की हालत और खराब हो जाएगी, मानवीय मंत्रालय बन जाने से। कोई कर्मचारी स्थानान्तरण का प्रार्थना पत्र अपने अधिकारी को लिखेगा - मानवीय आधार पर मेरा स्थानान्तरण कर दिया जावे, तो बाबू उस आवेदन पत्र को मानवीय मंत्रालय में भिजवा देगा, क्योंकि प्रार्थना पत्र में "मानवीय" शब्द आया है। कर्मचारी जब बीसियों चक्कर काट लेगा, तब बाबू बोफोर्स तोप कमीशन के रहस्य की तरह रहस्य खोलेगा - हमने आपका प्रार्थना पत्र मानवीय मंत्रालय भिजवा दिया। वहीं जाकर पर्शू करो। कर्मचारी जब मानवीय मंत्रालय पहुंचेगा, तो वहां का बाबू कहेगा, हम स्थानान्तरण के प्रार्थना पत्रों पर ध्यान देने लगे, तो लावारिश लाशों को ठिकाने कौन लगाएगा। जाओ, दफा हो जाओ यहां से।

कुछ सिरफिरे लोग, जो रिश्वत वगैरह नहीं लेते, और न अधिकारियों को लेने देते हैं, हर दफ़्तर की समस्या हैं। मानवीय मंत्रालय के गठन से इस समस्या का अंत हो जाएगा। किसी भी विभाग का कोई कर्मचारी या अधिकारी ईमानदारी की बीमारी से पीड़ित हो जाए, तो उसका तबादला मानवीय मंत्रालय में करवा दो - वहां ईमानदार व्यक्तियों की ही आवश्यकता है। कफन की सही-सही गिनती, ईमानदार ही कर सकता है।

इस देश की पुलिस का यह हाल है कि एक लावारिश लाश को ठिकाने लगाने के लिए जितनी राशि उसे मिलती है, वह उसकी जेब में सुरक्षित रहती है तथा वह, लाश को भी ठिकाने लगा देता है, नदी में बहाकर। सांप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती।

मानवीय मंत्रालय ऐसा नहीं कर सकता। उसे प्रतिदिन अपनी लोकप्रियता के लिए, प्रेस विज्ञप्ति जारी करनी पड़ेगी - इतनी लाशों का अंतिम संस्कार किया और इतने गरीबों को मुफ्त में खाना दिया।

सरकार के मुखिया को मानवीय मंत्रालय का मंत्री, हर वर्ष बदलना

पड़ेगा। इसके बिना न तो सरकार संवेदनशील हो सकती है और न मंत्रियों के मंत्री बनने की सार्थकता ही सिद्ध हो सकती है। अनुपयोगी पद पर, इक्कीसवीं सदी में कौन रहना चाहेगा। 'रिशिफल' के अभाव में मानवीय मंत्री समस्याएं खड़ी कर देगा। वह प्रेस विज्ञप्ति जारी करेगा कि अन्य मंत्रालय उसको सहयोग नहीं कर रहे। गरीब व्यक्ति की चिकित्सा की सिफारिश अस्पताल नहीं मानते, पुलिस उसके पत्रों पर ध्यान नहीं देती, शहरी विकास मंत्रालय मानवीय मंत्रालय के विरोध के बावजूद झुग्गियां उखाड़ने पर तुला है - आदि-आदि।

मानवीय मंत्रालय की प्रेस विज्ञप्ति से भारतीय जनता, सरकार के खिलाफ हो सकती है और सत्ताधारी पार्टी को आगामी चुनाव में पराजय का मुंह देखना पड़ सकता है। इतनी बड़ी 'रिस्क' कोई पार्टी नहीं ले सकती। अतः मानवीय मंत्री को बदलने के अलावा, कोई अन्य विकल्प नहीं बचेगा। उधर जितने भी मानवीय मंत्री बनेंगे, कालांतर में वे सब साहित्यिक गतिविधियों को प्राप्त हो जाएंगे। मानवीय मंत्री रहते हुए वे, न केवल कवि बनेंगे, अपितु अच्छे समीक्षक भी हो सकते हैं। सरकार के लिए एक सुविधा यह होगी कि वह कवि-लेखक किस्म के आई.ए.एस.अधिकारियों का तबादला मानवीय मंत्रालय में कर देगी - रचते रहो महाकाव्य। मानवीय मंत्रालय में कटु अनुभूतियों की कोई कमी नहीं होगी। दुनिया में जितना दुःख, दर्द, पीड़ा, कांटे, त्रिशूल (ये सभी तत्व साहित्य से संबंध रखते हैं) होते हैं, वे सब मानवीय मंत्रालय में मिल जाएंगे। मानवीय मंत्रालय से रिटायर्ड अधिकारी या कर्मचारी, राजनीति में आने के बारे में सोच भी नहीं सकता। वह देश भक्त हो जाएगा।

मानवीय मंत्रालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का जीवन खतरे में पड़ सकता है। यदि वे किसी पुलिस अफ़सर के खिलाफ शिकायत करते हैं कि अमुक थानेदार क्रूर और अमानवीय हो रहा है, तो वह थानेदार जांच का सामना बाद में करेगा - सर्वप्रथम मानवीय मंत्रालय के शिकायत करने वाले अधिकारी की खबर ले लेगा। अमानवीय.हो ही गए हैं, तो एक अमानवीय कार्य और कर डालें। मानवीय मंत्रालय का अधिकारी के प्राणों पर बन आएगी। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए थोड़ी-बहुत मानवता छोड़ बैठेगा। इस प्रकार मानवीय मंत्रालय भी, अन्य मंत्रालयों की भांति सुस्ती और निकम्मेपन का शिकार हो सकता है।

देश का पारदर्शी हो जाना

इन दिनों देश पारदर्शी हो रहा है। जिसे देखो, वही पारदर्शिता की वकालत कर रहा है। नेता अपने भाषण में, अफसर दफ़्तर में, शिक्षक अपने गेहूं के खाली कनस्तर में, डॉक्टर गुर्दे की स्मलिंग में तथा प्रेमी-प्रेमिकाएं प्रेम में पारदर्शी हो रहे हैं। पारदर्शी होने का फैशन चल पड़ा है। साहित्यकार साहित्य में पारदर्शी हो रहे हैं। "पारदर्शी कहानी" या "पारदर्शी काव्यान्दोलन" का समय आ गया है। कथनी और करनी में अब अन्तर नहीं चलेगा। इस देश ने बहुत पर्दे झेल लिए - अब पर्दे हटाने का समय आ गया है। बोफोर्स के काग़जात मिल गए और यह रहस्य खुल गया कि दलाली को कमीशन नहीं कहा जा सकता ? यह वित्तीय व्यवस्था थी। यह वित्तीय व्यवस्था पूरे देश में लागू हो चुकी है। जैन बन्धुओं की डायरी में दर्ज नाम भी, वित्तीय व्यवस्था का उदाहरण थे। देश की पारदर्शिता को देखते हुए झारखंड मुक्ति मोर्चे के एक सांसद भी परदर्शी हो गए और उन्होंने रिश्वत लेना स्वीकार कर लिया।

नाटक करने वालों से कह दो, अगर मेकअप करना है, तो दर्शकों के सामने करो। हम यह नहीं कहते नकली मूंछ मत लगाओ, परन्तु हम यह अवश्य चाहेंगे कि मूंछ हमारे सामने चिपकाई जाए, और हमें उस गोंद का नाम बताया जाए, जिससे आप मूंछ चिपकाते हैं। हम इस गोंद को डाकघरों और सरकारी दफ्तरों में सप्लाई करवा देंगे। लिफाफे पर लगे गोंद का यह हाल है कि अपने और अपने परिवार के सभी सदस्यों के गले का थूक लगा दो, तो भी नहीं चिपकेगा। यही हाल सरकारी दफ़्तरों के गोंद का है। गोपनीय पत्र पाने वाले को तब मिल जाता है, जब पूरे दफ़्तर को पता चल जाता है, कि अधिकारी को सजा मिली है।

यह उत्तर पारदर्शिता है, हिन्दी उपन्यासों की उत्तर आधुनिकता जैसी। अभी उत्तर पारदर्शिता का समय नहीं आया है। पारदर्शिता लाने में सावधानी बरतनी होगी। पारदर्शिता ऐसी होनी चाहिए कि सांप भी मर जाए, और लाठी भी नहीं टूटे। प्रतिभूति घोटाले की तरह पारदर्शिता चल जाएगी, लेकिन चारे घोटाले

वाली नहीं चलेगी। घोटाला हुआ, यह पता लग जाए, तो फिर आगे पता लगाने की क्या आवश्यकता है। सरकार का काम प्रतिभूति घोटाले का पता लगाना था उसने लगाया। पैसा कहां गया, यह पता लगाना जनता का काम था, क्योंकि महंगे शेयर जनता ने खरीदे थे, सरकार ने नहीं। चारा घोटाला, टेलीफोन घोटाला यूरिया घोटाला आदि में सरकार उत्तर आधुनिक हो गई। सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम भी खोलने लगी। सी.बी.आई. वालों - *क्या आपको इतना भी पता नहीं,* घूंघट धीरे-धीरे उठाया जाता है, चन्द्र कलाओं की तरह। अब ये क्या बात हुई कि पारदर्शी बनाने के चक्कर में, आप हमें नंगा ही कर दो।

राजनीति से लेकर शैक्षिक संस्थानों तक दो शब्दों का प्रचलन बढ़ रहा है। एक पारदर्शिता (ट्रांसपेरेन्सी) दूसरे जवाबदेही (अकाउन्टेबिलिटी) जिसे देखो वही इन दोनों शब्दों पर भाषण झाड रहा है। जवाबदेही के लिए अफसर और नेता जिम्मेदार नहीं होते, जनता होती है। आप हमसे देश का विकास चाहते हो, और आपने हमें बहुमत तक नहीं दिया। त्रिशंकु संसद दे दी। हमारी महानता का बखान करो, जो हमने सरकार बना ली, हमने इतने दिनों चला दी और आगे भी पारदर्शी होकर चलाने की कोशिश करेंगे। अब ये पारदर्शिता कम है कि हम कीमतें बढ़ाने से पहले ही कह दें कि कीमतें बढ़ेंगी।

जनता कहेगी - नेता को पारदर्शी होना चाहिए। सी.बी.आई. वाले अगर मुस्तैदी से काम करें, तो देश के अधिकांश नेता पारदर्शी हो जाएंगे। सम्पत्ति अर्जित करने के जो साधन बताए जाते हैं, वे जनता के गले नहीं उतरते। आपके कृषि फार्म या डेयरी फार्म से अरबों रुपए कैसे पैदा हो गए, हमारी समझ में नहीं आता। हम तो पिछले बीस सालों से बीस भैंसें रख कर डेयरी चला रहे हैं, अभी तक दस लाख भी नहीं बना पाए, और आप उतने में ही करोड़ों बना ले गए। आपके पास जो जादू की छड़ी है, उसे हमें भी दिखाओ।

सरकारी दफ़्तरों में पारदर्शिता गाजे-वाजे के साथ आ रही है। एक जिला शिक्षा अधिकारी (महिला) के दफ़्तर के बाबुओं ने सोचा, केवल पारदर्शी कहने-सुनने से काम नहीं चलेगा - आचरण में पारदर्शिता उतारनी होगी। तबादला करने वाले बाबू ने अपनी सीट के पास एक तख्ती लगवा ली, जिस पर लिखा था - जो सुख चाहो तो, सुख दो। जिले भर की अध्यापिकाएं उस बाबू के पास तबादले की अर्जी लेकर आतीं, और उस आप्त वाक्य को पढ़तीं। जो समझदार होतीं, उनका तबादला हो जाता, शेष महिलाएं उस तख्ती को महिला विरोधी बतातीं। कुछ

अध्यापिकाओं ने विरोध किया और उस बाबू से उस वाक्य का अर्थ पूछा। बाबू ने कहा - मैडम, हम पारदर्शी हो रहे हैं, इस वाक्य का वही अर्थ है, जो आप समझ रही हैं।

मैडम सकते में आ गई, चोरी और सीना जोरी वाली बात हो गई। वे जिला शिक्षा अधिकारी के चैम्बर में घुस गईं, और चेतावनी दी, जिस तरह आपका दफ्तर पारदर्शी हो रहा है, उस तरह, उसे नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह अध्यापिकाओं का मामला है। जिला शिक्षा अधिकारी आजन्म क्ुआंरी थीं, और उम्र के ढलान पर फिसल रही थीं, फिर भी उन्होंने बाबू से स्पष्टीकरण मांगा, क्यों न आपके खिलाफ कार्यवाही की जावे।

बाबू ने स्पष्ट किया - मैडम, यह एक बहुत बड़े आध्यात्मिक स्वामीजी का वाक्य है और नैतिक शिक्षा से जुड़ा हुआ है। यदि जिला विद्यालय नैतिकता से नहीं जुड़ेगा, तो स्कूल कैसे जुड़ेंगे। आपकी रुचि आध्यात्म में नहीं है, अतः आप अपने अनुसार ही व्याख्या करेंगी। इस वाक्य का अर्थ है - यदि किसी से आप अच्छा व्यवहार चाहते हैं, तो उसके साथ अच्छा व्यवहार करें। आप चाहें तो स्वामी जी के प्रवचनों की कैसेट आपको उपलब्ध करवा दूंगा। हमें अपने आध्यात्मिक गुरुओं के उपदेशों पर चलना चाहिए।

जैसाकि सरकारी दफ़्तरों में विवाद का अन्त होता है, समझौता हो गया, जिसके अनुसार आप्त वाक्य के साथ स्वामीजी का नाम आवश्यक रूप से लिखवाना होगा। बाबू ने दो दिन की मोहलत मांगी थी, परन्तु आज तक उस तख्ती पर स्वामीजी का नाम अंकित नहीं हो सका। कहने का आशय यह है कि वह बाबू, पारदर्शिता वाले सिद्धान्त पर अटल है और, उसकी पारदर्शिता हर अध्यापिका समझती है।

सरकारी अस्पताल और गणित के सवाल

सरकारी अस्पताल या मेडिकल विभाग का गणित से कुछ लेना-देना नहीं है। मेडिकल का क्षेत्र तो बायलॉजी से सम्बन्धित है। यह तथ्य सबको पता है, लेकिन आधुनिक चिकित्सा पद्धति और भारत के सरकारी तंत्र के सहयोग से यह धारणा बदल चुकी है। वास्तविकता यह है कि डॉक्टरों से लेकर नर्सों तक का बायलॉजी का ज्ञान संदिग्ध है और उनकी हर गतिविधि में गणित (प्योर तथा अप्लाइड) समझ सकते हैं।

अब हमें इस तथ्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सरकारी अस्पताल और गणित के सवालों का सीधा-सीधा संबंध है, जैसे किसी संयुक्त सरकार का संचालन समिति से होता है। अब गणित पढ़े हुए छात्रों को मेडिकल में प्रवेश देने का कार्य आरम्भ करना पड़ेगा। गणित और सरकारी अस्पताल के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को न्यूनतम साझा कार्यक्रम तैयार करना चाहिए। सरकारी अस्पतालों ने गणित विषय को इतना अधिक महत्व दिया है कि हम अस्पताल के बिना गणित और गणित के बिना अस्पताल की कल्पना नहीं कर सकते।

लाभ-हानि के प्रश्नों को अस्पताल के हिसाब-किताब द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। विक्रय निषिद्ध औषधियां कितने कमीशन से अस्पताल के सामने मेडिकल स्टोर पर बेची जाती हैं और मेडिकल वाले कितने डिस्काउन्ट पर ये दवाइयां मरीजों को बेच देते हैं।

समय और काम के प्रश्न अस्पतालों में भरे पड़े हैं। बैडशीट एक माह में तौलिया बन जाती है। बताओ रूमाल बनने में कितना समय लगेगा। सफाई कर्मचारी एक सप्ताह में एक कमरा साफ करता है, बताओ पूरा अस्पताल साफ करने में उसे कितना समय लगेगा। एक मरीज का खून टेस्ट करने में पेथालॉजिस्ट तीन दिन का समय लेता है, बताओ बीस मरीजों की जांच में कितना समय लगेगा।

प्रतिशत के जितने सवाल सरकारी अस्पताल में बन सकते हैं, उतने जीवन के किसी भी क्षेत्र में नहीं बन सकते। उदाहरण के लिए किसी अस्पताल में प्रतिमाह साठ प्रतिशत मरीज मर जाते हैं, जिनमें चालीस प्रतिशत बीमारी से शेष डॉक्टरों की लापरवाही से, यदि भर्ती हुए मरीज पांच सौ हों, तो बताओ डॉक्टरों की लापरवाही से कितने मरीज मर गए। दूसरा सवाल लें। किसी सरकारी अस्पताल में नसबन्दी के आंकड़ों में से साठ प्रतिशत आंकड़ें फर्जी हैं, यदि उस वर्ष एक हजार ऑपरेशन हुए हों, तो वास्तविक ऑपरेशन कितने हुए। एक अस्पताल में सरकार द्वारा प्राप्त दवाइयों में से पचास प्रतिशत डॉक्टरों के यहां शेष की बीस प्रतिशत कम्पाउण्डरों के यहां, और शेष मरीजों को मिलती है। बताओ मरीजों को कुल कितने प्रतिशत दवाइयां मिलती हैं। सन् उन्नीस सौ सत्तर में पट्टी की चौड़ाई दस सेमी. थी। सन् अस्सी में पांच, और नब्बे में तीन सेमी. रह गई। बताओ सन् दो हजार तक कितनी रह जाएगी। क्या पट्टी की जगह पतली डोरी बांधी जाएगी?

साझे के प्रश्न सरकारी अस्पतालों में बहुत मिलते हैं। मेडिकल स्टोर से लेकर पेथोलॉजी के प्राइवेट उपक्रम तक में डॉक्टरों का साझा रहता है। प्रश्न इस प्रकार हो सकता है - डॉक्टर और उसके पार्टनर ने क्रमशः एक लाख और दो लाख रुपए लगाकर मेडिकल स्टोर खोला। लाभ का दस प्रतिशत डॉक्टर को नुस्खा लिखने के लिए तय हुआ। वर्ष के अंत में यदि कुल लाभ एक लाख रुपया हुआ, तो डॉक्टर को कितना मिला?

गति संबंधी प्रश्न सरकारी अस्पतालों में मिल जाते हैं। एक कम्पाउण्डर प्रतिदिन पांच से.मी. की गति से चमचागिरी के लिए प्रभारी डॉक्टर की तरफ बढ़ रहा है। प्रभारी डॉक्टर दस सेमी. की गति से मुख्य चिकित्साधिकारी की ओर चमचागिरी के लिए बढ़ रहा है। बताओ, एक माह में कम्पाउण्डर और डॉक्टर किस स्थान पर होंगे?

अब अनुपात समानुपात की ओर चलें। ग्लूकोज में असली नकली का अनुपात। एबार्शन में विवाहित-अविवाहित का अनुपात, मिक्शचर में पानी और दवाई का अनुपात, ऑपरेशन की फीस में डॉक्टर और कम्पाउण्डर का अनुपात जैसे हजारों सवाल बन सकते हैं।

सांख्यिकी का सम्पूर्ण ज्ञान अस्पताल में उपलब्ध हो सकता है। किसी मरीज के मरने की संभावना पर पूरा "प्रावेबिलिटी" अध्याय देखा जा सकता है। अलग-अलग डॉक्टरों द्वारा मारे गए मरीजों की संख्या के आधार पर मीन, मीडियन

तथा मोड ज्ञात किया जा सकता है।

कुछ गणितज्ञों की गलत धारणा है कि सरकारी अस्पताल में बीज गणित के प्रश्न नहीं बन सकते। सच तो यह है कि बीज गणित के अनेक अध्यायों का अध्ययन सरकारी अस्पताल में किया जा सकता है। 'एक्स' के किस मान के लिए दवाइयां बाहरी दुकानों पर मिल सकती हैं। यह 'एक्स' का मान दवाइयों की उपलब्धता के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। जब कम्पाउण्डर और नर्सों की फीस का आकलन साथ-साथ किया जाता है, तो यह युगपत समीकरण का सवाल बन जाता है। 'एक्स' का मान कुछ और तथा 'वाई' का मान कुछ और आता है। इनइक्वेलिटी, डिटरमेंट तथा लागरेथम्स के सवालों का अध्ययन अस्पताल के आंकड़ों, क्रियाकलापों और घोटालों से सम्भव है। अस्पताल में घोटालों की कोई कमी नहीं होती।

भ्रष्टाचार ने अस्पतालों में गणित की शाखाएं - उप शाखाएं तथा प्रशाखाएं खोल दी हैं। सही भी है, जब गणितज्ञ अस्पताल में पैदा हो सकते हैं, तो गणित क्यों नहीं पैदा हो सकता। भ्रष्टाचारी अस्पताल में पैदा हो सकता है, तो भ्रष्टाचार क्यों नहीं पैदा हो सकता।

गणित की ज्यामिति शाखा भी सरकारी अस्पताल से अछूती नहीं है। रोगों की अपनी अलग प्रमेय होती है, जिसे डॉक्टर तर्क द्वारा सिद्ध करता है। कई बार प्रमेय नम्बर सात के हल के स्थान पर डॉक्टर प्रमेय नम्बर तेरह लिख देते हैं, परिणाम यह होता है कि बायें हाथ में फ्रेक्चर है, मगर प्लास्टर दायें हाथ में बांध दिया जाता है। या फिर शुगर के मरीज को ग्लूकोज की कई बोतलें चढ़ा दी जाती हैं। पीलिया के मरीज को हैजे की दवा दी जाती है। रोगों की प्रमेय हल करने में अनेक रचनाएं करनी पड़ती हैं, और इन रचनाओं में नर्सों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

जाना गलत संदेश का

इधर राजनीति को न जाने क्या हो गया है, ऐसे शब्दों को काम में ले रही है जिनको आजादी के जमाने में किसी ने काम में नहीं लिया। पारदर्शिता, उदारीकरण, भू-मंडलीकरण, वैश्विकीकरण, जनादेश, नकारात्मक मत, दलित मत आदि-आदि। सुभाष चन्द्र बोस की जन्म शताब्दी के अवसर पर हमने मान लिया कि वे देश प्रेमी थे। कोई बहस नहीं हुई इस मामले में। निराला जन्मशती पर हमने निराला को साहित्यकार मान लिया। प्रेमचन्द को इसी प्रकार का साहित्यकार पहले ही मान चुके हैं। सुभाष चन्द्र बोस को देशप्रेमी, और उनके जन्म दिवस को राष्ट्र प्रेम दिवस घोषित करने में सरकार को काफी मशक्कत करनी पडी होगी - क्योंकि सरकार हमेशा इस बात पर ध्यान देती है कि मतदाता के बीच कहीं गलत संदेश न चला जाए। संदेश को लेकर आज राजनीतिज्ञ विशेष चौकन्ने हैं। वे अपनी पार्टी के नेताओं को खुले आम बादाम खाने की छूट नहीं दे सकते - क्योंकि गलत संदेश जाएगा। इसी गलत संदेश के कारण विधानसभाओं में दो-दो हाथ करने को तरस जाते हैं - विधायक। इधर हमने घूंसा मारा, उधर गलत संदेश चला गया। इधर हमने माइक तोड़ा, उधर गलत संदेश चला गया। जनता कहेगी, इसके विधायक तो कपड़ा फाड़ होते हैं। उनके विधायक कुर्सी तोड़ हैं। तीसरी पार्टी के विधायक भांड हैं। इस निकम्मी राजनीति से ईश्वर रक्षा करे - कुछ भी करो, संदेश साला गलत ही जाता है। हम तो हार मान गए, इस जनता नाम के कम्प्यूटर से, जिसमें गलत संदेश ही फीड किया हुआ है। कम्प्यूटर की यही सबसे बड़ी खामी है।

गांव के वार्ड से लेकर एम.पी., एम.एल.ए. तक के जन प्रतिनिधि सावधान हैं। मतदाता कहता है - बेटे को नौकरी चाहिए, आपने इलेक्शन से पहले वायदा किया था। नेता जी कहेंगे - आहिस्ता बोला भइया, गलत संदेश चला जाएगा। मतदाता भी हैरान है, इस गलत संदेश से - पता नहीं कब, कहां से चला जाए। वह कमरे के किंवाड, खिड़कियां बंद कर देता है, अब तो मेरी बात सुननी होगी। आपके गलत संदेश निकासी के समस्त द्वार बन्द कर दिए मैंने। नेताजी बात नहीं

करेंगे, दीवारों के भी कान होते हैं, मतदाता ने गलत संदेश के बारे में पहले कभी सोचा ही नहीं। उसे याद है राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, मुख्यमंत्री आदि धार्मिक एवं राष्ट्रीय त्यौहारों पर संदेश देते थे, और देते हैं। उनका संदेश कभी गलत नहीं गया, इनका कैसे जा रहा है। नेताजी भारतीय डाक तार विभाग तो है नहीं, जो गलत संदेश प्रेषित कर दें।

एक प्रमुख पार्टी में मन-मुटाव है, पार्टी कार्यालय पर दो परस्पर विरोधी गुट कब्जा करने के लिए कुश्ती लड़ रहे हैं। गाली-गलौज़ और हाथापाई का ऐसा सम्मिश्रण जो विश्व के इतिहास में नहीं है, यहां उपस्थित हो रहा है। तभी एक बुज़ुर्गवार नेता कांपते शरीर के साथ बीच में आ जाते हैं - बन्द करो यह सब, तुम्हें इस बात की चिन्ता नहीं है कि तुम्हारे झगड़े से देश को गलत संदेश जाएगा। कुश्ती रुक जाती है। धूल झाड़ी जाती है और एक-दूसरे को धमकी भरी आंखों से घूरने के बाद कार्यकर्ता तितर-बितर हो जाते हैं। गलत संदेश का डर न होता, तो आज हम तुम्हें ठीक कर देते। बच्चू, देखते हैं मां का दूध कितना पिया है।

''गलत संदेश'' नाम का शब्द राजनीतिक दलों में एकता कायम कर रहा है। पार्टी में फूट होते ही गलत संदेश का हवाला दे दो - पार्टी की फूट कुछ दिनों के लिए टल जाएगी। वैसे अनेक पार्टियों में ऐसे महारथी मौजूद हैं जो गलत संदेश की परवाह नहीं करते। उनकी पार्टी के किसी सदस्य ने उन पर कीचड़ का एक छींटा डाला, तो वे पूरा कीचड़ भरा तालाब लेकर लपक लेते हैं। संदेश सही जाए या गलत, इसकी परवाह किए बिना, वे सामने वाले को तब तक कीचड़ मलते रहते हैं, जब तक उसे पहचाना जा सकता हो। इस कीचड़ युग में गलत संदेश, कुछ दिनों में ही डी.डी.टी. पाउडर की तरह असरहीन हो जाएगा - कितना ही छिड़को मच्छर मरते ही नहीं।

संसद में किसी सरकार के खिलाफ विश्वास मत पर बहस चल रही है। सारा देश, सारे काम-धाम छोड़ कर टी.वी. के आगे बैठा है - गलत संदेश पकड़ने के लिए। जो नेता संसद में, जितनी ज़ोर से बोल रहा है उसका, उतना ही सही संदेश जा रहा है। एक अल्प मत सरकार थी, काफ़ी समझदार। संसद में खूब जमकर बोली। उसके सांसदों ने जब सदन में मेजें थपथपाईं, तो जनता ने टी.वी. के सामने बैठ कर तालियां बजाईं। रात तक बहस चली, परन्तु सरकार को इस्तीफा देना पड़ा - अल्प मत के कारण। दूसरे दिन इस्तीफा देने वाली पार्टी व नेताओं के बयान आए - सरकार गिर गई कोई बात नहीं, संसद की कार्यवाही के दौरान देश

को पार्टी का सही संदेश गया है। नेताओं ने जनता के लिए एक प्रश्न चिन्ह छोड़ दिया है। जनता कहती है - काहे का संदेश, तेरह दिन में तेरह एम.पी. भी नहीं तोड़ पाए, राजनीति ऐसे की जाती है क्या ?

दुबारा मौका मिला तो इतिहास ने अपने आपको दुहराया, सत्ता में रहने वालों को सत्ता मिली, और संदेश देने वालों ने सही संदेश दिया।

कौनसी चीज बड़ी है - सरकार या सही संदेश। दो मत हैं एक तो यह सरकार चल रही, चलती रहेगी भले ही गलत संदेश गया हो। दूसरा मत है - सरकार चली गई कोई बात नहीं, गलत संदेश तो नहीं गया। हमारी समझ में यह छोटी सी बात नहीं आई, तो हमने कवि घसीटाराम की सहायता ली। कवि घसीटाराम ऐसे मौके पर काफी गंभीर हो जाया करते हैं। वे कविता को राजनीति की तरह हल्के ढंग से लेते हैं और राजनीति को कविता की तरह। वे बोले - भइया जिन कवियों के पास अच्छी कविता नहीं होती वे कवि सम्मेलनों में अच्छे कपड़े पहन कर जाते हैं, ताकि वहां जम सकें। उनके पास सही संदेश था और इनके पास बहुमत, अतः उन्होंने देश को सही संदेश दिया और इन्होंने सरकार। दोनों ने देश को कुछ न कुछ दिया है - लिया तो नहीं, आप नाहक ही चिंतित हो रहे हैं।

हमारे एक मित्र जन प्रतिनिधि हैं। हमने कहा - अमुक स्कूल की हालत खराब है, वहां विकास करवाओ, वह आपके क्षेत्र में आता है। वे बोले - यदि मैंने उसका विकास करवाया तो देश में गलत संदेश जाएगा - नेता अपने क्षेत्र में विकास करवा रहा है। भू-मंडलीकरण और विश्वकीकरण के इस ज़माने में सीमित दायरे की बात करना, न आप जैसे साहित्यकार के लिए शोभनीय है और न मेरे जैसे जन प्रतिनिधि के लिए। मैंने कहा - नेताजी आज-कल एक कहावत प्रचलित हो रही है - थिंक ग्लोबली, एक्ट लोकली। वे बोले यह कहावत आपके लिए होगी - हम तो थिंक भी ग्लोबली, करते हैं और एक्ट भी। मैंने कहा - आपको विकास करवाना होगा, क्योंकि उस गांव के मतदाताओं ने आपको जिताया है। वे बोले - रोना तो यही है, उन्होंने हमें वोट नहीं दिया। इसके बावजूद यदि हम वहां विकास करवाते हैं तो हमें वोट देने वालों के बीच गलत संदेश जाएगा - उनकी मदद कर रहा है जिन्होंने उसे धोखा दिया। इस प्रकार, एक बार फिर गलत संदेश के डर से एक क्षेत्र का विकास अवरुद्ध हो गया। एक गांव के स्कूल के विकास करवाने से अलग-अलग गलत संदेश ज़ा रहे थे।

गलत संदेश ने देश के विकास को अवरुद्ध कर दिया है, राजनीतिक दलों

की एकता को बढ़ाया है - यहां तक कि गली-मोहल्ले में भी अपना प्रभाव छोड़ने लगा है। सास-बहुओं के झगड़े इसी गलत संदेश के कारण रुकने लगे हैं। बहू अपनी सास को इसलिए पीटती है कि गलत संदेश चला जाए, परन्तु सास चुपचाप पिटकर किसी को बताती नहीं, फलतः गलत संदेश नहीं जा पाता। आदर्शवादी समाज सेवक, लड़के की शादी में दहेज की चर्चा नहीं करता और लाखों रुपयों का अग्रिम चैक लेने के बाद, बडी सादगी से लड़के की शादी कर लेता है - गलत संदेश के डर से। लेखक, पाठकों में गलत संदेश भेजने का पूरा प्रयास करते हैं, सेक्स के घिनौने चित्र खींच कर, परन्तु आलोचक उन्हें गलत संदेश नहीं भेजने देता। वह कहता है - यह उत्तर आधुनिकता है, जिसे समाज स्वीकार कर लेगा। हमने न जाने क्या-क्या अपने उपन्यास में लिखा - आपने सब पर पानी फेर दिया। किसी ने फेंटेसी कह कर किस्सा खत्म किया, तो किसी ने उत्तर आधुनिकता। यह किसी ने नहीं कहा कि लेखक ने गलत संदेश दिया है। सही बात तो यह है - लेखक को गलत संदेश देना आता ही नहीं।

एक उप चुनाव में, जब एक राजनीतिक दल के नेता को टिकट नहीं मिला तो वह निर्दलीय खडा हो गया। हाईकमान ने उसे समझाया - गलत संदेश जाएगा, बैठ जाओ। उसने कहा - संदेश भले ही गलत चला जाए, विधानसभा में सही व्यक्ति अर्थात मैं ही जाऊंगा। हुआ भी वही। वह निर्दलीय जीत गया। हाईकमान ने दुबारा संदेश भेजा और उसका पार्टी से निलम्बन वापिस ले लिया। बाद में हारे हुए, पार्टी के अधिकृत उम्मीदवार ने पार्टी छोड़ दी। चुनाव जीतना है, तो गलत संदेश की परवाह नहीं करनी चाहिए। चुनाव में न जाने कितने मतदाताओं का वोट गलत चला जाता है, चुनाव टिकट गलत जगह चले जाते हैं, इसलिए गलत संदेश को लेकर इतना हो-हल्ला नहीं करना चाहिए।

तमिलनाडु में जब साड़ियां और सैंडिल बरामद हो रहे थे, तब हमारे मित्र कवि घसीटाराम कह रहे थे - गलत संदेश जा रहा है। मैंने कहा सही संदेश है, जो है, सो है। वे विचलित हुए - अगर मैडम साड़ियां और सैंडिल गरीबों में पहले ही बांट देतीं, तो सोने को लेकर सही संदेश जाता। मैंने कहा - सोना सबसे कीमती होता है कड़के घसीटाराम। उसकी बरामदगी गलत संदेश देती है। वे बोले - अभिनेत्री की नज़र से देखें तो सोना बरामद होना साधारण बात है, अतः एक तरह से उचित ही लगता है। बहुत सी नारियों की कमजोरी होती है - सोना। मैंने उन्हें समझाया कवि महोदय, जन प्रतिनिधि के यहां अगर खाली अटैचियां भी बरामद

होती हैं, तो हमेशा गलत संदेश जाता है। जन प्रतिनिधि कितना भी क्यों न कहें - चुनाव के लिए पार्टी का चंदा मेरे घर रखा था, बात हज़म होने वाली नहीं।

राजनीतिज्ञों और राजनीतिक पार्टियों के सही गलत संदेश भारतीय जनता नहीं समझ पा रही है, बल्कि यों कहना चाहिए, भारतीय जनता ने आजादी के इतने वर्षों के बाद भी राजनीतिक दलों को नहीं समझा है। यही जनता दूर संचार के संदेश आसानी से समझ लेती है। कुछ समय पहले हमारे मौहल्ले के एक प्रेमी का संदेश प्रेमिका को मिलने के स्थान पर उसके भाई को मिल गया। उस गलत संदेश के कारण प्रेमी की इतनी धुनाई हुई कि उसे एक सप्ताह तक अस्पताल में रहना पड़ा। अस्पताल में उसे प्रेमिका का सही संदेश मिला - भविष्य में सही संदेश ही भेजा करें। प्रेमी ने संदेश भेजना ही बंद कर दिया - क्या पता कौन-सा संदेश गलत हो जाए और कौनसा सही। छोड़ो प्रेम का चक्कर - "न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।"

जनता को राजनीतिक दलों के गलत संदेशों पर प्रतिक्रिया करनी चाहिए। उन्हें गलत संदेश देने वाले प्रेमी की तरह सबक सिखाना चाहिए। हमने बहुत झेल लिए आपके गलत संदेश। आप गलत-दर-गलत संदेश दिए चले जा रहे हैं और हम आपको सत्तासीन किए जा रहे हैं। केक्टस और गुलाब का अजीब घालमेल कर दिया आपने, और आप कह रहे हैं - सही संदेश गया है। सूरज पश्चिम से निकलेगा, क्या सही संदेश है यह ? काहे को खाली-पीली देश की जनता का टैम खराब करते हो। राष्ट्र का खजाना खाली है, गेहूं में दलाली है और आपको संदेश देने की पडी है। दस साल पहले तो हमने नहीं सुना था, सही गलत संदेश के बारे में। तब भी संदेश दिए ही जात्ते थे। अब आप दे रहे हैं, तो बार-बार कह रहे हैं, ये संदेश गलत गया और ये संदेश सही।

आपसे तो अच्छे हमारे गांव के इतवारी बुढऊ हैं, आज तक कभी गलत संदेश नहीं दिया। हारी बीमारी, शादी-ब्याह, मौत आदि के संदेश न केवल तत्परता से पहुंचाते हैं अपितु सही-सही पहुंचाते हैं।

फाइव स्टार होटल में हिन्दी

आज़ादी के बाद हमारे देश में कई स्वस्थ परम्पराएं पनपी हैं, इनमें एक बेहद स्वस्थ परम्परा के चलते एयरकंडीशन बंगलों में रहने वाले साहित्यकार, गांव का साहित्य, झोपड़ियों का साहित्य, गोबर का साहित्य, भूख का साहित्य तथा शोषण का साहित्य ऐसे लिख लेते हैं जैसे कोई जादूगर खाली डिब्बे में से एक रूमाल तो क्या एक-दूसरा-तीसरा..... निकालता चला जाता है। खाली डिब्बे में से, रूमाल तो क्या एक चिंदी भी निकल आए, तो आश्चर्य होता है। साहित्य में ऐसे आश्चर्य हो रहे हैं। चिन्दी और हिन्दी में समानता ढूंढ़ी जा रही है।

आज़ादी के बाद हिन्दी और भिंडी पर काफी रिसर्च वर्क हुआ, जिसके तहत हिन्दी और भिंडी, दोनों की अत्यन्त छोटे पौधों वाली नस्ल उगाई जाने लगी है, जिनमें हिन्दी और भिंडी पूरे साइज की लगती हैं। भविष्य की संभावना यह है कि हमारा देश इस तरह की हिन्दी और भिंडी की नस्ल तैयार करने में लगा हुआ है, जिसका पौधा ज़मीन के अन्दर रहे और भिंडियां भी ज़मीन के अन्दर से निकलें।

हिन्दी के सम्बन्ध में साहित्यकार और सरकार काफी परिश्रम कर रहे हैं। अनेक उपन्यास, इस प्रकार लिखे जा रहे हैं कि पाठकों को हिन्दी, उर्दू, अरबी और फारसी सिखायी जा सके, फिर चाहे उसका रूप कुछ भी हो।

दूसरा प्रयोग यह हो रहा है कि हिन्दी को फाइव स्टार होटलों में ले जाया जा रहा है। इन होटलों का स्तर ऊंचा होने के कारण, हिन्दी का भी स्तर ऊंचा हो गया है। इससे अधिक तरक्की हिन्दी कर भी नहीं सकती, क्योंकि छह सितारा होटल अभी भारत में उपलब्ध नहीं है। निराला जैसे कड़के लोगों के बीच निवास करने वाली हिन्दी, करोड़पति लेखकों के साथ रहने लगी है। डनलप के गद्दों पर हिन्दी हिलोरें मार रही हैं। गर्मी, लू, ठंड, आंधी-तूफान आदि से उसका कोई वास्ता नहीं है। कभी चली होगी पगडंडियों पर हिन्दी, अब तो, चौड़े-चौड़े राजमार्गों पर दौड़ रही है। "हिन्दी के ठाठ" पर लिखने का यही उपयुक्त समय है। कहने वाले कहते रहें कि वह अंग्रेजी की नौकरानी है, परन्तु वास्तव में वह महारानी बन चुकी है।

आए दिन, फाइव स्टार होटलों में हिन्दी सम्मेलन आयोजित होते रहते हैं। हिन्दी के विद्वानों के साथ हमें भी एक समारोह में बुला लिया गया। "कुछ लोग हिन्दी की रोटियां खा रहे हैं" की शिकायत हम करते रहते हैं, लेकिन उसी हिन्दी ने हमें फाइव स्टार होटल दिखाया। सम्मेलन में पहुंचने से पहले हमने फाइव स्टार होटल का भ्रमण उसी प्रकार किया, जैसे किसी राजनेता के परिजन सरकारी यात्रा के समय, विदेशों में करते हैं। होटल के शोरूम, स्वीमिंग पूल आदि देख कर हमने हिन्दी को धन्यवाद दिया और कृतज्ञ हो गए। हमारे साथ जेब से फक्कड़, कवि कक्कड़ मौजूद थे। हैसियत के हिसाब से, हम दोनों एक जैसे लग रहे थे, अत. एक-दूसरे से चिपके हुए चल रहे थे।

हमने पूरा होटल घूमने के बाद, आयोजन स्थल अर्थात हॉल में प्रवेश किया। बड़ा एअरकंडीशन हॉल, छोटा सा माइक और बड़े-बड़े विद्वानों के बीच छोटी-सी हिन्दी ऐसे लग रही थी, जैसे कोई प्राचीन संस्कारों वाली लड़की बिकनी पहिने खड़ी हो।

अधिकांश हिन्दी विद्वान फाइव स्टार होटलों में रहने के आदी थे। मेरे जैसे दो-चार धर्मशालानुमा लोग अलग से पहचाने जा सकते थे। हिन्दी की उदारता देखिए, हमें भी बोलने दिया गया।

जब हम हिन्दी की दरिद्रता पर बोल रहे थे, तो सामने मेकअप से परिपूर्ण साहित्यकार महिला ने कटाक्ष किया - आपके माथे पर पसीना क्यों आ रहा है। मैंने तुरन्त माथे पर हाथ फिराया और जब यह विश्वास हो गया कि पसीना नहीं है, तो बड़े आत्म विश्वास से महिला को जवाब दिया - मैडम यह हॉल वातानुकूलित है।

महिला, मेरे भोलेपन पर मुस्कराई जैसे दफ़्तर की अंग्रेजी, दफ़्तर की हिन्दी को देख कर मुस्कराती है। मैंने उस महिला को हिन्दी समझ कर, हिन्दी की धज्जियां उडानी शुरू कर दीं। आयोजकों ने मुझे देख कर मन ही मन कहा - मेरे अंगने में तुम्हारा क्या काम है।

कवि कक्कड़ ने, अपने पुराने सूट की धूल झाड़ते हुए कहा - हिन्दी के कार्यक्रम फाइव स्टार होटलों में नहीं करने चाहिए, क्योंकि फाइव स्टार होटल अंग्रेजी के प्रतीक हैं। वैसे, हिन्दी वाले भी हिन्दी के प्रतीकों को नहीं समझ पा रहे हैं। कक्कड़ की बातें, विद्वानों के पल्ले नहीं पड़ीं।

यह भी कोई बात हुई, आप हमारे यहां आएं, तरह-तरह की मिठाइयां खाएं

और फिर हमें उपदेश दें - मिठाइयां स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं और अपव्यय की प्रतीक हैं।

आयोजकों को यदि पता होता कि मिठाइयां डकारने के बाद भी कवि कक्कड़ उपदेश झाड़ेंगे, तो वे उन्हें नहीं बुलाते। झोला वाले हिन्दी सेवी कभी हिन्दी का भला नहीं कर सकते। सूट की धूल कालीन पर झाड़ने की अशिष्टता का प्रावधान अंग्रेजी में तो खैर है ही नहीं – हिन्दी में भी नहीं है। हॉल में खुले आम जर्दे में चूना लगाना, ताली पीट कर जर्दा खाना हिन्दी में नहीं चलेगा। पाइप सुलगाओ, सिगार पियो और स्तर गिराना चाहते हो, तो सिगरेट तक गिरा सकते हो। बीड़ी वाले हिन्दी को गंदा करते हैं। हिन्दी आजकल साफ-सफाई वाली हो चली है।

फाइव स्टार होटलों में हिन्दी सम्मेलन होने से हिन्दी में खुलापन आया है। कुछ समय पहले तक हिन्दी को "भाभी" कहने पर बुरा मानती थी, आजकल भाभी कहने पर चहकती है। उच्च कोटि के जोक सुना रही है, हिन्दी।

फाइव स्टार होटल में कई टाई-सूट वाले बूढ़े-नौजवान, हिन्दी से मज़ाक करते हुए देखे जा सकते हैं। हिन्दी ने अपना घूंघट उठा दिया है, फैशियल के बाद उसका चेहरा सुन्दर हो गया है।

हिन्दी सम्मेलन के बाद फाइव स्टार होटल में ही डिनर का आयोजन था। इसके लिए हमें कूपन दिए गए थे – बड़ी झिझक के साथ, क्योंकि हमारे कपड़े ही ऐसे थे। बिना कूपन के बेयरा प्लेट नहीं दे रहा था। कवि कक्कड़ अड़ गए - कूपन नहीं दूंगा।

बेयरे ने कहा - आपको खाना नहीं मिलेगा। मैंने कवि कक्कड़ को हिन्दी के नाम पर कोई "विवाद" न खड़ा करने की सलाह देते हुए कहा - कूपन दे दो।

कक्कड़ ने प्लेट में इतना सलाद भर लिया कि अन्य वस्तुओं के लिए जगह ही नहीं रही। सभी हिन्दी सेवी, उनकी इस हिन्दी विरोधी गतिविधि पर हंस रहे थे। एक ने टिप्पणी की - सलाद खाने वालों ने हिन्दी का बेड़ा गर्क कर दिया। उधर भूख से व्याकुल कक्कड़ तेजी से सलाद उदरस्थ कर रहे थे, ताकि अन्य पकवानों के लिए स्थान उपलब्ध हो सके।

डाइनिंग हाल में हिन्दी बहुत खुश थी, क्योंकि अधिकांश हिन्दी सेवी अंग्रेजी में वार्तालाप कर रहे थे। मैं स्वयं वातानुकूलित हॉल को एअरकंडीशन हॉल कह रहा था। एक दक्षिण भारतीय हिन्दी सेवी अंग्रेजी में आक्रोश व्यक्त कर रहे थे। उन्होंने कहा - दक्षिण के एक राज्य में सन पैंसठ के हिन्दी विरोधी

आंदोलनकारियों को पेंशन दी जा रही है। यह राष्ट्र भाषा का अपमान है। हिन्दी भाषी राज्यों को इसके खिलाफ आन्दोलन शुरू करना चाहिए।

डिनर चरते समय, एक भी हिन्दी सेवी हिन्दी विरोधी आन्दोलन जैसे विषय पर चर्चा करने के मूड में नहीं था। वहां, डिशेज को लेकर गंभीर चर्चा हो रही थी। डिनर खत्म करते ही लोग आइस्क्रीम पर टूट पड़े। कवि कक्कड़ ने, इतनी स्वादिष्ट आइस्क्रीम पहली दफे खायी थी, अतः उन्होंने अपनी धारणा बदल दी और कहा - वास्तव में हिन्दी सम्मेलन के लिए फाइव स्टार होटलों से अच्छा कोई स्थान नहीं है।

अब, कक्कड़ को बीड़ी की तलब हो रही थी। वे मुझे खींच कर लॉन में ले आये, ताकि होटल का कर्मचारी उन्हें गलत न समझ बैठे। उन्होंने हिन्दी के नाम पर लगातार पांच बीड़ियां पी लीं। उन्होंने कहा - बीड़ी हिन्दी की प्रतीक है, और सिगरेट अंग्रेजी की। मैंने उन्हें प्रतीकों के चक्कर में न पड़ने की सलाह दी।

कवि कक्कड़ ने फाइव स्टार होटल से लौटने के बाद एक हिन्दी कविता लिखी है, जिसका शीर्षक है - "अहा ! फाइव स्टार भी क्या है।"

सम्मेलन से लौटने के बाद कक्कड़ हिन्दी को हिन्डी कहने लगे हैं, जिसका साम्य भिंडी से बैठता है।

कविता शिविर में - कविता

वह एक कविता शिविर था, जिसमें दूर-दराज और आस-पास के दो दर्जन से अधिक कवि और कवयित्रियां हिन्दी कविता को नई दिशा देने के लिए एकत्रित हुए थे। सौभाग्य से एक दर्जन के करीब कवयित्रियां थीं, जिनमें से सात कवयित्रियां साक्षात कविता थीं। सोचने में जल्दबाजी न करें, क्योंकि सभी कवयित्रियां रूप, रंग और गुण में कविता लगती थीं। जिन सात कवयित्रियों की मैं चर्चा कर रहा हूं, उनके साक्षात कविता होने का कारण, उनका नाम कविता था। सात कवयित्रियों का नाम कविता होने का कारण संभवतः, इसका नाम कविता शिविर रखा गया, अन्यथा नाम तो ढेर सारे थे। उदाहरण के लिए मुझ जैसे तीन तिवारी इस कविता शिविर में मौजूद थे, आयोजक चाहते तो तिवारी शिविर रख सकते थे। रचना शिविर रखा जा सकता था, क्योंकि दो कवयित्रियां ऐसी थीं, जिनका नाम रचना था। अपने नाम को सार्थक करती हुई एक रचना अपने छह माह के शिशु के साथ अपनी रचनाधर्मिता का प्रमाण दे रही थी।

बहुमत कविताओं का था। अतः कविता शिविर नाम दे दिया गया। सभी साहित्यकारों का ध्यान इन सात कविताओं की ओर था। इस शिविर का नाम तार सप्तक भी रखा जा सकता था। सात कविताएं, दो रचनाएं तथा इन कविता और रचनाओं को पढ़ते कविगण, कविता शिविर को सफल बनाने के लिए पर्याप्त थे। फिर भी आयोजकों ने एक समीक्षक को उद्घाटन के लिए बुला लिया।

समीक्षक की यह विशेषता होती है कि वह समीक्षा में रहे या गोष्ठी में, हमेशा कविता या अन्य रचनाओं की धुलाई करता रहता है। समीक्षकजी कविता और रचनाओं को देख कर हैरान थे, क्योंकि वे इतनी तरोताजा लग रही थीं कि समीक्षा नहीं की जा सकती थी। उन्हें बस निहारा जा सकता था। माइक पर खड़े होकर, निहारना अभद्रता होती है। कविता को अपने घर बुलाकर, उसके एक-एक अक्षर से साक्षात्कार करना समीक्षक का गुण-धर्म है। सार्वजनिक स्थल पर इस तरह का साक्षात्कार संभव नहीं था, इसलिए वे माइक पर ही बोले। कवियों की

कविता की धुनाई करते रहे और कवयित्रियों की कविता की प्रशंसा। दोनों बराबर मात्रा में थे, अतः उनके श्रेष्ठ समीक्षक होने पर किसी को सन्देह नहीं रह गया था।

अध्यक्षता करने वाले सज्जन जो, साहित्यकार कम समाज सेवक थे, इस बात से बहुत प्रभावित हुए कि नारियां एवरेस्ट अभियान के बाद कविता में अपने सधे हुए कदम रख रही हैं। उन्होंने कहा कि साहित्य के क्षेत्र में सधे हुए कदम रखना महत्वपूर्ण है - खासकर महिलाओं का। उद्घाटन के अवसर पर टी.वी. कैमरा मैन मौजूद थे और कवयित्रियों पर ही कैमरा केन्द्रित किए हुए थे। कवि बेचारे हीन भावना से ग्रस्त हो रहे थे और बार-बार टी.वी. वालों का ध्यान आकर्षित कर रहे थे। उद्घाटन समाप्त हुआ तो नाश्ता प्रारम्भ हुआ।

नाश्ते के दौरान कवयित्रियां कुछ डॉक्टरनुमा प्रोफेसरों के इर्द-गिर्द मण्डराती रहीं। हिन्दी के इन प्रोफेसरों की खासियत यह होती है कि ये सभी विधाओं की गोष्ठियों में उपलब्ध तो होते ही हैं, साथ में अधिकारपूर्वक बोलते हैं। ये सभी प्रोफेसर, सभी विधाओं में रचनाएं लिख चुके होते हैं, अतः कोई इन्हें चुका हुआ नहीं कह सके - इसलिए गोष्ठियों में बराबर जाते रहते हैं। गोष्ठियों में अपना महत्व बनाए रखने के लिए वे महिला साहित्यकारों को निर्देशन देते रहते हैं।

नाश्ते के बाद अलग-अलग ग्रुपों में कविता पर चर्चा होनी थी। कुछ विषय दिए गए थे - जैसे कविता में प्रेम, कविता का प्रयोजन, कविता में कथातत्व, कविता में व्यथातत्व आदि-आदि। जिन कवयित्रियों का नाम कविता था, उन्हें अलग-अलग समूहों में रखा गया, ताकि सभी कविताएं एक जगह एकत्रित होकर कोई आंदोलन खड़ा न कर दें। सभी ग्रुपों में कवयित्रियों के मौजूद होने के कारण कविता पर चर्चा गंभीर हो गई थी।

सबसे अधिक चर्चा "कविता में प्रेम" पर आधारित रही। इस विषय पर कवयित्रियों ने बढ़-चढ़ कर चर्चा की और गोष्ठी को प्रेममय बना दिया। कुछ ऐसे कवियों को याद किया गया, जिनकी रचनाओं में प्रेम ही प्रेम बिखरा पड़ा था। बाकी विषयों पर नीरस चर्चा हुई। हर सम्भागी अपने मौलिक विचार रख रहा था। कवयित्रियों के विचारों को छोड़ कोई किसी से सहमत नहीं था। कवयित्रियों से सहमत होने की परम्परा आधुनिक हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

सभी ग्रुपों में कुछ लोग ऐसे थे, जिन्हें महानगर में घूमने-फिरने का ऐतिहासिक

कार्यक्रम आयोजित करना था, ताकि इस महानगर की ऐतिहासिकता बरकरार रहे। अतः गोष्ठी का प्रथम सत्र निर्धारित समय से पूर्व ही समाप्त कर देना पड़ा। सत्र की समाप्ति पर भोजन की व्यवस्था थी। यहां भी डॉक्टरनुमा प्रोफेसरों ने कवयित्रियों का सान्निध्य प्राप्त किया। एक बार फिर अन्य लोगों में हीन भावना का संचार हुआ। हीन भावना के कारण अनेक अच्छी-अच्छी कृतियों का जन्म हुआ। अतःकविता शिविर के बाद अच्छी कृतियों के रचे जाने की आशा जगी।

रात को कवि सम्मेलन का आयोजन था। कवि सम्मेलन से पहले डिनर था। रात्रि भोज से पहले अधिकांश कवि "मूड" बनाने चले गए थे। आयोजनस्थल पवित्र था, अतः वहां पीने की अनुमति न देने के कारण, कवियों को परेशानी उठानी पड़ी। कोई प्रेस क्लब चला गया, तो कोई किसी और क्लब। बहरहाल, लोग "मूड" बनाकर ही लौटे। परिणामस्वरूप जहां भोजन में देरी हुई, वहीं कवि सम्मेलन में देरी हो गई। मूड बनाने के बाद कवियों ने जी भरकर प्रेम कविताएं पढ़ीं। कुछ ने तो कवयित्रियों को देख-देख आशु कविताएं पढ़ीं। कुछ कविगण कविता पढ़ते-पढ़ते झपकी लेते देखे गए, तो कुछ कवि हॉल में ही सो गए। कवयित्रियों ने जब रचना पढ़ी तो पूरा हॉल वाह! वाह! से गूंज उठा।

दूसरे दिन, अनौपचारिक गोष्ठी में हर कवि ने हर कवयित्री का परिचय प्राप्त किया और उसके द्वारा रचे गए साहित्य को हिन्दी साहित्य का गौरव बताया। हर कवि अपनी कविता की आलोचना और कवयित्री की कविता की प्रशंसा कर रहा था। एक कवयित्री प्रशंसा के भार से कवियों की ओर झुकी जा रही थी। मैंने अपनी ओर से एक कवयित्री को अपना परिचय देते हुए अपने काव्य संग्रह "सब जानते हैं" का नाम बताया, तो वह चौंक गईं। उसने कहा - कमाल है आपने काव्य संकलन का नाम "सब जानते हैं" रखा है, परन्तु आप को कोई जानता ही नहीं। मैंने विनम्रता से कहा, "मैडम इसलिए तो मैं आपसे परिचय बढ़ा रहा हूं। मेरे कहने के अन्दाज से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि यदि वह मुझे जान जाएगी, तो पूरा हिन्दी संसार मुझे जान जाएगा।

कविता पर चर्चा समाप्त होने से पहले गोष्ठियों की रपट पढ़ी गई। गोष्ठियां फीकी रहीं, परन्तु उसकी रपट बहुत प्रभावशाली ढंग से बनाई थी। रपट में कवयित्रियों को अधिक स्थान दिया गया था, जबकि कवियों के केवल नाम लिखे गए। रपट इस तरह तैयार की गई थी कि हर कवयित्री को महादेवी वर्मा साबित कर दिया गया। रपट में अनेक कवयित्रियों की कविताओं का उल्लेख किया गया था तथा हर

कवयित्री को हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर माना गया था।

शिविर समाप्ति पर अखबारों में अनेक कवयित्रियों के फोटो छपे। जिन कवयित्रियों ने पूरी गोष्ठी में मौन व्रत धारण कर रखा था, अखबार वालों ने उनके भी फोटो छाप दिये।

जन प्रतिनिधि पर निबन्ध

पिछले एक दशक से शिक्षा के क्षेत्र में तहलका मचा हुआ है। रिपोर्ट, सेमीनार, प्रयोग, बालिका शिक्षा, न्यूनतम अधिकतम स्तर, कम्प्यूटर शिक्षा, बस्ते का बोझ और न जाने किस-किस पर, क्या-क्या चर्चा हो रही है। जिस-जिस पर चर्चा हो रही है, उनमें परिवर्तन हो गया है - यह माना जा रहा है। परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए बहस चल रही है। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड चल रहा है। कुल मिलाकर, सरकार बदलने जैसी घटनाएं, शैक्षिक जगत में हो रही हैं। लेकिन जानकार लोग कह रहे हैं - टोपियां बदलने से खोपड़ियां नहीं बदल सकतीं, अतः शिक्षा में परिवर्तन नई बोतल में पुरानी शराब को भरने जैसा है। शिक्षा में कितना ही परिवर्तन क्यों न हो जाए, हिन्दी एक विषय के रूप में स्कूलों में पढ़ाई जाती रहेगी, ताकि अंग्रेजी की महत्ता का एहसास होता रहे। विद्यार्थी जानते हैं कि हिन्दी से निबन्ध को पृथक नहीं किया जा सकता। प्राइमरी शिक्षा से प्रारंभ हुआ हिन्दी निबंध, छात्रों को एम.ए. तक परेशान करता है। निबंध-निबंध है, फिर चाहे वह गाय पर लिखा जाए या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पर।

हमारे प्राइमरी वाले मास्टर कहा करते थे - निबंध क्या है, एक बार लिखना शुरू करो अपने आप खिंचता चला जाता है - इलेस्टिक की तरह। मस्तिष्क में उत्पन्न विचार, निबंध को बिना शर्त समर्थन देते रहते हैं और निबंध किसी निकम्मी सरकार की तरह चलता रहता है। मास्टर जी ने यह भी समझाया था कि जो जी में आए, लिख मारो जैसे निबंध, निबंध न होकर किसी साझा सरकार का न्यूनतम साझा कार्यक्रम हो। वैसे, मास्टर जी की सीख हमारे व्यंग्य लेखन में बहुत काम आ रही है और उधर पाठक, सरकारी घोषणाओं की तरह हमारे लेखन को भी खोखला मान रहे हैं।

एक बार, एक गांव के मेले में हमने बड़ा ही विचित्र कार्यक्रम देखा। तम्बू के आगे बोर्ड लगा था - दो रुपए में देखिए आदमी का जीव। परसाई जी की कहानी "भोलाराम का जीव" से प्रेरित होकर, हम आदमी का जीव देखने चले

गए। तम्बू के अंदर मेज पर एक रोटी का टुकड़ा रखा था - यही आदमी का जीव था। तमाशा दिखाने वाला दर्शकों के पैर पकड़ रहा था - बाहर जाकर मत कहना, यही हमारी रोजी-रोटी है। बाहर किसी ने भी आदमी के जीव का रहस्य नहीं खोला।

बेवकूफ बनने के बाद हर व्यक्ति यह चाहता है - मेरी तरह अधिक से अधिक लोग बेवकूफ बनें। दूसरे दिन आदमी के जीव का कहीं पता नहीं चला, केवल इतना ज्ञात हुआ – अपनी भारतीय पुलिस ने रोटी के टुकडे को खा लिया था। आदमी के जीव वाले व्यंग्य कार्यक्रम को मैं अभी तक नहीं भुला पाया हूं। हिन्दी निबंध में, मैंने जब इस घटना का जिक्र किया, तो मास्टर जी बहुत नाराज हुए। उन्होंने कहा पुलिस और नेता पर निबंध नहीं लिखना चाहिए। बाद में पता चला पुलिस विभाग में कुछ बुद्धिजीवी होते हैं - नेताओं के बारे में हमें पता नहीं।

आज निबंध लेखन के विषयों में परिवर्तन करना समय की मांग है। नई शिक्षा व्यवस्था में पुराने विषय नहीं चलेंगे। कई आधुनिक विषय अपने आप कह रहे हैं - हम पर लिखो, हम मदद करने को तैयार हैं, जैसे कोई महान लेखक और महान बनने के चक्कर में अपने ऊपर रिसर्च करने वाले की मदद करता है।

कुछ विषयों का जिक्र करना शिक्षा विभाग के लिए हितकारी होगा। निबंध के विषयों में "कर्फ्यू के चार दिन", "किसी दंगे का आँखों देखा हाल", "जब मैं नकल करते पकड़ा गया", "हमारे मास्टर जी पर जब मार पड़ी", "पुलिस और बलात्कार", "चारा घोटाला", "हर्षद महान्", "माइकल जेक्शन और भारतीय संस्कृति", "भारत और विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता", "हमारी क्लास की सुन्दर छात्राएं", "जब मैं रेलगाड़ी में बिना टिकट पकड़ा गया", "यदि मैं जन प्रतिनिधि होता" आदि महत्वपूर्ण हैं।

नए विषय बहुआयामी, विविध एवं विचित्र अवश्य लगेंगे, किन्तु जीवन से जुड़े होने के कारण शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद करेंगे। बिना टिकट रेल यात्रा का वर्णन करते हुए लिखो कि कम उम्र में, मैं टिकट लेकर चलता था। समझदार हुआ तो पता चला - प्रति वर्ष रेल भाड़ा बढ़ जाता है, जिसे रोक पाना न रेल मंत्री के वश में था और न मेरे। अतः मैंने बिना टिकट यात्रा आरंभ कर दी। वैसे, मैं टिकट लेकर यात्रा करता, तो भी रेल का बजट फायदे में आने की कोई संभावना नहीं थी, अतः मेरा बिना टिकट का यात्रा का फैसला श्रेयस्कर था। इस प्रकार जब एक बार निबंध चल पड़ेगा, तो नए-नए दृश्य लिखने वाले के जेहन में

उभरते रहेंगे। इन में सुन्दरीयां, टी.टी., जेब कतरे, चने और मूंगफली वाले, दूसरों की वर्थ पर कब्जा करने वाला दादा आदि निबंध में आते चले जाएंगे।

भूमिका थोड़ी लम्बी हो गई, तो कोई बात नहीं, मास्टर जी ने कहा था - अनेक बार निबंध की जगह उसकी भूमिका लिखने से ही नम्बर मिल जाते हैं।

यदि हिन्दी के प्रश्न पत्र में निबंध का विषय - "यदि मैं जन-प्रतिनिधि होता" मिल जाए तो कहना ही क्या। कलम अपने आप चलने लगती है। ठीक वैसे ही, जैसे अपना देश, अपने आप चल रहा है। जन प्रतिनिधि वाला निबंध कहीं से भी शुरू कर दो, कोई फर्क नहीं पड़ता।

मेरी इच्छा राजनीति करने की थी, परन्तु माँ-बाप ने स्कूल में डाल दिया। जन प्रतिनिधि चुनाव में जीतने से पहले स्कूलों में नहीं जाते - मैं चला गया था, इसलिए जन प्रतिनिधि नहीं बन पाया। यदि में जन प्रतिनिधि होता, तो सबसे पहले अपने मास्टर जी का तबादला बहुत दूर करवा देता - ताकि उनकी मनहूस सूरत देखने को न मिलती। जन प्रतिनिधि बनने के बाद, मैं अपने वोटरों को धन्यवाद देता, आश्वासन देता और बदले में उनसे चंदा लेता। जन प्रतिनिधि बनते ही यदि विरोधी दल की सरकार होती तो उसे, और यदि अपने ही दल की सरकार होती तो उसे भी, गिराने की भरपूर कोशिश करता, ताकि मुझे लाभ वाला पद मिल जाए। लाभ वाले पद के अभाव में किसी भी व्यक्ति का जन प्रतिनिधि होना बेमानी होता है। जन प्रतिनिधि बनते ही, उस व्यक्ति का पत्ता साफ करने में जुट जाता, जिसने मुझे टिकट दिलाया था। मैं भारतीय राजनीति के मानदण्डों के अनुसार जिस थाली में खाता, उसी में छेद कर देता।

घोटालों की संभावनाओं का पता लगाता, क्योंकि बिना घोटाला किए हुए जन प्रतिनिधि का होना न होना बराबर है। घोटाला करने में मैं सिद्धहस्त हूं, क्योंकि बचपन से अब तक घरेलू सामान खरीदने में मैंने अनेक घोटाले किए हैं। जब मैं छात्रसंघ का नेता था, तभी से गबन आदि करने का अभ्यास कर लिया था। जन प्रतिनिधि होने के नाते गबन करना जरूरी हो जाता। गबन घोटाले आदि से मैं काफी सम्पत्ति अर्जित कर लेता और अपने रिश्तेदारों के नाम अनेक शहरों में प्लाट खरीद लेता। स्विस बैंक में रकम पहुंचा देता। आजकल सी.बी.आई. की आई साइट में काफी सुधार हो गया बताते हैं, अत. सम्पत्ति को छिपाने के मामले में मैं पूरी सावधानी बरतता। तमिलनाडु की पूर्व मुख्यमंत्री और भारत सरकार के पूर्व संचार मंत्री के घरों में पड़े छापों से मैं सबक ले चुका हूं - अतः नोटों के बंडल,

साड़ियां, चप्पलें आदि मेरे घर से बरामद नहीं होते।

जन प्रतिनिधि होते ही, मैं अपने निकटस्थ तथा दूरस्थ रिश्तेदारों की बेरोजगारी दूर करता, उन्हें लाभ वाले धन्धों में लगा देता। वैसे तो मेरा नाम बचपन से ही परसराम था, लेकिन गरीब होने के कारण मुझे परसू कहा जाता रहा। चुनाव टिकट मिलते ही मुझे परस्या कहा जाता और चुनाव जीतते ही मैं अपने वास्तविक नाम - परसराम के नाम से ही पुकारा जाता। मेरे स्वर्गवासी बाप, जिन्होंने मुझे यह नाम दिया था, लोगों द्वारा पुनः परसराम के नाम से पुकारे जाने पर, स्वर्ग से ही फूलों की वर्षा करते, जो कदाचित प्रदूषण की समस्या के कारण धूल के रूप में मेरे सिर पर गिरते। जन प्रतिनिधि होते ही, मैं अपने बाप को स्वतंत्रता सेनानी घोषित कर देता और कस्बे में उनके नाम का चौराहा, गली और स्मारक बनवा देता। उनके नाम से कस्बे में एक प्राइवेट स्कूल खोलता जिसकी सरकारी ग्रान्ट मैं स्वयं डकार जाता। अध्यापकों को आदर्श, थैलियों में भर-भर कर देता। शीघ्र ही यह छोटा-सा स्कूल मेरे अथक प्रयासों से डिग्री कॉलेज में परिवर्तित हो जाता। हां, बाप के नाम पर यूनिवर्सिटी खुलवाने में काफी दिक़्क़त आती। लेकिन अपना सिद्धांत होता - कोशिश करने में क्या हर्ज़ है।

जन प्रतिनिधि होते ही, मैं अपने मुहल्ले के उन गुंडों की ज़मानत करवा देता, जिन्होंने मुझे जिताने में मदद की थी - फिर भले ही वे कत्ल के जुर्म में बन्द क्यों न होते। बिना गुंडों के, आजकल जन प्रतिनिधित्व हो ही नहीं सकता। सही बात तो यह है कि वह जीत ही नहीं सकता और यदि भाग्य से जीत भी गया, तो कोई काम नहीं करवा सकता। गुंडे हमारे लोकतंत्र का आधार हैं। संविधान में इनका जिक्र नहीं हुआ - हो जाता तो हमारे संविधान में चार चांद लग जाते। कुछ बाते 'ब्रिटेन के संविधान की तरह' परम्परा के रूप में या अलिखित रूप से मान्य हैं। गुंडा तंत्र, अब लोकतंत्र के लिए एक स्वस्थ परम्परा बनती जा रही है। यू.पी. और बिहार के राजनेताओं का यह देश आभार व्यक्त करता है, जिनकी प्रेरणा से ऐसी स्वस्थ और सुदीर्घ परम्परा ने जन्म लिया।

जन प्रतिनिधि, वास्तव में एक दुकानदार होता है। हर बाज़ार में उसकी दुकान होती है। बस स्टैण्ड एवं रेल्वे स्टेशन पर उसके एजेन्ट घूमते हैं। जन प्रतिनिधि बनते ही सबसे पहले मैं स्थानान्तरण की दुकान खोलता और इस दुकान पर अपने छोटे-मोटे चमचों को बैठा देता, वे अर्जियां और उन पर रखा गया भार, मेरे पास भेज देते।

मेरी दूसरी दुकान लाइसेंस चाहने वालों के लिए खोली जाती। जन प्रतिनिधि, जनता की सेवा के लिए होता है - बदले में मेवा आजकल मिलती नहीं, झपटनी पड़ती है। चूंकि सेवा की तुलना में मेवा सर्वाधिक उचित है, अतः मेवा के बिना सेवा की कल्पना करना भी मुश्किल है। हर क्षेत्र में, हर प्रकार की दुकानदारी, जन प्रतिनिधि को करनी पड़ती है - मैं भी करता।

जन प्रतिनिधि की अहम भूमिका है - जनता को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकने की होती है, और इसके लिए उसे धर्म निरपेक्षता का चोला पहनना जरूरी होता है। दंगा होते ही जन प्रतिनिधि अज्ञातवास पर चला जाता है, और तभी प्रकट होता है जब कर्फ्यू लग जाता है। मैं भी पहले दंगे करवाता, फिर शांति समितियां बनाता, जिनमें मेरे ही चमचे होते। मेरे चमचे हर सम्प्रदाय और हर जाति में मौजूद होते।

जन प्रतिनिधि बनने के बाद मेरी रुचि साहित्य, इतिहास और संस्कृति में बढ़ जाती। मैं अपने मुहल्ले के कवि घसीटाराम को राज्य की साहित्य अकादमी का अध्यक्ष बनवा देता, क्योंकि चुनाव के दिनों में मेरे पक्ष में, नए-नए नारे लिख कर उन्होंने अपनी विलक्षण साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया था। अंग्रेजी मुझे आती नहीं है, अतः कई अंग्रेजी के विद्वानों को घर बुलाकर ट्यूशन लेता। बदले में, उनके इच्छित स्थान पर उनका तबादला करवा देता।

एक बार जन प्रतिनिधि हो जाने के बाद मैं अगले चुनावों के लिए तैयार रहता। सबसे पहले पूंजीपतियों से अगले पांच चुनावों के खर्चे का बंदोबस्त करवाता, उसके बाद अपने सम्बन्धियों को पंच, सरपंच, नगर पालिका अध्यक्ष, सहकारी समिति का अध्यक्ष आदि बनवा देता, ताकि मेरी जड़ें मजबूत बनी रहें। जिन सड़कों का राष्ट्रीयकरण हो चुका है उन्हें टूटी-फूटी सिद्ध करके, राज्य परिवहन की बसें बन्द करवा देता और अपनी बसों को उस रूट पर परमिट दिला देता।

जन प्रतिनिधि पर लिखा जाने वाला निबंध दो चार पेज का कैसे हो सकता है, इसके लिए तो पूरी पुस्तक का क्षेत्रफल चाहिए, अतः इस लेख का उपसंहार यहीं करता हूं। यह उपसंहार उसी तरह किया गया है, जैसे किसी लोकप्रिय जन प्रतिनिधि की अपने ही क्षेत्र में चुनाव के दौरान जमानत जब्त हो जाती है।

भूतपूर्व मंत्री पत्नी का अभूतपूर्व पत्र

हे सखि ! यह पत्र, जो मैं तुमको लिख रही हूं, पहले की तरह तीन दिन में नहीं पहुंचेगा। पहले तो इनके मंत्रालय के छपे हुए लिफाफे देखते ही, डाक विभाग पहुंचाने के लिए, किसी चमचे की तरह तत्पर रहता था। अब तो हर चमचे की तरह, डाक विभाग ने भी हमको ठुकरा दिया है। सखि ! इसमें डाक विभाग का कोई कसूर नहीं है, जबसे हमारे "इनका" मंत्री पद छिना है, हमारे अपने ही हमसे कतराने लगे हैं। कल की ही बात है, सड़क पर रास्ते में एक गांव के पास, हमारी गाड़ी खराब हो गई थी। वही पुरानी एम्बेसेडर थी, जिसमें इनके मंत्री बनने से पहले हम लोग घूमते थे। ड्राइवर ने जब तक स्टेपनी बदली, मेरे बच्चे प्यास के मारे तड़फते रहे। हे सखि ! उस गांव का एक भी व्यक्ति हमारे पास तक नहीं आया। अभी भी, मेरे पति उसी क्षेत्र के एम.एल.ए. हैं, परन्तु सरपंच तक अपने घर से नहीं निकला। यह वही सरपंच था, जो राज्य की राजधानी वाले हमारे आवास पर डेरा डाले रहता था। हे सखि ! उस गांव में भी हमें देख कर वीरानगी छा गई थी। लोगों ने अपने घरों के किवाड़ बन्द कर लिए थे। बस्ती के नाम पर वहां भेड़ चराने वाले कुछ लड़के थे, जो हमारी दुर्दशा पर हंस रहे थे। जब हमने उन्हें अपनी ओर बुलाने का इशारा किया, तो वे भेड़ों को हांकते हुए तेज़ी से बहुत दूर निकल गए। हमारे इनके दिल पर क्या बीती होगी, इसका अन्दाजा तुम इसलिए नहीं लगा सकती, क्योंकि तुम्हारे पति राजनीति में नहीं हैं। हे सखि ! तुम्हें तो मालूम ही है कि हमारे "इनको" हाई ब्लड प्रेशर रहता है। सोचा था केबिनेट स्तर के मंत्री बनते ही अमेरिका के ह्यूस्टन अस्पताल में ऑपरेशन हो जाएगा, परन्तु वह सब एक सपना लगता है। अब तो बीमारी बढ़ती जा रही है।

हे सखि ! उस काली रात को याद करती हूं, तो ऐसा डर लगता है जैसे कोई परिवार अपने घर में दिन-दहाड़े पड़ी हुई डकैती को याद कर रहा हो। उस दिन से लगभग पन्द्रह दिन पहले ही, "फेर बदल" की अटकलें शुरू हो गई थीं। "हमारे ये" सचिवालय में बैठ कर, अधिक से अधिक काम निपटाना चाहते थे।

कई अनियमितता के मामलों की भी "लीपापोती" करनी थी। क्योंकि असंतुष्टों का क्या भरोसा मंत्री बनते ही जांच शुरू करवा दें। वे पन्द्रह दिन बड़े अफरा-तफरी के थे। हमारे इनका अधिकतर समय सी.एम. के निवास पर या फिर दिल्ली दरबार की हाजिरी में कटता था। मैं इन्हें शुरू से ही समझाती रही थी, किसी सी.एम. से इतनी घनिष्ठता ठीक नहीं। परन्तु ये मानने वाले कब थे। इनका कहना था कि इन्हीं सी.एम. महोदय की कृपा से मुझे उपमंत्री पद से तरक्की कर, राज्य मंत्री का दर्जा दिया गया है। अतः मैं इनका साथ नहीं छोड़ सकता। हे सखि ! तुम उस व्यक्ति की वेदना का अन्दाज़ा किसी भी तरह नहीं लगा सकती, जिसे कुछ ही माह बाद केबिनेट स्तर का मंत्री बनाए जाने की अटकलें लगाई जा रही हों और फिर यकायक त्यागपत्र देना पड़ जाए। मुख्यमंत्री के त्याग पत्र देते ही हमारे ये "बीमार" हो गए थे। इन्हें "इन्टेसिव केयर यूनिट" में रखा गया था। कुछ अखबार वालों ने खबरों में शीर्षक दिया था "मंत्री पद छिन जाने से बीमार।" बात एकदम सही थी। कई और मंत्री भी मंत्री पद जाने से बीमार पड़ गए थे, परन्तु उन्होंने अपने घर पर ही या दूसरे राज्य में जाकर इलाज कराया। हे सखि ! मुझसे ये भूल हो गई कि मैंने राज्य की राजधानी के अस्पताल में ही इन्हें भर्ती करा दिया। जैसा कि तुम जानती हो ये ब्लड प्रेशर के पुराने मरीज थे और हार्ट अटैक का पूरा-पूरा खतरा था, अतः मुझे और कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया। फिर भी मैंने एक वक्तव्य देकर इस बात का खण्डन किया कि मंत्री पद छिन जाने के कारण ये बीमार हुए। मैंने पत्रकारों को बताया कि इनका स्वास्थ्य पिछले तीन महीनों से खराब चल रहा था, परन्तु ये राज्य की सूखे की भयंकर स्थिति को देखते हुए आराम नहीं करना चाहते थे। मंत्री पद से त्याग पत्र के बाद इन्हें इलाज की फुर्सत मिली है। परन्तु तुम तो जानती हो कि ऐसे वक्तव्य कितने बचकाने होते हैं। मैं क्या करूं, इनके साथ मेरी भी मति मारी गई है। अगर ये पुराने सी.एम. के खास नहीं होते, तो नई मंत्रिपरिषद में इन्हें स्थान मिल सकता था। तुमने अखबारों से जान ही लिया होगा कि कुछ पुराने मंत्रियों को भी नई मंत्रिपरिषद में पुनः स्थान दिया गया है। हमारे ये तो उस "कालू" तांत्रिक के चक्कर में पड़े रहे, जिसने भविष्यवाणी की थी कि इन्हें शीघ्र ही केबिनेट मंत्री पद मिल जाएगा। इसी कोशिश में ये सी.एम. के "नेक्स्ट" हो गए थे। उस "कलुआ" नासपिटे तांत्रिक का अब कहीं पता नहीं है। वो 'मरा' मुझे दिख जाए तो उसकी तो वो गत बनाऊं कि जिन्दगी भर याद रखे।

सखि, तुम्हें डॉली की पिछले वर्ष की शादी की याद तो होगी। कितने

ठाठ से हुई थी वह शादी। सी.एम. से लेकर कई केन्द्रीय मंत्री भी हमारी बेटी की शादी में आए थे। तुम भी आई थी, परन्तु मैं वी.आई. पीज की पत्नियों से घिरे रहने के कारण तुम्हें समय नहीं दे सकी थी। तुम कुछ खिन्न सी हो गई थी और शादी के तुरन्त बाद ही चली गई थी। घर जाकर तुमने बड़ा लम्बा सा शिकायती पत्र भेजा था, जिसे मैंने फालतू वक्त में पढ़ने के लिए रद्दी की टोकरी में डाल दिया था। कल ही उसे निकाल कर पढ़ा है। मेरे आंसू ही नहीं थम रहे हैं। इस पत्र पर जो स्याही फैली सी नजर आ रही है, वे आंसू ही हैं। मैंने अपनी एक बचपन की सहेली का कितना अनादर किया, इसी ग्लानि से दबकर मैं यह पत्र तुम्हें लिख रही हूं। तुम नाराज तो थी, परन्तु तुमने देखा होगा मेरी "बिटिया" डॉली को कितने उपहार मिले थे। आज मैं मन का भेद तुम्हें दे रही हूं। इस शादी में हमारा एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ था। "गिफ्ट की वस्तुओं के अलावा लोग लिफाफे भर कर काफी नोट लाए थे। कुछ हमने ज्यों कि त्यों डॉली के ससुराल वालों को दे दिए, कुछ अपने खर्चे को रख लिए। बारात का "रिसेप्शन" आदि की व्यवस्था भी दूसरों ने ही की थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि लड़का आई.ए.एस. मिल गया था। हे सखि! अब मेरे सामने एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है। मेरी छोटी बच्ची रीता को तो तुम जानती ही हो, कितने उग्र स्वभाव की है। हम एक एम.एल.ए. के रूप में, डॉली जैसा विवाह रीता का नहीं कर सकते। एम.एल.ए. का भी कोई भरोसा नहीं अगले चुनाव में जीते या न जीते। आशंका इस बात की भी है कि इन्हें टिकट ही न मिले। आजकल हाई कमान ने नए मुख्यमंत्री को गोद ले रखा है। रीता की स्थिति यह है कि डॉली के सुखी जीवन को देखती है तो "इन्फीरियरटी कामप्लेक्स" से भर जाती है। हीनता की भावना कुछ भी कर सकती है। हे सखि! तुम तो मनोविज्ञान में एम.ए. हो, इन सब बातों को अच्छी तरह समझती होगी। तुम पिछले वर्ष "टीटू" के बर्थ डे पर नहीं आ सकी थी। आती तो देखती, कितने कीमती उपहार हमारे घर आए थे। "टीटू" के लिए कई ऐसे इलेक्ट्रॉनिक खिलौने लोग दे गए थे, जिन्हें देख कर मेरे पति डर जाते थे, परन्तु "टीटू" अच्छी तरह खेलता रहता था। इस बार उसकी "बर्थ डे" कितनी सूनी-सूनी रहेगी। इन सब बातों को सोच-सोच कर मेरा तो कलेजा मुँह को आ रहा है। बात "टीटू" के बर्थ डे की ही नहीं है, मेरे मायके वालों के कई काम बाकी हैं। मेरे भइया के साले का साला एम.एससी. करके बेकार घूम रहा है। जब ये मंत्री बने थे, तो इन्होंने उसे एक प्राइवेट फैक्टरी में अच्छी "सेलरी" पर रखवा दिया था। इनके मंत्री पद से हटते

ही, उस फैक्टरी के मैनेजर ने उस पढ़े-लिखे नौजवान को दर-दर ठोकरें खाने के लिए नौकरी से हटा दिया। मेरी बहिन का पति कलक्टर है, परन्तु मेरे पति के मंत्री बनते ही उसका सारा घमण्ड जाता रहा, और मैं अतिरिक्त घमण्ड का प्रदर्शन करने लग गई थी। अब मंत्री पद छिनने के बाद मेरी तो नाक ही कट गई है। हे सखि ! उन दिनों की यादें मेरा पीछा ही नहीं छोड़तीं। भूतनी की तरह मुझे रोज-रोज सताती हैं। वे दिन सचमुच ! मेरी जिन्दगी के अनमोल दिन थे। हमारे घर में जिस वस्तु की आवश्यकता होती थी, वह शाम तक उपलब्ध हो जाती थी। उन दिनों हमारे पत्थर भी पानी पर तैरा करते थे। मंत्री तो ये थे, परन्तु मेरी भी कितनी चलती थी, तुम एक घटना से ही जान जाओगी। मेरी नौकरानी का लड़का दसवीं पास हो गया था – थर्ड डिवीजन। नौकरानी मेरे आगे गिड़गिड़ाई। मैंने भी बिना पति को बताए अपनी शक्ति का परीक्षण करने की ठान ली। नौकरानी के लड़के ने सचिवालय में अस्थाई 'क्लर्की' के लिए अर्जी दे रखी थी। जिस दिन इण्टरव्यू था, उसी दिन पता लगा कि उसके अंक कम होने के कारण उसे इण्टरव्यू में ही नहीं बुलाया गया। हे सखि ! यही मौका था मेरी जोर आजमाइश का। मैंने चयन समिति के चेयरमैन को फोन करते हुए कहा कि मैं अमुक मंत्री की पत्नी बोल रही हूं। इसके बाद मैंने उस लड़के के "पर्टीक्यूलर्स" फोन पर बता दिए। हे सखि ! आश्चर्य हो गया। "क्लर्की" का इण्टरव्यू एक दिन के स्थान पर दो दिन तक चला। दूसरे दिन हमारी नौकरानी के लड़के का इन्टरव्यू हुआ, और वह "सलेक्ट" हो गया। नौकरानी के लड़के को इण्टरव्यू में बुलाने के लिए कई और "थर्ड डिवीजनर्स" को भी औपचारिकता के लिए बुलाना पड़ा था। हे सखि ! तुम तो जानती हो कि सचिवालय की क्लर्की के लिए सभी सिफारिश वाले लिए जाते हैं। फेयर सलेक्शन का प्रतिशत कम ही होता है - ऐसा मैंने सुन रखा है। सच्चाई तो राम ही जाने। हे सखि ! जब ये मंत्री थे, तो मैं भी इनके साथ उद्‌घाटन समारोहों में जाती थी। वहां पार्टियों में जो "डिशेज" परोसी जाती थी, उनमें से मैं कम से कम खाती, क्योंकि अधिक खाना अभद्रता का प्रदर्शन होता। अब वे "डिशेज" मेरी आंखों के सामने नाचती हुई मुझे चिढ़ा रही हैं कि तुमने कभी हमें ठुकराया था, अब हमने तुम्हें ठुकरा दिया है।

हे सखि ! सबसे अधिक चिन्ता मुझे अपने पति की है। मंत्री पद जाने के बाद, ये देश में पड़े सूखे की भांति सूखते जा रहे हैं। मंत्री पद वाले दिनों में जितने कुर्ते सिलवाये थे, वे सब ढीले हो चुके हैं। पहले जहां सचिवालय के सेक्रेटरी हाथ

' : माननीय मंत्रालय

बांधे खड़े रहते थे, वहीं अब जिले का कलक्टर भी काम नहीं करता है। ये अगर इस सरकार की शिकायतें करें तो असन्तुष्ट कहलाने लगेंगे। अभी ये असन्तुष्ट बनकर हाईकमान की नजरों से उतरना नहीं चाहते हैं। पहले जैसा समय होता तो पार्टी बदल लेते। दल-बदल विरोधी विधेयक पास हो जाने के बाद देश की राजनीति में ठहराव सा आ गया है। इस ठहराव के शिकार सबसे ज्यादा मेरे पति हुए हैं।

इन दिनों हमारी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं है। जो फैक्टरी हमने बनवाई थी, उसकी मशीनें खरीदने को पैसे नहीं जुटा पा रहे हैं। उस फैक्टरी का विशाल भवन, भुतहा कोठी के समान भांय-भांय करता रहता है। हमारे ये रात-रात भर जागते हैं, परन्तु किसी ठोस योजना पर नहीं पहुंच पाते। अकाल कार्यों का जायजा लेने जाते हैं, तो जनता व्यंग्य बाणों से घायल कर देती है। हे सखि ! ये मेरी किसी बात पर ध्यान नहीं देते। मैंने इन्हें नेक सलाह ही दी थी कि "गौ सेवा संघ" खोल लो, जिससे गायों और अपने घर, दोनों की स्थिति में सुधार हो सकता है। हे सखि ! इनका स्वभाव चिड़चिड़ा और जिद्दी हो गया है। कल ही इन्होंने एक कुर्ता चिथड़े-चिथड़े कर दिया। मन ही मन बड़बड़ाते रहते हैं। कहते हैं कि पार्टी के अन्दर लोकतंत्र समाप्त हो गया है। मैं इनसे कहती हूं कि कोई नया मोर्चा बने, तो उसमें शामिल हो जाओ, लेकिन इनके मन में क्या है यह विधाता ही जान सकता है। हे सखि ! मैं इस पत्र को यहीं समाप्त करती हूं। आशा है तुम अपने परिवार के साथ सुखी होगी और हमेशा सुखी रहोगी, क्योंकि तुम्हारे पति सरकारी अफसर हैं।

भारतीय संस्कृति में गोद का महत्व

भारतीय संस्कृति बड़ी उदार है। इसमें चोर-डाकू, इतिहासकार, साहित्यकार, कलाकार, नेता, अभिनेता, बूथ केप्चरिंग के प्रणेता, पटवारी, ग्राम-सेवक आदि समाहित हैं। हमारी संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व-चिपकाऊ तत्व है। हमारे यहां हर नागरिक में एक चिपकाऊ तत्व होता है। इसी चिपकाऊ तत्व के कारण हमारी भारतीय संस्कृति पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है। विदेशी नागरिक न तो यहां के पर्यटन स्थल देखनेआते हैं और न कत्थक नृत्य ? विदेशी यहां आते हैं – हमारी संस्कृति का चिपकाऊ तत्व देखने।

इस चिपकाऊ तत्व के दर्शन भारत में हर आम और खास आदमी में होते हैं। एक जीप यात्रियों से भरी, बल्कि बुरी तरह भरी चली जा रही है। जीप का ड्राइवर इसे अच्छी तरह भरी कहेगा। विदेशी नागरिक इस जीप को देख कर दंग रह जाएगा। जीप के यात्रियों को देख कर ऐसा लगा कि यात्री गिरने वाले हैं, परन्तु वे गिरेंगे नहीं। विदेशी भावुक हैं, वह जीप ड्राइवर से कहेगा, "स्टाप"? ड्राइवर जीप रोक देगा और विदेशी से कहेगा "तुम भी पीछे लटक जाओ। सीट खाली नहीं है, एक रुपया कम दे देना।" विदेशी कहेगा मुझे यात्रा नहीं करनी है। मैंने यह बताने के लिए जीप रोकी है कि इसमें यात्री गिर सकते हैं और बड़ी दुर्घटना हो सकती है। जीप वाला कहेगा "डोंटवरी"। ये एक-दूसरे से चिपके हुए हैं। देयर इज ए चिपकाऊ तत्व। विदेशी कहेगा "व्हाट डू यू मीन।" ड्राइवर को देर हो रही है। वह विदेशी को बताएगा कि जीप पर सवार यात्रियों में मेग्नेट (चुम्बक) है। इसी मेग्नेट के कारण यात्री एक-दूसरे से चिपके हुए हैं।

विदेशी फिर दंग रह जाएगा। आदमी में इतना शक्तिशाली मेग्नेट कब से होने लगा है। विदेशी अपने घर जाकर फिजिक्स की किताबों के पन्ने पलटेगा। चुम्बकीय प्रभाव के बारे में पढ़ेगा, परन्तु उसे किसी किताब में चिपकाऊ तत्व नहीं मिलेगा। मिले भी तो कैसे। साइंस का ज्ञान सार्व-भौमिक है, जबकि चिपकाऊ तत्व भारत तक ही सीमित है। इसे समझने के लिए भारत में जन्म लेना पड़ता है।

गरीब भारतवासी में यह तत्व सबसे अधिक पाया जाता है।

समर्थ लोग जेक-चैक तथा राजनीति के आधार पर जिन्दगी जी लेते हैं, परन्तु गरीब भारतीय इसी चिपकाऊ तत्व के कारण जिन्दा है।

कल्पना कीजिए – एक्सप्रेस ट्रेन धड़धड़ाती हुई दिल्ली की ओर चली जा रही है। ट्रेन में तिल भर भी खाली जगह नहीं है। भारतीय यात्री अपनी संस्कृति के चिपकाऊ तत्व के कारण फुटबोर्ड पर यात्रा कर रहे हैं। ड्राइवर कितनी ही गति से क्यों न बढ़ाए, ये लोग गिरने वाले नहीं हैं। यहां तक तो चलता है, परन्तु आश्चर्य तो उन लोगों को देख कर होता है, जो इस एक्सप्रेस गाड़ी की छत पर बैठ कर यात्रा कर रहे हैं। वे सोये हुए हैं। सोये भी ऐसे, जैसे घोड़े बेच कर सो गए हैं। गाड़ी हिचकोले खा रही है, मगर इनकी नींद नहीं खुलेगी।

ट्रेन की छत पर वे ऐसे चिपके हैं, जैसे फेविकोल लगाकर चिपका दिए गए हों। फेविकोल का जोड़ बडा मजबूत होता है। हाथी भी नहीं तोड़ सकता।

भारत में चिपकाऊ तत्व हर क्षेत्र में है। नेताओं में सबसे अधिक चिपकाऊ तत्व पाया जाता है। वे कुर्सी से चिपक जाते हैं, तब उन्हें हटाना मुश्किल होता है। वे नेता बदल लेंगे, दल बदल लेंगे, चुनाव क्षेत्र बदल लेंगे, सिद्धान्त बदल लेंगे, चमचे बदलेंगे, बंगले बदलेंगे – यहां तक कि टोपी बदल लेंगे, परन्तु कुर्सी नहीं बदलेंगे। संगठन हो या सरकार, वे आसानी से पद छोड़ने वाले नहीं। सी.बी.आई. कितनी ही बड़ी चार्जशीट क्यों न तैयार कर ले।

जब एक विदेशी को यह पता चला कि भारत में पूरी उम्र एक पत्नी, अपने पति के साथ रह लेती है, तो वह मुंह फाड़कर बोला - "हाऊ"? हमने कहा "ताऊ ये इण्डिया का कल्चर है चिपकाऊ।" इसी तत्व के कारण तलाक वगैरह नहीं के बराबर होते हैं। हमारे यहां लोग इस मामले में "एडवेंचर" से परहेज करते हैं। माँ-बाप ने, जहां, जिसके साथ गोंद लगाकर चिपका दिया, वहीं जिन्दगी गुजार दी।

भारतीय क्रिकेट के खिलाड़ी भारतीय टीम से चिपके रहते हैं। उम्र रिटायर होने की होती है, मगर इण्डिया का चिपकाऊ तत्व उन्हें टीम से अलग नहीं होने देता। खेल प्रेमी कहते हैं - "अब तो रिटायर हो जाइए।" वे कहते हैं "सही वक्त पर रिटायर हो जाऊंगा।"

जब भारतीय टीम लगातार एक दर्जन स्टेट मैच हार जाती है, तब वे रिटायर होने की घोषणा कर देते हैं।

कुछ खिलाड़ियों में अपवाद स्वरूप यह चिपकाऊ तत्व बहुत अल्प मात्रा में पाया जाता है। अतः वे, विदेशी दौरा बीच में ही छोड़ कर भारत लौट आते हैं और घोषणा कर देते हैं - संन्यास ले रहे हैं। भरी जवानी में क्रिकेट से संन्यास हमारी संस्कृति को कहां ले जाएगा ? आपके पास चिपकाऊ तत्व नहीं था, तो गोंद लगा लेते, फेविकोल लगा लेते - किसी तरह टीम में बने रहते।

एक जिले में एक अधिकारी बड़े ही चिपकाऊ थे। छुटभैया नेताओं ने कहा हम तुम्हें चिपकने नहीं देंगे। अधिकारी बोला - "ये फेविकोल का जोड़ है बच्चू। दौड़ शुरू हुई। तीन माह में आठ बार तबादला करवा लाए नेता लोग, परन्तु अधिकारी हर बार तबादला रद्द करवाते रहे। नेता हार गए।

स्वर्गीय दिनकर जी ने भारतीय संस्कृति के चार अध्याय लिखे। मेरे विचार से संस्कृति के पांच अध्याय हैं और यह पांचवां अध्याय इसी चिपकाऊ तत्व से सम्बन्धित है।

क्या आपकी पीठ भारी है ?

स्वतंत्र भारत में नेता, अभिनेता, अफसर, क्लर्क, चपरासी, मास्टर, दलाल, पटवारी, ग्राम-सेवक, सी.बी.आई. आदि भी कामयाब हो सकते हैं, जब उनकी पीठ भारी हो। हल्की पीठ वाले इक्कीसवीं सदी में नहीं चल सकते। संघर्ष करने वाले का बैक ग्राउण्ड उर्फ पृष्ठभूमि देखी जाती है। यदि यह पीठ मजबूत है तो संघर्ष सफल होता है, अन्यथा 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम'' वाली बात हो जाती है। भारी पीठ होने पर मनुष्य अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम चला सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी चपरासी की पीठ भारी है, तो वह बड़े बाबू की दफ़्तर में ही पिटाई कर सकता है, ताकि बड़े बाबू दही बड़े के रूप में दिखाई दें। ऐसी पिटाई से तानाशाही शक्तियों को समाप्त करने में बहुत सहायता मिलती है। लेकिन यदि चपरासी हल्की पीठवाला हुआ, तो बड़े बाबू जूतों से उसकी खबर लेंगे, और नौकरी पर आंच आएगी सो अलग।

जिसकी पीठ भारी होती है, वह रोबोट की भांति आंधी, पानी, भूकम्प, चुनाव आदि में अविचलित होकर काम करता है। भारी पीठ वाला अपराजेय होता है। वह अजर-अमर है। मृत्यु को वह हमेशा ठेंगा दिखाता है। धर्मराज भी अपने यमदूतों से कहते हैं भारी पीठ वाला मरना नहीं चाहे तो उसे छोड़ देना। ऐसे लोगों को यदि बलपूर्वक लाए, तो यहां यमलोक की व्यवस्था बिगड़ जाएगी। पता नहीं अगला, कितनी पहुंच वाला हो। क्या पता धर्मराज से उसकी पुरानी जान-पहचान हो। यमराज को भी अपनी सर्विस बुक में प्रतिकूल टिप्पणी का डर रहता है। प्रतिकूल टिप्पणी से अगला प्रमोशन रुक जाता है। भारी पीठ वाले किसी को भी निलंबित करवा सकते हैं।

छोटा अफसर बड़े अफसर से कहेगा ''अमुक कर्मचारी ठीक से काम नहीं करता है, नेतागिरी करता है और अकड़ता है। उसके खिलाफ लगातार शिकायतें प्राप्त हो रही हैं। मैं उसके खिलाफ कड़ी कार्रवाई करना चाहता हूं। इस संबंध में आपका अनुमोदन चाहता हूं।''

बड़ा अफसर कहेगा "एक्शन आप ले सकते हैं, लेकिन उससे पहले आपको यह सुनिश्चित करना होगा कि आपकी पीठ भारी है कि नहीं।"

छोटा अफसर कहेगा "सर, मेरी पीठ तो भारी नहीं है। हां, पेट जरूर भारी है। रोज गैस बनती है और कब्ज भी रहती है। कई प्रकार के चूर्ण सेवन करने के बाद भी पेट हल्का नहीं होता।"

बड़ा अफसर कहेगा, "फिर आपको मेरी यह सलाह है कि कर्मचारी के खिलाफ कोई कार्यवाही न करें। कर्मचारी की पीठ भारी होने पर मैं उसकी मदद करूँगा। याद रखो, वैसे तो दो और दो चार ही होते हैं, लेकिन अगर किसी की पीठ भारी हो तो दो और दो का योग पांच हो सकता है।"

छोटे अफसर को बात समझ में आ जाएगी। वह भारी पीठ वाले कर्मचारी के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं करेगा। कर्मचारी बड़े ठाठ से उपस्थिति पंजिका में हस्ताक्षर बना कर केंटीन में बैठ जाएगा। चांय वाले को दो चार भारी गालियां निकाल कर, वह स्वयं हल्का हो जाएगा। टेंशन रिलीज करने का इससे बढ़िया तरीका अभी तक ईजाद नहीं हो पाया है। वह लंच टाइम में ही लंच लेगा, ताकि दफ़्तर का अनुशासन बना रहे। लंच के बाद वह पान की दुकान के सामने बैंच पर बैठ कर राजनीति घोटालों की चर्चा करेगा, ताकि लोग उसे पिछड़ा हुआ न समझें। दफ़्तर का अनुशासन बनाए रखने के लिए वह पांच बजे से पहले पान की दुकान नहीं छोडेगा।

हां कभी-कभी अनुशासन कायम रखने के लिए वह हैड मास्टर का रोल अदा करते हुए अफसर की पिटाई कर देगा। ऐसा करने से उसकी पीठ का भारी होना सिद्ध हो जाएगा।

जिस प्रकार सुरक्षा बलों के लिए नकली लड़ाई का अभ्यास जरूरी होता है, उसी प्रकार भारी पीठ वाले कर्मचारी के लिए अफसर की पिटाई वाला कार्यक्रम जरूरी होता है। हर प्रकार की सेवा में रिफ्रेशर कोर्स की आवश्यकता होती है।

केवल भारी पीठ होना ही आवश्यक नहीं है, यह लगना भी चाहिए कि आपकी पीठ भारी है।

एक बार एक नवोदिता अध्यापिका का तबादला शहर से दूर एक गांव में कर दिया गया। वे अस्वस्थ थीं और कुछ मास पश्चात् "प्रसूति अवकाश" पर जाने वाली थीं। तबादला आदेश देख कर वे विचलित हो गईं। तबादला रद्द करवाने की अर्जी लेकर वे अधिकारी के पास गईं। अधिकारी ने स्पष्ट शब्दों में

कहा, "मैडम, लोकतंत्र में उसी का तबादला रद्द हो सकता है, जिसकी पीठ भारी है।"

"सर, मैं बीमार हूं और मेरे पैर भी भारी हैं, अतः कृपा कर मेरा तबादला रद्द कर दीजिए।"

अफसर ने दो टूक जवाब दिया "हमारे यहां भारी पैर वालों के लिए कोई सहानुभूति नहीं है। रही बात पीठ की, सो आपकी पीठ भारी नहीं है, क्योंकि भारी पीठ वालों का तबादला हम करते ही नहीं।" इसके बाद साल भर तक मैडम चिकित्सा अवकाश पर रहीं, तत्पश्चात् उनकी पीठ भारी हो गई। उनके पतिदेव एक राजनीतिक दल के पदाधिकारी हो गए। बाद में शिक्षा अधिकारी ने मैडम की अर्जी के बिना ही, उनका तबादला फिर से शहर में कर दिया।

एक बार एक छुटभैये नेता को थानेदार ने किसी अपराध में पकड़ लिया। उस नेता ने थानेदार को बहुत समझाया कि आप पछताएंगे, परन्तु थानेदार ने एक नहीं सुनी। नेता ने कहा मेरी पीठ भारी है। मुझे छोड़ दो। थानेदार ने कहा कोई बात नहीं पीठ हम हल्की कर देंगे। थानेदार ने थर्ड डिग्री का प्रयोग शुरू किया, ताकि नेताजी की पीठ हल्की हो सके। नेताजी दर्द के मारे हाय-हाय करने लगे। उनके समर्थक हाईकमान तक पहुंच गए। हाईकमान ऐसे मौके पर तुरन्त हरकत में आ जाता है। थोड़ी देर बाद एस.पी. का फोन आया और थानेदार को नेताजी की पीठ हल्की करने वाला कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। बाद में उस छुटभैये नेता ने अपनी पीठ भारी होने का सबूत दिया, और थानेदार को दुर्गम स्थान पर स्थानान्तरित करवा दिया।

जिन छात्रों की पीठ भारी होती है, उन्हें अध्यापक नकल करने देते हैं, लेकिन जिन छात्रों की पीठ भारी नहीं होती, वे वजन में कितने ही भारी क्यों न हों, अध्यापक पकड़ लेते हैं। उनकी जेब में रखा हुआ चाकू भी काम नहीं आता। उनका भविष्य खराब हो जाता है। वे परीक्षा में बैठने से वंचित हो जाते हैं।

स्वतंत्र भारत में समझदार अधिकारी का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह शहर के भारी पीठ वाले लोगों का व्यापक सर्वेक्षण करवा कर एक सूची तैयार करे। उस सूची में स्थान प्राप्त लोगों से एक निश्चित दूरी बनाए रखे।

इस सूत्र को अपनाने वाले अधिकारी कठिन से कठिन समस्याओं को हल कर लेते हैं और सफल अधिकारी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। यह प्रसिद्धि उनकी पीठ भारी कर देती है।

अफसर और टूर

जिस प्रकार किसी सुहागिन स्त्री के लिए उसकी मांग में सिन्दूर जरूरी होता है, उसी प्रकार अफ़सर के लिए टूर जरूरी होता है। जिस प्रकार कुछ सुहागिन स्त्रियां अपनी मांग में सिन्दूर इस प्रकार डालती हैं कि उसे खुर्दबीन से ही देखा जा सकता है, उसी प्रकार कुछ अफसर टूर के नाम पर केवल रस्म निभाते हैं। वे घर के तनाव के इतने आदी हो जाते हैं कि बिना तनाव के उन्हें जिन्दगी अधूरी लगती है। टूर, जिन्दगी के तनावों में 'रिलेक्स' होने की प्रक्रिया है। दफ़्तर में भी बिना टूर वाले अफसर फाइलों के पीछे छिपे रहते हैं। उनका दफ्तर में होना, न होना, बराबर होता है। कोई नवीनता नहीं, कोई परिवर्तन नहीं। 'मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक'' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। उनके मातहत लिपिकों को लगता है कि उनका कोई अफसर है ही नहीं। बिना टूर वाला अफसर लिपिक के समान ही होता है। यही कारण है, बिना टूर वाले अफसरों के मातहत जब मूंगफलियां खाते हैं, तो दो-चार अपने अफसर को भी भेज देते हैं। सर्दियों में लिपिक, जब बाहर धूप का सेवन करते हैं, तो इस राष्ट्र भक्ति के कार्यक्रम में, अफसर को भी सम्मिलित कर लेते हैं। कुछ ही दिनों में वह अफसर हीनता की ग्रन्थि का शिकार होकर अतिरिक्त तनाव में जीने लगता है। वह एक वर्ष में, दो वर्ष के बराबर बुढापे की ओर खिसक जाता है। बराबर के अफसरों से कन्नी काटने लगता है।

टूर वाले अफसर हमेशा तरोताजा रहते हैं। आज लौटे हैं - कल फिर जा रहे हैं। परसों लौटेंगे, नरसों फिर जाएंगे। टूर में तरह-तरह के ''एडवेंचर'' होते रहते हैं। अनेक बार बसों में जगह नहीं मिलती, परन्तु वे हिम्मत नहीं हारते। सर्दी लग गई, बुखार आ गया, मगर टूर वाला कार्यक्रम जारी रहता है। कुछ लोगों का ख्याल है कि टूर पर रहने वाले अफसर की पत्नी कर्कशा होती है। जैसे ही वे टूर से लौटते हैं, उनका दिमाग खाने लगती है। यदि लोगों के इस कथन को सत्य माना जाए, तो अधिकांश अफसरों की पत्नियां कर्कशा होती हैं।

टूर से लौटने के बाद किसी काम में मन नहीं लगता। पूरे दफ्तर के अधिकारियों

एवं कर्मचारियों से मिलकर, उन्हें संस्मरण सुनाने की इच्छा होती है। "मैंने वहां सबको लताड़ लगाई" या "मुझे देखते ही इन्चार्ज कांपने लगा" या "सारे कागज मैंने ही तैयार करवाए" या "मैं नहीं पहुंचता तो विभाग को कटघरे में खड़ा होना पड़ता" - जैसे वाक्यों का प्रयोग टूर से लौटा हुआ अफसर करता है। वह, बसों की वास्तविक स्थिति का बयान ऐसे करता है, जैसे कोई पत्रकार किसी दुर्घटना की रपट अपने अखबार को प्रेषित करता है। "क्या बताएं रिजर्वेशन नहीं हुआ" या "बस समय से पहले निकल गई" और मैंने पूरे तीन घंटे, अगली बस के इन्तजार में बिताए।" अमुक स्थान पर चाय बहुत अच्छी मिलती है। वहां, बेर बहुत सस्ते थे - पांच किलो ले आया। वहां जूतियां बहुत अच्छी मिलती हैं - रुपए खत्म हो गए थे, वरना ले आता। असल में टूर तो बहाना था - मुझे रिश्तेदारी में जाना था। आठ दिन बाद साले की शादी है - टूर प्रोग्राम बनाने में मेरी मदद करो - आदि आदि।

टूर से लौटने पर हर अफसर कहता है - बहुत थक गए, अब नहीं जाएंगे। लेकिन उनकी थकान दूसरे दिन ही खत्म हो जाती है, और तीसरे दिन वह टूर पर निकल जाता है। जिस दिन वह टूर पर नहीं होता उस दिन भी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी आगन्तुकों को उसका टूर पर होना बताते रहते हैं। वास्तव में टूर से लौटा अफसर कुर्सी पर बैठना पसन्द नहीं करता। वह बाबू के पास खड़े रहकर, अपने व्यक्तिगत पत्र टाइप कराता है।

अफसरों को टूर पर जाने से पहले एक प्रस्तावित यात्रा कार्यक्रम नियंत्रण अधिकारी के पास प्रेषित करना पड़ता है। इसके अभाव में उसके नाम के कॉलम में लाल स्याही से छुट्टी लगाई जा सकती है।

असली अफसर वही कहलाता है, जो महीने में बीस दिन टूर पर रहता है और शेष दस दिनों में से प्रथम पांच दिन, प्रस्तावित यात्रा कार्यक्रम तैयार करने में जुटा रहा है और बाद में पांच दिनों में वास्तविक यात्रा कार्यक्रम तैयार करता है। हैड क्वार्टर पर वह "मीटिंग" में जाने के अलावा कोई काम नहीं करता। फाइलों के ढेर, उसकी मेज की शोभा बढ़ाते रहते हैं। कभी मूड हुआ तो टूर से लौटते ही, कोई फाइल निबटा दी या प्रस्तावित यात्रा कार्यक्रम तैयार करते समय किसी फाइल पर हस्ताक्षर कर दिए। जो अफसर नियमित रूप से फाइल निबटाता है, वह सरकारी क्षेत्रों में बाबू कहलाता है।

बाबू की अपनी अस्मिता होती है। अफसर की अस्मिता के नाम पर केवल

प्रश्न चिन्ह होता है।

टूर वाले अफसरों को उनके अधीनस्थ कर्मचारी परेशान नहीं करते। उन्हें मालूम है अफ़सर परदेशी है - कल चला जाएगा। (परदेशी-परदेशी जाना नहीं ....) अफसर के दफ्तर में रहने पर वे लोग, मुस्तैदी से कार्य करते हैं। अफ़सर के पास फाइलों के ढेर लगा देते हैं। अफसर बिना अपनी टिप्पणी दिए - जैसा बाबू ने लिखा है - उसी पर हस्ताक्षर बना देता है। वह एक बार फिर इस धारणा की पुष्टि करता है - देश को अफसर नहीं बाबू चला रहे हैं। देश चलाने की गारन्टी किसकी है - यह अभी तक तय नहीं हुआ, इसलिए अफसर हरसंभव कोशिश करता है कि उसका टूर कार्यक्रम चलता रहे।

अब एक नज़र टूर कार्यक्रम पर डालें। राज्य की राजधानी का टूर कार्यक्रम है। सैक्रेटरी ने बुलाया है। कार्यक्रम एक दिन का था, परन्तु अफसर तीन दिन बाद राजधानी से लौटा है। लौटते ही, परम्परा के अनुसार, उसने अपना वास्तविक यात्रा कार्यक्रम नियंत्रण अधिकारी को भेजा। इसमें लिखा था - पहले दिन सैक्रेटरी साहब कर्मचारी यूनियन के नेताओं से वार्ता करते रहे। अतः मुलाकात नहीं हो सकी। दूसरे दिन वे मंत्री जी के साथ आवश्यक बैठक में व्यस्त रहे। तीसरे दिन मुलाकात करके मुख्यालय लौट आया।

नियंत्रण अधिकारी टूर के गूढ़ रहस्यों को जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि अफ़सर के टूर कार्यक्रम में रिश्तेदारी में जाना भी सम्मिलित होता है। टूर के नाम पर वे, अपने महत्वपूर्ण निजी कार्य कर लेते हैं। उन्हें यह भी मालूम है - अनेक अफसर टूर के नाम पर आराम करते हैं, और जब उनका आगमन अपेक्षित होता है, तो वे दफ्तर में पहुंच जाते हैं। नियंत्रण अधिकारी इन बातों को ध्यान में रख कर निर्देश देते हैं - प्रत्येक सोम, मंगल, को हर अधिकारी मुख्यालय पर रहेगा। वास्तविक टूर प्रोग्राम के साथ, वह टूर का संक्षिप्त प्रतिवेदन संलग्न करेगा, ताकि पता चले उसने टूर के दौरान क्या-क्या कार्य सम्पन्न किए।

टूर पर जाने वाले अफसर घाघ होते हैं। टूर का प्रतिवेदन तैयार करने में वे लेखकों को भी मात देते हैं। नियंत्रण अधिकारी संक्षिप्त प्रतिवेदन मांगता है, परन्तु अफसर विस्तार से प्रतिवेदन तैयार करके भेज देता है। उसके विस्तृत यात्रा कार्यक्रम प्रतिवेदन को पढ़कर लगता है कि उसके द्वारा किए गए कार्य की तुलना में टूर प्रोग्राम बहुत संक्षिप्त था। इतने कार्यों के लिए उसे पूरा सप्ताह मिलना चाहिए था, परन्तु वह तीन दिन में लौट आया। सरकार के वित्त विभाग को काफी फायदा

हुआ। ऐसे वास्तविक यात्रा कार्यक्रमों पर नियंत्रण अधिकारी को हस्ताक्षर करने ही पड़ते हैं।

अफसर को टूर का असली मजा तब मिलता है, जब उसे पड़ौसी राज्य या दिल्ली भेजा जाता है। वह जिस राज्य में जाता है, वहां एक सप्ताह अवश्य रहता है। वह वहां शॉपिंग करता है, बड़े अफसरों से मिलता है तथा यह जानने की कोशिश करता है कि वहां टूर प्रोग्राम कैसे बनाए जाते हैं। उस राज्य में अफसरों को प्रतिदिन कितना विश्राम भत्ता मिलता है। यदि वहां उसके अपने राज्य से अधिक विश्राम भत्ता मिलता है, तो वह लौट कर अफसरों की यूनियन को बता देता है। अफसरों की यूनियन राज्य सरकार से पड़ौसी राज्य के बराबर डी.ए. देने की मांग करने लगती है।

कतिपय अफसर, सौभाग्यशाली होने के कारण विदेश यात्रा भी कर आते हैं। अफसर की विदेश यात्रा पानी के जहाज से हो नहीं सकती, इसलिए हवाई यात्रा का खर्च राज्य सरकार को उठाना पड़ता है। अफसरों के लिए टूर - रामबाण औषधि है तनावों की। घर का तनाव, दफतर का तनाव होते ही अफसर को टूर पर निकल जाना चाहिए।

नए बजट का सौन्दर्य बोध

हर वर्ष केन्द्र सरकार फरवरी माह में एक आकर्षक बजट देश को देती है, जिसमें हर बार गरीब तबका राहत पाता है। सरकार को मालूम है कि हर नेता, मजदूर और किसानों के कंधे से कंधा मिलाकर ही चुनाव जीत सकता है। आज तक इस देश में कोई ऐसा नेता अवतरित नहीं हुआ, जो छाती ठोक कर कह सके - अमीरों का हिमायती हूं, अत. मुझे वोट दो।

भारतीय नेता की यह विशेषता है कि वह भाषण में गरीबों के कंधे से कंधा मिलाता है, और भाषण समाप्त होते ही, किसी अमीर के यहां डिनर लेने चला जाता है। इसका कारण यह नहीं है कि वह गरीबों से नफरत करता है। ऐसा तो कोई नेता स्वप्न में भी नहीं कर सकता, वह तो सिर्फ यह सोच कर कि गरीब लोग सिर्फ एक "टैम" खाकर जिन्दा रहते हैं, और यह निश्चित नहीं है कि वे सुबह खाते हैं या शाम को, उनके यहां खाने नहीं जाता। जिस दिन नेता को विश्वास हो जाएगा कि गरीब दोनों "टैम" खाने लगा है, वह बेधड़क गरीबों के घर पहुंच जाएगा। 'टैम' सुबह का हो या शाम का, रोटी मिलने की गारन्टी हो जाएगी।

इस बार भी हर वर्ष की तरह बजट गरीबों को समर्पित किया गया। इतने वर्षों से लगातार गरीबों को राहत मिलने के बाद भी उन्हें रहने, खाने और पहनने का सलीका नहीं आया - यह चिन्ता की बात है। सरकारी चिन्ता मनुष्य की चिन्ता से अधिक गंभीर और खतरनाक होती है। सरकार को अनिद्रा का रोग हो जाता है। इस चिन्ता के कारण तब सरकार, रात-रात भर जागती है और दिन में झपकियां लेती है।

इस बार बजट से पहले ही सरकार गरीबों की कुरूपता को लेकर संजीदा थी। इतनी संजीदा सरकार पहले कभी नहीं आई। सरकार सोचती है - विदेशी पर्यटक हमारे देश की कुरूपता को अपने वीडियो कैमरे में बन्द करके ले जाता है। यह सच है कि पश्चिमी देशों का अंधानुकरण करके हमारे देश के गरीब भी बहुत कम कपड़े पहनते हैं, और मुंह नहीं धोते। हमने जो पीने का पानी मुहैया

कराया है, उससे ये गरीब नहा-धो लें तो जेल थोड़ी न हो जाएगी। पीने के पानी से हाथ-मुंह तो धोये ही जा सकते हैं। हमारे देश के गरीब इतनी छोटी-सी बात नहीं समझते कि बिना मेकअप के विश्व सुन्दरी भी कुरूप दिखाई दे सकती है। अतः सरकार के समक्ष बजट से पहले गरीबों की सुन्दरता के बारे में कुछ प्रस्ताव आए होंगे। गरीबों की सुन्दरता के लिए "आर्थिक पैकेज" पर भी विचार-विमर्श हुआ होगा।

एक प्रस्ताव यह भी आया होगा कि गरीबों को ब्यूटी पार्लर में ले जाकर उनका कायाकल्प कर दिया जाए। उन्हें 'फेशियल' आदि से सुन्दर बनाया जाए और इसका सम्पूर्ण व्यय केन्द्र सरकार वहन करे। देश में जितने गरीब हैं, उसका दशमल शून्य-शून्य एक प्रतिशत भी ब्यूटी पार्लर नहीं है। दूसरे, जब गरीब इन पार्लरों में घुस जाएंगे तो मध्यम और उच्च वर्ग के लोग कहां जाएंगे। प्रजातंत्र में जो सरकार होती है, वह हमेशा समदर्शी होती है। कोई मंत्री यदि अपने गांव में किसी मशहूर फिल्म स्टार को बुला सकता है, इसका मतलब यह नहीं है कि गरीबों के गांव में यह व्यवस्था नहीं हो सकती। गरीबों के पास इच्छा शक्ति होनी चाहिए, फिल्म स्टार तो क्या सरकार माइकल जैक्सन को भी बुला देगी।

बात गरीबों की सुन्दरता की हो रही थी कि सरकार के लिए सरकारी ब्यूटी पार्लर खोलना व्यावहारिक नहीं था। इसलिए सरकार ने यह विचार उसी प्रकार छोड़ दिया, जैसे कोर्ट कचहरी में फंसे हुए किसी पार्टी के नेता का साथ, उसकी पार्टी छोड़ देती है। हां, गरीबों की कुरूपता के बारे में सरकार बराबर सोचती रही। गरीबों के लिए जितनी भी घोषणाएं हो सकती थीं, बजट से पहले ही हो गईं। यहां तक कि उन्हें आधी दर पर राशन देने की व्यवस्था भी हो गई। खाने-पीने की व्यवस्था के बाद सजने-संवरने का ही नम्बर आता है। सरकार का इस ओर ध्यान देना हमारे लोकतंत्र के इतिहास में मील का पत्थर माना जाएगा।

किसी बड़े नेता या मंत्री ने विदेशियों को हमारे गरीबों की तस्वीरें उतारते देखा होगा - मैले कुचैले, नंग-धड़ंग काले बच्चों की रंगीन तस्वीरें। फिर विदेशियों ने इन बच्चों को कुछ पैसे दिए होंगे - तस्वीरें खींचने के दौरान, "पौज" बनाने के बदले में। नेता या मंत्री जी इस दृश्य को देख कर द्रवित हो गए होंगे। हाय मेरे देश ! आज़ादी के पचास साल बाद भी तेरी ये दुर्दशा। बस, तभी से गरीबों के प्रति सरकारी चिंतन में सौन्दर्य बोध जाग गया होगा। गरीबों को सुन्दर बनाने की मुहिम प्रारम्भ हो गई होगी।

जिस दिन गरीब महिलाएं मेकअप करके और पुरुष जींस पहन कर मजदूरी करने जाएंगे, उसी दिन इस देश से गरीबी चली जाएगी। बाजरे की रोटी और हरी मिर्च की तरह क्रीम पाउडर लिपिस्टिक की पोटली जिस दिन मजदूर के पास मिल जाएगी, हमारा देश स्वतः अमीर हो जाएगा।

इतना चिन्तन करने के बाद, सरकार ने निर्णय लिया होगा - सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री सस्ती कर दी जाए, ताकि वह गरीबों और मजदूरों की क्रय शक्ति सीमा के अंतर्गत आ जाए। यही कारण था कि नए बजट में सौन्दर्य सामग्री सस्ती कर दी गई।

शाम को मजदूरी से थका हुआ गरीब जब अपनी झोपड़ी में पहुंचेगा तब उसकी बीबी क्रीम पाउडर से लिपी-पुती, होठों पर लिपिस्टिक का लेप किए हुए गर्मजोशी से उसका स्वागत करेगी। वह उसे शुभ सूचना देगी - आटा महंगा था, इसलिए "लेवेण्डर टेल्क" तथा "फेशियल" का सामान ले आई। अब आप नहा धोकर मेकअप कर लो, जिससे भूख का असर कम हो जाए। मजदूर कितना ही मेकअप क्यों न कर ले, - भूख उसका पीछा नहीं छोड़ती।

यह बात नहीं है कि हमारी प्रिय सरकार ने सौन्दर्य सामग्री को, परिवार कल्याण के आसान तरीकों की तरह, गरीबों में मुफ्त बांटने की बात नहीं सोची होगी। सरकार के साथ दिक्कत यह है कि गरीबों के चेहरे की सुन्दरता की बात करो, तो उनका पेट आड़े आ जाता है। गरीब कहता है, कुछ मुफ्त देना है तो आटा-चावल दो। सरकार प्रसाधन सामग्री तो मुफ्त दे सकती है आटा, चावल नहीं। गरीबों को सुन्दर बनाने के लिए सौन्दर्य सामग्री को सस्ता करने के अलावा सरकार के पास कोई विकल्प नहीं था।

रंगीन पिक्चर ट्यूब सस्ती करते समय भी सरकार के सामने झुग्गी-झोपड़ी वालों के श्वेत-श्याम टी.वी. रहे होंगे। हमारा दूरदर्शन अपने चैनलों पर तथा अन्य चैनुलों पर अनेक "रंगीन" कार्यक्रम प्रसारित करता है, मगर श्वेत-श्याम टी.वी. इन कार्यक्रमों को कुरूप बना देता है। यहां तक कि श्वेत-श्याम टी.वी. सरकार के चेहरे को भी अच्छा नहीं दिखाता। उधर रंगीन टी.वी. में सरकारी चेहरा बहुत खूबसूरत लगता है।

कुछ सरकारी अफसर और नेता फार्म हाउसों के जरिए गांवों में बस गए हैं। उनके फार्म हाउसों में एक से बढकर पंचतारा सुविधाएं उपलब्ध हैं। "बार" है, तरणताल है, और न जाने क्या-क्या। इन फार्म हाउसों के साथ एक समस्या यह है

कि उनके पड़ौसी अर्थात गांव के लोग बहुत घटिया कच्चे और फूस वाले मकानों में रहते हैं। इन पड़ौसी मकानों को देख कर फार्म हाउस में ठहरे मेहमानों के मुंह का जायका बिगड़ जाता है। व्हिस्की का नशा हिरन हो जाता है।

इस समस्या को ध्यान में रख कर बजट में यह प्रावधान किया गया है कि गांव में रहने वालों को मकान बनाने के लिए दो लाख रुपया ऋण दिया जाएगा, बशर्ते उनके पास अपनी फ्री होल्ड जमीन हो। गांव में जमीन है, तो मकान सलीके का हो। अब ये कोई बात हुई कि एक बीघे जमीन के टुकड़े में एक कमरा बना रखा है और उसी में आदमी और पशु एक साथ रहते हैं। गांवों में वैसे भी मकान बनाने में व्यय कम होता है। दो लाख में शानदार मकान बनेगा, जो शहर के दस लाख वाले मकान के बराबर होगा।

सरकार ने इस बजट में मोबाइल फोन भी सस्ते किए हैं। हां, अभी इसे खरीदने के लिए गरीबों को ऋण की व्यवस्था नहीं की है, लेकिन गरीबों को अमीर बनाने का सिलसिला जारी रखना है, तो उन्हें मोबाइल फोन के लिए अगले बजट में ऋण देना होगा - यहां तक कि सबसिडी भी देनी होगी। यह तय है कि सरकार ने गरीबों का ध्यान रख कर ही मोबाइल फोन सस्ते किए हैं - अमीरों के पास तो पहले से थे। वे, तो महंगे होने पर भी 'मैनेज' कर लेते।

मजदूर जब रोटी का टिफिन साथ लेकर मजदूरी पर जाता है, तब उसे यह पता नहीं होता कि आज मजदूरी किस दिशा में मिलेगी। उत्तर में या पूरब में। दक्षिण में या पश्चिम में। कुल मिलाकर उसके कार्यस्थल की अनिश्चितता के कारण ही उसे मोबाइल फोन की आवश्यकता होगी। मोबाइल फोन पर वह अपने परिवार को सूचित करेगा कि वह आज कहां मजदूरी कर रहा है। लंच में अपने साथियों से बात करेगा - हलो रमईराम कहो कहां मजदूरी कर रहे हो और तुम्हारा मालिक कैसा है। रमईराम उधर से मोबाइल फोन पर कहेगा - रामपुर के सरपंच के हियां काम कर रहे हैं। सरपंच तनिक पागल है, बहुत मेहनत करवात है। अच्छा सांझ को बातें करिहैं - ओवर।

मोबाइल फोन का एक फायदा यह होगा कि मजदूर अलग-अलग शहरों में मजदूरी के रेट मालूम कर सकेंगे तथा उसी के अनुसार अपने रेट बढ़ा सकेंगे। मोबाइल फोन से उनका स्तर उठ जाएगा। वे अमीरों की श्रेणी में आ जाएंगे।

लेकिन भारत के गरीबों की अक्ल भोथरी हो गई है। बजट से पहले ही गरीबों ने अपनी कुरूप मानसिकता का परिचय दे दिया। उड़ीसा में एक दम्पति ने

दो बोरी अनाज और डेढ़ सौ रुपए के बदले, अपने बच्चों को बेच दिया। दिल्ली में एक ऑटो चालक ने गरीबी से तंग आकर आत्महत्या कर ली। अधैर्य की भी हद होती है भई!

तुम्हारी सरकार तुम्हारे लिए क्रीम पाउडर, लिपिस्टिक, रंगीन पिक्चर ट्यूब, मोबाइल फोन, ग्रामीण कोठियां लिए खड़ी हैं और तुम, उसकी बदनामी करने के लिए कभी बच्चे बेचते हो तो कभी आत्महत्या करते हो। आखिर तुमने अपनी औकात दिखा ही दी। हमने तुम्हारे लिए कम्प्यूटर सस्ते कर दिए। तुम आटा मांग रहे हो, जिसे हमने बजट से पहले ही आधे दाम पर दे दिया। हमने मोबाइल फोन इसलिए सस्ते किए हैं कि तुम आटे-दाल का भाव मालूम करते रहो। तुम्हें कम्प्यूटर और मोबाइल फोन ऑपरेट करना नहीं आता, तो इसमें बजट क्या कर सकता है।

इक्कीसवीं सदी के मुख्य समाचार

एक कवि ने इक्कीसवीं सदी की चर्चा कुछ इस तरह की है - छोड़ो इसको बूढ़ी हो गई बीसवीं सदी, आओ मैं दिखलाता हूं, इक्कीसवीं सदी। इस कविता में उन्होंने इक्कीसवीं सदी की भूमिका बांधी है। इक्कीसवीं सदी बस कुछ फासले पर है। कुछ लोगों को आशंका है कि अपना देश इक्कीसवीं सदी में पहुंचेगा भी? उनकी आशंका निर्मूल नहीं है। अब अपनी क्रिकेट टीम को ही लो - अविश्वसनीय हार-जीत दर्ज कराती रहती है। इक्कीसवीं सदी का स्टेशन आने से पहले ही भारत की ट्रेन आउटर पर खड़ी हो सकती है और हमारे रेल यात्री जानते हैं कि आउटर पर खड़ी ट्रेन का कोई भरोसा नहीं होता - कब तक खड़ी रहे ? एक-एक करके पूरे विश्व की रेलगाड़ियां इक्कीसवीं सदी के विभिन्न प्लेटफार्म पर लग जाएंगी, तब कहीं जाकर भारत की ट्रेन का नम्बर आएगा। कई दशकों से चल रही इक्कीसवीं सदी की यात्रा-तैयारियां बेकार हो जाएंगी। विश्व के लोग कहेंगे - माइकल जेक्सन और विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता जैसे कार्यक्रम आयोजित करके भी, इतने लेट पहुंचे सपेरे वाले देश के लोग। हम कहेंगे - वो क्या है, हमारे यहां लोग बिना टिकट अधिक चलते हैं, इसलिए रास्ते में मजिस्ट्रेट चैकिंग करके बिना टिकट यात्रियों को बीसवीं सदी में ले जाना पड़ा। और इक्कीसवीं सदी के स्टेशन पर भी हमें आउटर पर रोक दिया गया। विश्व के लोगों को लेट होने का कारण यह भी बता सकते हैं कि डेली पेसेन्जर्स जो इक्कीसवीं सदी में नहीं आना चाहते थे, उन्होंने ईर्ष्यावश चैन पुल कर दी।

खैर, इतना तो तय है कि हम भी इक्कीसवीं सदी में पहुंचेंगे - लेट ही सही। इलेक्ट्रॉनिक और प्रिन्ट मीडिया की क्रांति अभी हो चुकी है। इक्कीसवीं सदी में महाक्रान्ति हो जाएगी। उस समय हमारे देश में राजनीति के मूल्य भी बदल जाएंगे। समाचारों के शीर्षक भी बदल जाएंगे। हिन्दी अखबारों के शीर्षक किस प्रकार के होंगे - कुछ नमूने प्रस्तुत हैं। ध्यान रहे ये समाचार इक्कीसवीं सदी के हैं (समझने में भूल न करें)।

- शुद्ध दूध पीने से चार बच्चे मरे, दो गम्भीर। शुद्ध दूध बेचने वाले की तलाश जारी। सरकारी अधिसूचना में समस्त दुग्ध विक्रेताओं को दूध में पानी मिलाने के लिए पाबंद किया गया है, ताकि इस प्रकार की दुखान्तिकाओं की पुनरावृत्ति न हो सके।
- शुद्ध माल बेचने के आरोप में चार व्यापारी हिरासत में - मनोरोगी होने की आशंका। पुलिस मामले की गहराई से छान-बीन कर रही है।
- कुत्ते की संदिग्ध मौत की न्यायिक जांच के आदेश। इस कार्य के लिए नियुक्त मजिस्ट्रेट ने कुत्ते की मौत सम्बन्धी फाइलें अपने कब्जे में कीं। कुत्ता पालकों ने राहत की सांस ली।
- चपरासी के तबादले को लेकर विधायक का आमरण अनशन जारी। सिंचाई विभाग के एक सहायक कर्मचारी का, इसी शहर में दूसरे मौहल्ले के कार्यालय में स्थानान्तरण के मुद्दे को लेकर विधायक का आमरण अनेशन आज तीसरे दिन भी जारी रहा। अनेक कर्मचारी संगठनों ने इस स्थानान्तरण की निन्दा की है और राज्य सरकार से अपील की है कि वह तुरन्त हस्तक्षेप करे और पीड़ित कर्मचारी का स्थानान्तरण रद्द करे। उल्लेखनीय है कि इस स्थानान्तरण के कारण कर्मचारी को प्रति दिन दो किलोमीटर की अतिरिक्त साइकिल यात्रा करनी पड़ेगी, जबकि उसे साइकिल भत्ता उतना ही मिलेगा, जितना पिछले कार्यालय में मिल रहा था।
- आश्चर्यजनक किन्तु सत्य? आप माने या न माने आपके महानगर के एक मौहल्ले का एक घर ऐसा भी है जहां न कोई कवि रहता है और न आज तक वहां एक भी बहू जलाई गई है - जबकि उस घर में छह माह पूर्व आई बहू मौजूद है । मौहल्ले के लोगों ने इस घर के सदस्यों को मौहल्ला छोड़ने के आदेश दिए हैं।
- आगामी सोमवार को नगर में एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। आशा है कम से कम दो श्रोता इस कवि सम्मेलन में अवश्य भाग लेंगे। ये श्रोता हैं श्री काव्य शत्रु (दिल्ली) व मूर्खानन्द बधिर (बम्बई)। श्रोताओं के लिए बीस मीटर ऊंचे मंच की व्यवस्था की गई है। कवियों के लिए विशाल पंडाल तैयार किया जा रहा है।
- शुद्ध वायु के सिलेण्डरों की काला बाजारी जोरों पर - प्रशासन ध्यान दे।
- भरपेट भोजन करने से चार मजदूरों की दुःखद मौत। मजदूरों को भूखे रहने

के लिए सरकार एवं समाज सेवकों ने अपील जारी की।

- मुख्यमंत्री दिल्ली रवाना। मुख्यमंत्री आज हाईकमान से चर्चा हेतु प्रातः एक विशेष विमान से दिल्ली रवाना हो गए। वहां वे हाई कमान से अपने घरेलू नौकर को दो दिन की छुट्टी देने तथा शाम को खाने में क्या-क्या लेना है - इस सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। उल्लेखनीय है हाल ही में हाईकमान ने अपनी पार्टी के सभी मुख्यमंत्रियों के लिए एक आचार संहिता जारी की थी, जिसके अनुसार - सलाद के लिए सब्जियों की संख्या तथा मात्रा निर्धारित की गई है।
- समस्त राजनीतिक दलों ने एक मत से प्रस्ताव पारित किया है कि पत्रकारों को समय-समय पर पीटा जाना चाहिए। इससे लोकतंत्र की जड़ें मजबूत होंगी।
- राज्य विधानसभा के चुनाव में सत्ताधारी दल को भारी बहुमत मिलने पर दल के अध्यक्ष ने पोलिंग बूथों पर कब्जा करने वाले सभी कार्यकर्ताओं के प्रति आभार व्यक्त किया है। उन्हें अध्यक्ष के हस्ताक्षरयुक्त प्रमाण पत्र शीघ्र ही दिया जाएगा।
- नए बजट में रंगीन टी.वी., वाशिंग मशीन, कार आदि लग्जरी सामान को कर मुक्त कर दिया गया है। सरकारी राजस्व जुटाने के लिए गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों पर कुछ कर लगाने की महत्वाकांक्षी योजना सरकार के विचाराधीन है।
- कल पुलिस विभाग के एक बडे अधिकारी ने एक थानाध्यक्ष को चार हजार रुपए की रिश्वत लौटाते हुए रंगे हाथों पकड़ लिया। थानाध्यक्ष को तत्काल निलम्बित कर दिया गया। एक अन्य थानाध्यक्ष को एक बड़ी रकम रिश्वत के तौर पर लेने के कारण पदोन्नति दे दी गई।
- शिष्टाचार सप्ताह के दौरान पुलिस कर्मियों को सामूहिक बलात्कार न करने के निर्देश।
- नकल रोकने के प्रयास में दो शिक्षक निलम्बित। नकल कराने वाले अध्यापकों का आज सार्वजनिक अभिनन्दन - शिक्षा मंत्री उपस्थित रहेंगे।
- पुजारी की संदिग्ध मृत्यु। कल रात औघड़ बाबा के मंदिर के पुजारी की पूजा करते समय अचानक मृत्यु हो गई। उसे तुरन्त चिकित्सालय ले जाया

गया, जहां डॉक्टरों ने शव परीक्षण कर बताया कि विगत चार-छह दिन से शराब न मिलने के कारण पुजारी की मृत्यु हुई है।

- सरकार ने राशनकार्ड पर मिलने वाले प्रति यूनिट दो लीटर पानी की मात्रा बढ़ाकर चार लीटर कर दी है। यह बढ़ी हुई मात्रा केवल बरसात होने तक मिलेगी।
- एक पुल पर सरकारी भवन ऐसा भी है, जो बरसात में भी बचा रहा। इसके निर्माणकर्ता ठेकेदार व इंजीनियर के विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है। सीमेंट और ईंटों के नमूने जांच हेतु प्रयोगशाला में भेजे गये।
- एक निजी विज्ञापन - आवश्यकता है गृह कार्य में दक्ष एक घरेलू नौकर की। योग्यता स्नातकोत्तर। पीएच.डी.को प्राथमिकता।
- वैवाहिक विज्ञापन : आवश्यकता है 45 वर्षीय वर को 15 वर्षीय कन्या की। दहेज अनिवार्य। दहेज अपर्याप्त होने पर 5 लीटर मिट्टी का तेल व एक माचिस अवश्य भेजें।

तो ये थी इक्कीसवीं सदी के अखबारों की "हैड लाइन्स" विस्तृत समाचारों के लिए इक्कीसवीं सदी की प्रतीक्षा करें।

रचना मांग, रद्दी में डाल

इस देश में जितनी तरह के देवी-देवता हैं उतनी ही सम्पादकों की किस्में हैं। मोटे तौर पर विभिन्न धर्मों में तैंतीस करोड़ से अधिक देवी-देवता हैं। इतनी ही संख्या सम्पादकों की होगी, क्योंकि हर दूसरा लेखक, सम्पादक होता है। मैं आज तक यह बात नहीं समझ पाया कि जब इस देश की आबादी दस करोड़ रही होगी, तब तैंतीस करोड़ देवताओं के पूजा-अर्चना-इबादत इत्यादि कैसे की जाती होगी। शायद कुछ देवी-देवता अपने भक्तों को 'शेयर' करते होंगे। एक-एक भक्त पर तीन-तीन देवता मेहरबान होते होंगे। मुसीबत को हल करने में इन देवी देवताओं का काफी योगदान रहता है। यही कारण है भारत वर्ष को धर्म-प्रवण देश कहा जाता है। बाद में स्थिति बदली होगी और देश की आबादी बढ़ने के साथ एक देवता को, स्वतंत्र रूप से एक भक्त प्राप्त हो गया होगा - जिसके सुख-दुःख के लिए प्रत्येक देवता व्यक्तिशः जिम्मेदार रहा होगा। आज हमारे महान भारत की आबादी देवताओं के दुगने से भी अधिक है, अतः एक देवता को दो से अधिक भक्तों को संभालना पड़ता है, जैसे गृह मंत्री जी, आवास मंत्रालय के साथ-साथ खेल-कूद मंत्रालय भी देखते हैं।

वर्तमान लेखकों की संख्या, सम्पादकों से दुगुनी है, अतः एक सम्पादक के हिस्से में कम से कम दो लेखक आते हैं। सम्पादकों के पास स्थान कम होता है, अतः बारी-बारी से वह, इन लेखकों को स्थान देता है। ऐसे में चूक होने की संभावना बनी रहती है। नम्बर उस लेखक का था, रचना इस लेखक की मांग ली। खैर, कोई बात नहीं, यह जनता का वोट थोड़े ही है, जो गलत जगह चला जाएगा। हमारे मेज के नीचे रद्दी की जो टोकरी रखी है, वह न्याय देने का काम करती है। दूध का दूध - पानी का पानी। बिन बारी के मकान आवास मंत्रालय में आवंटित हो सकते हैं, सम्पादक की टेबल पर नहीं। हमने रचना मांग ली, तो रचना फाड़ने का अधिकार हमारे पास सुरक्षित है। जाहिर है, फटी हुई रचना मेज के ऊपर तो रख नहीं सकते (सम्पादक की मेज है, किसी पार्टी का सदन का पटल नहीं

है)। रद्दी की टोकरी में पड़ी रचना सम्पादक को प्रतिष्ठित करती है और लेखक को लेखकीय कर्म से संन्यास लेने की प्रेरणा देती है। उस लेखक की रचना के साथ यदि तीन-चार सम्पादकों ने इसी प्रकार न्याय किया, तो समझ लो लेखक का जनाजा तैयार है।

अभी-अभी जो होली, किसी मदमस्त नवयौवना की तरह गुजर गई है, उसमें मेरे साथ कुछ ऐसा घटा कि मुझे अपने लेखन का मूल्यांकन करना पड़ रहा है। इतने वर्षों से घास खोद रहे हैं, परन्तु साहित्य नाम की गाय का पेट खाली रहता है। एक सम्पादक जी ने होली से डेढ़ माह पूर्व पत्र लिखा - अपना नवीनतम व्यंग्य, नवीनतम आवक्ष रंगीन चित्र के साथ भेजें। हमारी लेखनी मयूर पंख हो गई। हर छह माह बाद हम अपनी लेखनी की निब बदलते हैं। वैसे, जिस हिसाब से हम लेखन करते हैं, हर दूसरे माह निब बदल जानी चाहिए। देश की, प्रदेश की, शहर की स्थितियां कुछ ऐसी हैं कि छह माह से पहले कोई भी शुभ कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। छह माह में, गंगा में न जाने कितना पानी बह जाता है - परन्तु हमारे मोहल्ले की नाली के गंदे जल पर छह माह तक नगर पालिका कोई ध्यान नहीं देती। मेरे विचार से वार्षिक परीक्षा से अधिक छमाही परीक्षा का महत्व होना चाहिए।

हमने अपनी मोर पंखी कलम से सुआ पंखी रंग का प्रयोग करते हुए एक कबीर पंथी व्यंग्य रच डाला। व्यंग्य क्या था, गोया भ्रष्ट राजा के हरम का खुला चिट्ठा था। एलबम देखी तो पता चला, अपने पास पासपोर्ट साइज की कोई रंगीन फोटो है ही नहीं। हमें उतनी ही ग्लानि हुई, जितनी इस देश को आजादी के पचासवें साल में आजादी के नाम पर हुई थी। इतने कॉलम लिखे, पुस्तकें छपीं, एक-आध पुरस्कार भी मिला, मगर तुम्हारे पास एक अदद रंगीन पासपोर्ट साइज का फोटो नहीं है। जाओ चुल्लू भर पानी में डूब मरो। तुमसे अच्छे तो ये "मेंढकी" व्यंग्यकार हैं, जो हर बरसात में फोटो के साथ ही टर्र-टर्र करते हैं। बरसाती मेंढक अपनी आवक्ष तस्वीरें गर्मी के मौसम में ही खिंचवा लेते हैं, ताकि बरसाती न लगें। कायदे से तो हमें सल्फास की गोली खाकर आत्महत्या करनी चाहिए थी, परन्तु जेब में रंगीन चित्र खिंचवाने लायक पैसे मिल जाने के कारण, छह माह के लिए आत्महत्या का विचार हमने मुल्तवी कर दिया। इस प्रकार, हमने एक छमाही इम्तिहान और पास कर लिया - जिन्दगी का।

व्यंग्य की सभी अशुद्धियां दूर करने के बाद, दुबारा टाइप कराया। इस तरह दुगुनी कीमत देकर टाइप कराया हुआ व्यंग्य, दुगुनी कीमत देकर खिंचाए गए रंगीन

आवक्ष चित्र के साथ, एक के स्थान पर दो रुपए का डाक टिकट लगाकर, सम्पादक को भेज दिया। सम्पादक जी ने फरवरी के अंत तक, लेख भेजने का अनुरोध किया था, हमने पन्द्रह फरवरी से पहले ही पहुंचा दिया। देर से प्राप्त होने वाली रचना को रद्दी की टोकरी में डालने की आशंका बराबर बनी रहती है। रचना लौटाने के लिए टिकट लगा लिफाफा हमने इसलिए नहीं भेजा, क्योंकि रचना आमंत्रित की गई थी। आमंत्रित रचना के छपने की शत-प्रतिशत गारन्टी होती है, भले ही सम्पादक जी, उसे बैड शीट से रूमाल बनाकर छापें। रचना भेजकर हमें उतनी ही शांति प्राप्त हुई, जितनी रचना के चित्र सहित छपने के बाद प्राप्त होती है।

चूंकि सम्पादक जी ने होली विशेषांक की तारीख, हमें डेढ़ माह पहले ही बता दी थी, अतः हमने अपने विरोधियों को सूचित कर दिया देख लो तिलचट्टो, हम रंगीन फोटो के साथ छपने जा रहे हैं। तुम्हें पढ़ने को अखबार न मिले, तो कटिंग हम भेज देंगे। अपनी प्रेमिका और पत्नी को, एक ही तरह का पत्र लिखा - अमुक अंक में पढ़ लेना हम कितने महान हैं। प्रेमिका ने प्रत्युत्तर भी दिया, बधाई सहित। पत्नी ने परम्परागत तरीके से लानत भेजी। एक ही तरह के पत्र के, दो तरह के उत्तर मिले। अनेक पाठक मित्रों और लेखक अमित्रों की बधाइयां मिलीं। हमने हॉकर को एक माह पहले ही आदेश दे दिया - विशेषांक की दस प्रतियां हमारे कमरे पर डालनी है। दूर-दराज के मित्रों को भी लिख दिया - होशियार ! अखबार में हम देश के गिने-चुने व्यंग्यकारों के साथ आ रहे हैं। समीक्षकों को अग्रिम सूचना दे दी - लेख पढ़कर ही हमारे विषय में धारणा बनाएं। कॉफी हाउस में बैठकर कर हमने,उस अखबार को देश का सर्वश्रेष्ठ अखबार घोषित करने में कतई कोताही नहीं बरती। उसके साहित्य संपादक को देश का सर्वश्रेष्ठ संपादक बताया। धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि के रिक्त स्थान को वे भर रहे हैं।

खैर, एक-एक दिन, घंटे, मिनट और सैकिंड गिनने के बाद वह शुभ घड़ी भी आई, जब उस अखबार का होली विशेषांक हमारे हाथ लगा। पहले धैर्य से, फिर गौर से देखने के बाद भी, हमें उस विशेषांक में अपना फोटो नहीं दिखाई दिया। हमने सोचा चेहरा फोटोजनिक नहीं होने से फोटो नहीं छापा गया। कोई बात नहीं, व्यंग्य अवश्य होगा। बीस बार, अखबार पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हम नहीं छपे हैं। पैरों तले जमीन खिसक गई। दस अखबार और टाइप फोटो आदि में कुल मिलाकर पचास रुपए खर्च हो गए। वैसे, हमने उम्मीद नहीं छोड़ी है और आज भी, उस अखबार के सम्पादक को महान सम्पादक बताते हैं।

पुरस्कार का गणित

कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारों ने एक साहित्यिक गोष्ठी की थी, जिसका विषय था - "न लिखने का कारण"। बाद में कुछ प्रकाशकों ने "न छपने" और "न विकने" के कारणों पर विचार-विमर्श करके पुस्तक प्रकाशन में लेखक द्वारा दी जाने वाली सहयोग की राशि बढ़ा दी। "न लिखने" के कारण होते हुए भी लेखक बहुत लिख रहे हैं, उधर "न बिकने" का कारण होते हुए भी प्रकाशक धड़ाधड़ पुस्तकें छाप रहे हैं। "बल्क" खरीद में मोटे कमीशन पर इन पुस्तकों को खपा रहे हैं। पुरस्कार के पात्र न होते हुए भी कुछ साहित्यकार, पुरस्कार प्राप्त कर रहे हैं।

मेरा चिन्तन चालू था कि लगभग दौड़ते हुए वर्मा जी मेरी बैठक में प्रवेश कर गए और सूचना की पोटली खोली - केन्द्रीय अकादमी ने पुरस्कारों की घोषणा कर दी। मैं उनकी खुशी को भांप गया और समझ गया - इस बार भी मेरी पुस्तक को परम्परागत तरीके से बिना पुरस्कार लिए लौटना है। मैंने वर्मा जी से कहा - आगे कुछ मत कहना, मैं समझ गया हूं, मुझे पुरस्कार नहीं मिला। वे बोले - आश्चर्य है कि आप कैसे जान गए। मैंने कहा कि आपकी प्रफुल्लित मुद्रा ने सब कुछ कह दिया - आप मेरे मित्र जो हैं।

साहित्यकारों के मित्रों की यह विशेषता होती है कि साहित्यकारों को पुरस्कार मिलते ही उनके चेहरे उसी तरह उतर जाते हैं, जैसे सरकारी बजट देखने के बाद जनता के उतरते हैं। नेता वृन्द, जनता को समझाते हैं – रंगीन टी.वी. सस्ता हुआ है, सिगरेट महंगी हुई है, सैलूलर फोन सस्ते कर दिए हैं और नमक भी सस्ता है। मतदाता इतनी छोटी सी बात नहीं समझते - आटे के दाम कम नहीं हुए तो कोई बात नहीं, नमक तो सस्ता मिल रहा है। आटे में नमक मिलाने के स्थान पर यदि नमक में आटा मिला दिया जाए तो महंगाई से राहत मिल सकती है। खैर, साहित्यकारों की समस्या आटा नहीं पुरस्कार है, जो उन्हें मिले नहीं, लेकिन मिलने वाले हैं।

इस बार एक बड़ा पुरस्कार "जुगतू" को मिला है, क्योंकि चयन समिति

के एक सदस्य के निर्देश में उन्होंने पीएच.डी. की थी। उस समय न तो हमें, और न उन्हें इस बात की आशंका थी कि उनके गुरु एक दिन पुरस्कार चयन समिति के सदस्य बन जाएंगे। भूल हमसे भी हुई - पीएच.डी. न सही, उसका रजिस्ट्रेशन तो उन्हें गाइड मानकर करा सकते थे। तब अगले वर्ष का पुरस्कार हमें ही मिलता। वर्मा जी ने आगे बताया कि पुरस्कार समिति में से दो व्यक्ति "जुगतू" के गुरु रह चुके हैं। अब हमारी समझ में आया - कबीर ने गुरु को गोविन्द से बढ़कर क्यों माना है। गोविन्द के बस की बात नहीं है पुरस्कार दिलाना।

पुरस्कार प्राप्त करने वाले "जुगतू" हमेशा वर्तमान सरकार के विरोधी रहे हैं। निष्पक्ष सरकार का कर्त्तव्य यह है कि विरोधी पार्टी की विचारधारा के साहित्यकार को सम्मानित करे। हालांकि, ऐसे मामलों में अकादमी के अध्यक्ष को सत्ता दल का विरोध सहना पड़ता है। अब यह कोई बात हुई, हम आपको अकादमी का अध्यक्ष बनाएं और आप विपक्षी विचारधारा के साहित्यकार को पुरस्कृत करें। आपके पास अच्छे समीक्षक नहीं थे, तो हमारे पास भेज देते पुस्तकें। कानून व्यवस्था की समीक्षा हम पार्टी मंच पर करते हैं कि नहीं। और क्या आपके पुरस्कार कानून व्यवस्था से ऊपर हैं।

जब तक पुरस्कारों की घोषणा नहीं होती, साहित्यकारों में भ्रम बना रहता है -जैसे मतदाता को हर नई सरकार से बना रहता है। साहित्यकार के लिए भ्रम बहुत आवश्यक है अन्यथा वह अपनी पाण्डुलिपियों, पुस्तकें - बहुत सम्भव है स्वयं को, अग्नि के हवाले कर सकता है। साहित्यकार हमेशा सोचता है कि वह साहित्य में कोई उल्लेखनीय योगदान कर रहा है, उसे पुरस्कार मिलना चाहिए। वह हर वर्ष अपनी पुस्तक, अपने हाथ से रजिस्टर्ड डाक द्वारा, पुरस्कार के लिए भेजता है और कॉफी हाउस में बैठ कर कहता है - मैंने बहुत मना किया था प्रकाशक माने ही नहीं। पुरस्कार नहीं मिलने पर कहेगा - मैंने पहले ही कहा था, पुरस्कार राजनीति से प्रेरित होते हैं। गलती से उसे पुरस्कार मिल जाए तो कहेगा - मैं पुरस्कार के लिए नहीं लिखता। मैं भविष्य में भी पुरस्कार के लिए नहीं लिखूंगा (मिल जाए तो छोड़ूंगा नहीं)। साहित्य जगत में पुरस्कार का उसी प्रकार महत्व होता है, जैसे विधायक दल में मंत्री पद का होता है। जिस प्रकार एक जन-प्रतिनिधि राज्य मंत्री से लेकर सी.एम. तक की लालसा रखता है, उसी प्रकार साहित्यकार छोटे से पुरस्कार से लेकर नोवल तक के सपने देखता है।

मनीषियों ने लेखन को दो तरह "डिफाइन" किया है - एक प्रतिभाजन्य,

दूसरा अभ्यासजन्य। मेरे विचार से यह परिभाषा अधूरी है। लेखन का एक तीसरा प्रकार भी होता है - पुरस्कारजन्य। कुछ लोग सिर्फ पुरस्कार के लिए ही लिखते हैं। इधर उन्होंने लिखा, उधर उन्हें पुरस्कार मिल गया। अपने आस-पास दृष्टिपात करें तो ऐसे लेखकों की कमी नहीं है, जिनकी पाण्डुलिपि पर उस विधा का पुरस्कार आवंटित कर दिया गया, जिसमें लिखना तो दूर, कलम चलाना भी नहीं आता था। बात पुरस्कार के आवंटन की थी, अतः उनकी बारी आ गई।

पुरस्कार को कुछ सिद्धान्त - कुछ गट्स तय करते हैं। 'एक्स' के किस मान के लिए 'वाई' का मान एक लाख का होगा या 'एक्स' के किस मान के लिए 'वाई' का सिर्फ ग्यारह हजार होगा। जो साहित्यकार इस गणित को समझ लेता है, वह पुरस्कार को प्राप्त होता है। इस गणित के आधार पर कोई भी ज्योतिषी भविष्यवाणी कर सकता है कि अगले वर्ष यह पुरस्कार "चंगू" को मिलेगा। वर्तमान में "चंगू", "गंगू" और "पंगू" पुरस्कार की लाइन में लगे हुए हैं।

पुरस्कार ज्योतिष के अनुसार महाविद्यालयी, विश्वविद्यालयी लेखकों को पुरस्कार प्राथमिकता के आधार पर मिल जाते हैं, क्योंकि वे उस विधा को अत्यधिक ऊंचाई पर ले जाकर छोड़ देते हैं, ताकि वहां से गिरने के बाद, विधा को उसके मूल रूप में पहचानना असम्भव हो जाये।

वर्मा जी के अनुसार पुरस्कार प्रतिभाशाली लेखक को ही दिया जाता है। प्रतिभाशाली लेखक वह होता है, जो अपनी प्रतिभा के बल पर पुरस्कार समिति के सदस्य या अकादमी के अध्यक्ष की पुत्री की शादी की तिथि याद कर लेता है। बिना बुलाए शादी में चला जाता है, और कीमती वस्त्र प्रजेन्ट में देता है। मान लीजिए कोई संस्थान 51,000/- का पुरस्कार देता है और चयन समिति के पांच सदस्य हैं, तो प्रत्येक सदस्य को 8,000/- और लेखक को 11,000/- मिलेंगे। हां, 51,000/- रुपए वाला कागजी प्रमाण पत्र लेखक के पास ही रहेगा। हिन्दी के एक मूर्धन्य साहित्यकार पुरस्कार की राशि नहीं लेते, सिर्फ प्रमाण पत्र लेते हैं। राशि को वह विनम्र लौटाकर सामाजिक कार्यों में खर्च करने की सलाह देते हैं। हमसे कोई पूछे तो हम कहेंगे - 51,000/- हमें दे दो, प्रमाण पत्र किसी और को दे दो। इस तरह एक वर्ष में एक पुरस्कार से दो साहित्यकार सम्मानित किए जा सकते हैं। कहानी-कविता में लेखक गरीबी के साथ रह सकता है, वास्तविक जिन्दगी में नहीं। "कूड़े के ढेर पर" रचना लिखी जा सकती है - *कूड़े के ढेर पर बैठ कर नहीं। मैंने वर्मा जी के निर्देशन में देश के प्रमुख पुरस्कारदाताओं*

की सूची तैयार कर ली है। देशभर की अकादमियों के अध्यक्षों की सन्तानों के बारे में पूरा विवरण तैयार कर लिया है, किस वर्ष, किसकी बेटी के हाथ पीले होने की सम्भावना है। एक सूची अलग से तैयार कर ली है, जिसमें अध्यक्षों के काले कारनामों का विवरण है। आशा है मैं प्रतिभा के बल पर न सही, जोड़तोड़ बैठा कर पुरस्कार प्राप्त कर लूंगा।

कहिए ! क्या सेवा करूं

उन्होंने पन्द्रह मिनट में तीस बार कह दिया - कहिए क्या सेवा करूं। वे मेरी सेवा करने पर आमादा थे, जैसे गठबन्धन करके अनेक राजनीतिक दल सत्तासीन होकर देश की सेवा करते हैं। मैं उनके स्कूल का निरीक्षण करने पहुंचा था। मुझे जिस अधिकारी ने निरीक्षण कार्य सौंपा था, उनके, उनसे, उतने ही मधुर सम्बन्ध थे - जितने दो विरोधी विचारधारा वाली पार्टियों के, सत्ता गठबन्धन के समय हो जाया करते हैं। राजनीतिक दलों के घनिष्ठ सम्बन्धों का प्रमाण एक-दूसरे के वक्तव्यों को, प्रेस के सामने काटने से मिलता है। एक पार्टी कहती है - यह आम है, दूसरी उसे नीम बताती है। छह माह बाद आम वाली पार्टी नीम पर, और नीम वाली पार्टी आम पर आ जाती है।

त्यागीजी, जो हमारे वरिष्ठ अधिकारी हैं और भाई जी, (जिनका स्कूल देखने मैं गया था) में इसी प्रकार का गठबन्धन था। त्यागीजी ने कहा - सोच समझ कर रिपोर्ट तैयार करना। कोई भी तथ्य फर्जी नहीं होना चाहिए। (उसके लिए हमारे पास आपसे अधिक प्रतिभाशाली अधिकारी थे) उन्होंने साफ-साफ कहा - दूध का दूध और पानी का पानी करना है। मैंने शंका जाहिर की - यदि दूध उपलब्ध न हो और वे, केवल खारा पानी और मीठे पानी में अन्तर करवाना चाहें तो। त्यागीजी ने मुझे ऐसे घूर कर देखा जैसे मैंने "तो" का उच्चारण कर बोफोर्स तोप का मुंह उनकी ओर घुमा दिया हो। तनाव होने पर त्यागीजी बोलते नहीं - जैसे पाकिस्तान हमारे देश की सीमा पर गोलीबारी करता है, तब हमारी सरकार नहीं बोलती। कुछ सांसद हंगामा करते हैं - सरकार को तुरन्त एक्शन लेना चाहिए। सरकार तनाव खत्म होने के बाद ही एक्शन लेती है, और गोलीबारी बन्द होने के बाद, कड़ा विरोध पत्र लिखती है।

त्यागीजी ने मुझे आगा-पीछा समझाया। मामला सरकारी ग्रान्ट को लेकर था, और यह पता लगाना था कि शिक्षक-शिक्षिकाओं को चैक से भुगतान किया गया या नहीं। भाईजी ने स्वयं स्वीकार किया कि उन्होंने दो माह का भुगतान चैक

से न करके नकद कर दिया था। उनका तर्क था - त्यौहारों के कारण ऐसा किया गया। शिक्षा विभाग– जैसा कि उसके बारे में प्रचलित है – हर तर्क से परे होता है, ने भाईजी के स्कूल की ग्रान्ट बंद कर दी। बाबुओं को रिश्वत खाने का एक इश्यू मिल गया। इस बार भाई जी तंग थे, क्योंकि उनकी किडनी का ऑपरेशन हुआ था। अतः उनके स्कूल में "झारखण्ड मुक्ति मोर्चा सांसद प्रकरण" नहीं हो सका। वैसे, वे बड़े ही सेवाभावी व्यक्ति हैं - सरकारी आदमी को बिना रसगुल्ले खिलाए लौटने नहीं देते। मुफ़लिसी की बात और है। कितने ही मजबूत दांत क्यों न हों, चने के अभाव में पत्थर नहीं चबाए जाते।

मैं उनके दफ़्तर के एक सहायक कर्मचारी (चपरासी कहने पर फील करेंगे) के साथ भाईजी के दफ़्तर में बैठा था। भाईजी मूलतः शिक्षा में प्रकृतिवाद के समर्थक थे। इसलिए खुलेआम दारू पीते थे। जो अन्दर है, वही बाहर होना चाहिए। काश ! हमारे आधुनिक नेता भाईजी के पद चिन्हों पर चलते। भाईजी अपने शिक्षक-शिक्षिकाओं के रुके हुए वेतन को लेकर परेशान थे। मैंने एक फाइल मांगी तो उन्होंने मिठाई की तश्तरी पेश कर दी। मैंने एक रजिस्टर मांगा, तो वे समोसे लेकर हाजिर थे। मैंने उन्हें समझाया - सदन में सत्ताधारी दल की तरह आचरण मत करो। आपसे जो प्रश्न पूछा जा रहा है, उसका सटीक जवाब दो। उन्होंने साफ-साफ कह दिया, मेरे पास कोई रजिस्टर या पत्रावली नहीं है, जो कुछ है, मुख जबानी है। वे एक-एक कर युवा शिक्षिकाओं से मेरा परिचय ऐसे करवाने लगे, जैसे अपने स्कूल का रिकार्ड प्रस्तुत कर रहे हों – सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ। उनकी समस्त शिक्षिकाएं विश्व सुन्दरी प्रतियोगिता में भाग लेने योग्य थीं। मुझे भाईजी के कुशल नियोजक होने का लोहा मानना पड़ा। ये शिक्षिकाएं पिछले डेढ़ वर्ष से, बिना वेतन लिए भाईजी के स्कूल में पढ़ा रही थीं। इतनी कम उम्र में इनका इतना बड़ा त्याग ! धन्य है इस देश की नवयुवतियां, और धन्य हैं उनके प्रेरणा स्रोत - भाईजी।

मैंने भाईजी से कहा - उस मजबूरी का बखान करो, जिसके रहते आपने शिक्षक-शिक्षिकाओं को नकद भुगतान किया। यह सर्वविदित है - शिक्षा विभाग में नकद वेतन तभी दिया जाता है, जब पांच हजार पर हस्ताक्षर करवा कर दो हजार पकड़ाए जाते हैं। भाईजी ने कहा - त्यौहार का अवसर था और बैंक में भीड़-भाड़ ज्यादा थी। हमारी शिक्षिकाएं शालीन हैं और आप जानते हैं भीड़ में शालीनता नहीं होती, इसलिए नकद भुगतान कर दिया। मुझे लगा भाईजी ने महिलाओं के

सम्मान के लिए महान कार्य किया है। उन्हें, उनके इस कार्य के लिए पुरस्कृत किया जाना चाहिए, लेकिन हो उल्टा रहा है। उनकी ग्रान्ट रोक ली गई। मैंने नकद भुगतान का रिकार्ड मांगा, तो उन्होंने एक शिक्षिका को बुला लिया - जैसे वह कैश बुक हो। मैंने उस शिक्षिका से पूछा - आपको नकद भुगतान किया गया ? उसने आत्म विश्वास के साथ कहा – जी हां, पूरे पैसे मिले थे।

काफी देर तक बिना कुछ बोले, कुर्सी पर आंखें बन्द कर बैठा रहा। शायद वे पचासवीं बार बोले थे - कहिए क्या सेवा करूं, जैसे आजादी की पचासवीं वर्षगांठ पर कोई नेता भाषण दे रहा हो। मैंने कहा - किसी सेवा की आवश्यकता नहीं है। मैं यह जानना चाहता हूं, कहीं आप शिक्षक-शिक्षिकाओं का शोषण तो नहीं कर रहे हैं। वे चिहुंके - आपका मतलब शिक्षिकाओं से है। मैंने कहा - मेरा मतलब शिक्षकों से भी है। उनकी आंखों की चमक कुछ कम हुई है। खैर, उन्होंने एकान्त की व्यवस्था कर दी, ताकि मैं प्रत्येक शिक्षक-शिक्षिका से अकेले में पूछताछ कर सकूं।

मैंने एक शिक्षिका की समस्त, प्राकृतिक उपत्यकाओं को निहारते हुए पूछा - आपका यहां शोषण तो नहीं हो रहा है। उसने अर्थपूर्ण मुस्कान (जिसका अर्थ क्लिष्ट था, मैं नहीं समझा) के साथ मुझे देखा। मुझे विश्वास हो गया कि स्कूल की शिक्षिकाओं का शोषण नहीं हो रहा है। शोषित होने वाली शिक्षिका शोषण का प्रश्न आते ही नाराज हो जाती है और कड़क कर पूछती है - किसी प्रकार के शोषण से आपका क्या अभिप्राय है। मैं इस पूछताछ को कागज पर उतार रहा था, तभी एक शिक्षिका ने भाईजी का सन्देश पढ़कर सुनाया, जिसका अर्थ था - भाई पूछ रहे हैं आपकी क्या सेवा की जाए। मैं बार-बार की इस सेवा से तंग आ गया था। मैंने भाईजी के दफ़्तर में लगभग उन्हें डांटते हुए कहा - यह सेवा-एवा मुझे पसन्द नहीं। वे, बोले कोई बात नहीं। उन्होंने एक शिक्षिका को आदेश दिया - आज साहब के घर जाकर इन्स्पेक्शन की रिपोर्ट ले आना। शिक्षिका मेरे घर का पता पूछने लगी। मैंने कहा - इसकी कोई आवश्यकता नहीं, रिपोर्ट की प्रति मैं डाक द्वारा भेज दूंगा। भाईजी मायूस हो गए - सेवा का अन्तिम मौका भी चला गया। दफ़्तर में निस्तब्धता छा गई।

कमरे के मौन को भाईजी ने ही तोड़ा। साहब ! आप साफ-साफ हुकम करो - मैं आपकी क्या सेवा करूं। शायद उन्होंने सौवीं बार सेवा – भाव प्रदर्शन किया था, ठीक उसी प्रकार जैसे पचासवीं बार किया था। हमारा देश भी स्वतंत्रता

दिवस की सौवीं वर्षगांठ उसी प्रकार मनाएगा, जैसे पचासवीं मना रहा है। इस देश में आजादी के पच्चीस साल हों या पचास साल, कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। प्रगति के नाम पर हमने नैतिकता को उसी प्रकार बाहर फेंक दिया है, जैसे कोई भ्रष्ट राजनीतिक दल, अपने ईमानदार नेता को बाहर कर देता है। झूठ और बेईमानी के रस में पगी आजादी हमारे पास है।

पता नहीं, कब, कैसे भाईजी ने मेरा हाथ देख लिया और बिना अवसर गंवाए बोले - आपकी हस्तरेखाएं बहुत प्रबल हैं। भाग्य रेखा का क्या कहना। काश! ऐसी मेरी होती। मैंने मन ही मन कहा - तुमसे भाग्यशाली कौन होगा, इतनी सुन्दर शिक्षिकाओं के साथ स्कूल चला रहे हो। हस्तरेखा वाली ''गुगली'' को मैं झेल गया। इससे पहले सुन्दर शिक्षिकाओं से उन्होंने बॉउन्सर फिंकवाई थी। वे भी मुझे आउट नहीं कर सकीं, और चोट भी नहीं लगी। भाईजी किसी भी तरह मेरे स्टम्प उखाड़ने पर आमादा थे, और मैं शतक ठोकने पर। वे एक बार फिर निराश हुए, क्योंकि मैं भी, पॉमिस्ट्री में दखल रखता था और अब भाईजी का हाथ देख रहा था। उनकी निजी ज़िन्दगी की कुछ गोपनीय बातें, हाथ देख कर बताई, जिनकी उन्होंने पुष्टि कर दी।

भाईजी और मुझ पर, समय का यह कालखण्ड भारी पड़ रहा था। पांच बजे तक उसी प्रकार का असमंजस बना रहा, जैसे केन्द्र में सत्तादल को समर्थन देने वाली पार्टी द्वारा, समर्थन वापस लेने पर बनता है। शाम तक सुन्दर शिक्षिकाओं के चेहरे मुर्झाने लगे। भाईजी ने मुझे इस बार रन आउट करने की कोशिश की और स्पष्ट किया कि वे बच्चों से फीस नहीं लेते। उनकी यह कोशिश भी बेकार गई, क्योंकि एक कक्षा के बच्चे ने सच-सच बता दिया कि वह प्रति माह तीस रुपया देता है।

यद्यपि, बाहर से मैं कठोर दिखाई दे रहा था, मगर हृदय पटल पर निःस्वार्थ भावना से सेवा कर रहे शिक्षक और खासतौर से, शिक्षिकाओं के चेहरे अंकित हो चुके थे। मैंने अपनी रिपोर्ट में ग्रान्ट देने की सिफ़ारिश कर दी।

बिस्तर बांध लो

अधिकारी जी रात को देर से सोये थे, अतः जल्दी उठने का प्रश्न ही नहीं था, परन्तु टेलीफोन की घंटी ने उन्हें बिस्तर से उठा दिया। "हलो मैं शर्मा उपखंड अधिकारी बोल रहा हूं।" "बिस्तर बांध लो" - - उधर से आवाज आई। शर्मा जी ने कहा - "अभी तीन घंटे और सोना है, उसके बाद बांध लूंगा।" सामने वाला छुटभैया नेता था और घोषणा कर रहा था कि उपखंड अधिकारी का तबादला करवा देगा। बिस्तर बांधने की धमकी इसी संदर्भ में दी जा रही थी। नेता ने आगे कहा - "हमने बड़े-बड़े अधिकारियों के बिस्तर बंधवा दिए हैं, आप हैं क्या चीज़।" शर्मा जी ने कहा - "ठीक है बिस्तर मैं बांध लूंगा, पहले आप स्थानान्तरण आदेश हमें दिखाओ।" छुटभैया नेता गरजा - "बिस्तर बांध लो स्थानान्तरण आदेश का फैक्स आपको दफ्तर में मिल जाएगा।" शर्मा जी परेशान हैं। एक तो नींद पूरी नहीं हुई, दूसरे अभी बैड टी नहीं ली। पेस्ट नहीं किया, मुंह नहीं धोया - अभी से बिस्तर कैसे बांध लें। अधिकारी स्वयं कभी बिस्तर नहीं बांधता, उसके सहायक कर्मचारी ही उसका सामान पैक करते हैं, परन्तु नेतावृन्द अधिकारी को ही आदेश देते हैं - बिस्तर बांध लो।

बिस्तर बांधना मुहावरा है, जिसका अर्थ तबादले से है। कई बार जब सरकारी कर्मचारी या अधिकारी किसी नेता का गलत या सही काम नहीं करते तो उन्हें, "बिस्तर बांध लो" की शुभकामनाओं से नवाज़ा जाता है। यदि इस धमकी का असर अधिकारी पर नहीं होता है तो नेता फिल्मी गीत "जा उड़ जा रे पंछी ये देश हुआ बेगाना" गाने लगते हैं। अधिकारी नेता को कहता है - मैं स्वयं यहां रहने का इच्छुक नहीं हूं, आप तबादला करवा दो। नेता फिर कहता है - हम आपको यहां टिकने नहीं देंगे। अधिकारी टिकना नहीं चाहता, नेताजी उसे हटाना चाहते हैं, परन्तु यह कृत्य उनकी पहुंच से परे है, अतः वे सुबह शाम अधिकारी को धमकी देते हैं - बिस्तर बांध लो। नेता और अधिकारी आमने-सामने होते ही - मैं यहां नहीं रहना चाहता, मैं आपको रहने नहीं दूंगा के वाक्यों से एक-दूसरे की खबर लेते हैं।

किसी सख्त अफसर का जब तबादला होता है, तो पूरा दफ़्तर खुशी के माहौल में डूब जाता है। पूरे दफ़्तर में एक भी कर्मचारी सीट पर नहीं मिलता। सभी केन्टीन में चाय समोसे के साथ जश्न मनाते हुए मिलते हैं। "देखो तानाशाही तो हिटलर की भी नहीं रही, आखिर बिस्तर बंध ही गया।" वास्तविकता यह होती है कि अधिकारी ने सामान पैक किया ही नहीं, लेकिन दफ़्तर में सब यही कहेंगे - साहब का बिस्तर गोल हो गया।

बिस्तर हमेशा गोल ही क्यों होता है - आयताकार या वर्गाकार क्यों नहीं होता, इस प्रश्न का जवाब हमारे मित्र वर्मा जी ने दिया - "गोल बिस्तर को लुढ़काने में आसानी रहती है। उसका कोई पैंदा नहीं होता, घुमाने पर पैंदा बदलता रहता है। बिस्तर सरकारी कर्मचारियोंऔर अधिकारियों के बंधते हैं और सभी जानते हैं - जिस राजनीतिक दल की सरकार होती है, उनका पैंदा उसी दल पर टिका रहता है। जैसे ही सरकार बदली, अधिकारियों का बिस्तर गोल होने लगता है। कुछ अधिकारी इतने घाघ होते हैं कि सरकार बदलने से पहले ही बिस्तर का पैंदा बदल देते हैं, ताकि उनका बिस्तर बंधने से बच जाए। ऐसे अधिकारी बिस्तर बांधने की धमकी से बच जाते हैं। ऐसे अधिकारी यदि अपने बिस्तर को गोलाई में न बांध कर, वर्गाकार रूप में रखें तो भी उन्हें कोई ख़तरा नहीं होता। समय रहते जो खटमल चारपाई बदल लेते हैं, उन्हें हमेशा खून ताजा ही चूसने को मिलता है, इसके विपरीत सिद्धान्तों की एक ही चारपाई से उम्र भर चिपकने वाले खटमल, भूखों मरते हैं।"

अधिकारी कितना ही बड़ा क्यों न हो, और नेता कितना ही छोटा क्यों न हो, बिस्तर के कारण एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। छोटे से छोटा नेता बड़े आई.ए.एस. अधिकारी को उसी के चैम्बर में कह देता है - "अपना बिस्तर गोल कर लो।" अधिकारी सोचता है कि बिस्तर अभी गोल करूं या पांच बजे दफ़्तर से उठने के बाद। दफ़्तर से बाहर जाकर छुट भैया नेता ऊंचे स्वर में चिल्लाता है - इनके दिन लद गए। अब तो इन्हें जाना ही होगा - जैसे अधिकारी उस नेता के समर्थन पर टिकी हुई अल्पमत पार्टी की सरकार हो। छुटभैया नेता दफ़्तर के चपरासियों, बाबुओं से ऐसे व्यवहार करेगा, जैसे मंत्रिमंडल के सदस्य एक-दूसरे से करेंगे। नेताजी की दुश्मनी सिर्फ अधिकारी से है। बाबू तो उसी की तरह, अधिकारी का बिस्तर गोल करवाने में जुटे हुए हैं। हमने फाइलें गायब कर दीं, लेकिन अभी तक इस अधिकारी के खिलाफ़ कोई एक्शन नहीं हुआ। बाबू अपने पैसों से छुटभैया नेता को चाय

पिलाएगा और दफ़्तर की नई खामियों से अवगत कराएगा - जैसे हल्के का पटवारी एस.डी.एम. या कलेक्टर को मीटिंग में अपने गांव की फसल को ओलों से हुए नुकसान की जानकारी देता है।

नई जानकारियों के साथ नेता फिर अधिकारी के चैम्बर में घुस जाएगा। "अब पता चला है आपके दफ़्तर में गुल खिल रहे हैं।" वह कहेगा हमारे पास ठोस प्रमाण हैं - आपके दफ़्तर में ऐसा हो रहा है या वैसा हो रहा है। आपने इस दफ्तर को भ्रष्टाचार का अड्डा बना रखा है। मैं जमीन से जुड़ा हुआ नेता हूं, भ्रष्टाचार समूल खत्म कर दूंगा।" उधर अधिकारी सोचेगा - ज़मीन पर तो मेरे भी पैर रखे हुए हैं, लेकिन वह नेता जी का प्रतिवाद नहीं करेगा। आधे घंटे तक भ्रष्टाचार की पोटली खोलने के बाद नेताजी अंत में कहेंगे - अब आप बिस्तर बांध ही लो। अधिकारी कहेगा - "ठीक है, बांध लूंगा।" नेताजी की समझ में नहीं आता कि उसके आगे क्या कहा जाए।

अगला समर्पण भाव लिए बैठा है। बिस्तर बांधने को तैयार है, गलतियों को गिनाने पर बोलता नहीं। नेताजी की समूची रणनीति उस पर धरी रह जाती है, जब अधिकारी कहता है - हम तो बहता पानी हैं। अधिकारी बनते ही हमने समझ लिया था कि हर सुबह बिस्तर बांधना है, और हर रात को उसे खोलना है। जीवन का यही तो सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। हमेशा बिस्तर बांध के तैयार रहो - अगले मुकाम के लिए। कब बुलावा आ जाए, कहा नहीं जा सकता। अधिकारी थोड़ी अंग्रेजी बोलेगा - एवरी बडी विल गो, नो बडी विल स्टे हियर। नेता जी इस अंग्रेजी से आहत हो जाएंगे। वे मन ही मन सोचेंगे - काश! मैं इसे अंग्रेजी में बिस्तर बांधने की धमकी दे पाता। आज ही गांव के मास्टर जी से बिस्तर बांधने का अंग्रेजी ट्रांसलेशन करवाऊंगा, फिर देखूंगा इन अधिकारियों को। अंग्रेजी का जवाब अंग्रेजी से देंगे - जैसे ईंट का जवाब ईंट से या लाठी का जवाब लाठी से दिया जाता है।

दफ्तर से निकलते ही वह सीधा क्षेत्रीय एम.एल.ए. के पास जाएगा। एम.एल.ए. जानते हैं कि वह कितने पानी में है। घंटे भर प्रतीक्षा करवाने के बाद वे उससे बात करते हैं। वह बन्दूक की गोली की तरह छूटता है, शर्मा जी का तबादला होना ही चाहिए। हमारा कोई काम नहीं करता - यहां तक कि तबादले की धमकी को मज़ाक समझता है। यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है, उसका बिस्तर गोल होना ही चाहिए। एम.एल.ए. उसे ठण्डा पानी पिलवाएंगे और सांत्वना देते

हुए कहेंगे - मुझे बताओ शर्मा जी से क्या काम करवाना है। छुटभैया नेता काम नहीं बताएगा, वह तो शर्मा जी का बिस्तर बंधवाने पर आमादा है। एम.एल.ए. उसे ऊंच-नीच समझाएंगे और शर्मा जी को फोन करेंगे - जरा हमारे वार्ड मैम्बर की समस्या सुन लीजिए, और यथासंभव उसे हल कर दीजिए। शर्मा जी कहेंगे - उन्हें मेरे पास भेज दो। छुटभैया नेता शर्मा जी से मिलेगा, परन्तु समस्या नहीं बताएगा। वह कहेगा - मेरी एम.एल.ए. साहब से बात हो गई है, अब आपका बिस्तर बंधने ही वाला है।

अधिकारी संतुष्ट हो जाता है - उसे अपना बिस्तर स्वयं नहीं बांधना पड़ेगा, एम.एल.ए. साहब बंधवा देंगे।

गणतंत्र दिवस और कबूतर

लो फिर गणतंत्र दिवस आ गया - इतवार के दिन। ध्वज फहराया जाएगा, राष्ट्रभक्ति के गीत गाए जाएंगे, संविधान की दुहाई दी जाएगी, राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य गिनाए जाएंगे, परन्तु एक इतवार 'किल' हो जाएगा। गणतंत्र दिवस पर स्कूलों में सरकारी समारोह आयोजित किए जाएंगे। बाकी कार्यालय अपने रविवार को पूर्ववत, निजी कार्यों में खर्च करेंगे। बेचारे अध्यापकों का एक इतवार चला गया। अध्यापक राष्ट्र के निर्माता हैं, तभी तो परिवार कल्याण कार्यक्रम, पशु गणना, जन गणना, पल्स पोलियो तथा राष्ट्रीय एकता का दायित्व उन्हें दिया गया है। उधर राष्ट्र के भाग्य विधाता भाषण झाड़ेंगे - भ्रष्टाचार की गंदगी हटाओ और देश को बचाओ।

दिल्ली में देश की प्रगति सम्बन्धी झांकियां दिखाई जाएंगी। ये झांकियां वर्तमान भारत का प्रतिबिम्ब होती हैं, अतः अच्छा होता, यदि इन झांकियों में तमिलनाडू के सेंडिल-साड़ियां, हिमाचल प्रदेश के ज़ब्तशुदा नोट और माइकल जेक्सन को प्रदर्शित करते। मुम्बई में माइकल जेक्सन को देखने भीड़ उमड़ पड़ी थी - गणतंत्र की परेड में, उन्हें देख कर पूरा देश उमड़ सकता था। अच्छा होता यदि ग़रीबों के घर से जब्त कर आटे के खाली पीपों का प्रदर्शन भी कर दिया जाता। सामूहिक नरसंहार के सम्बन्ध में यदि एक झांकी निकाल दी जाती तो हमारे गणतंत्र दिवस समारोह में चार चांद लग जाते। हम कब कहते हैं झांकी में असली विदेशी राइफलें चलाओ, हम तो कहते हैं प्लास्टिक की चलाओ, लेकिन आवाज असली होनी चाहिए।

आज देश आतंकवादियों के आगे लाचार सा हो गया है। गणतंत्र दिवस पर कोई उत्साह नहीं है। समाचार पत्रों में छपा राष्ट्रपति का राष्ट्र के प्रति संदेश और ट्रेन में बम विस्फोट के समाचार समान भाव से पढ़े जाते हैं। महत्वपूर्ण खबर यह भी नहीं है कि यू.पी. और बिहार में ठण्ड से कितने मरे। महत्वपूर्ण खबर यह है कि कितने राज्यों में संकट चल रहा है। भविष्यवाणी यह नहीं है कि गेहूं का भाव नीचे

आएगा या नहीं, भविष्यवाणी यह है कि राजस्थान, बिहार और यू.पी. में राजनीति का ऊंट किस करवट बैठेगा। इन सभी से वजनी खबर यह है कि किस नेता या नौकरशाह ने गणतंत्र दिवस समारोह में कितने कबूतर उड़ाकर देश में शांति स्थापित करने में सहयोग दिया।

नेता और कबूतर, दोनों ही शांति के प्रतीक हैं - फिर भी यदि शांति स्थापित नहीं हो रही है, तो इसमें नेताओं का नहीं कबूतरों का दोष है। लगता है हमारे देश के शांतिप्रिय कबूतरों ने विदेशी ताकतों से समझौता कर लिया है।

हमने सोचा था कबूतरों के उड़ते ही कावेरी जल विवाद हल हो जाएगा। कितने गणतंत्र दिवस हमने इसी आशा में निकाल दिए, परन्तु समस्या जहां की तहां बनी हुई है - न खुदा ही मिला न विसाले सनम। कावेरी विवाद ने एक बार फिर, वैश्विकीय सत्य को उजागर किया - पानी राजनीति का अभिन्न अंग है। रहीम जी एक बार फिर सुर्खियों में आ गए - अपने दोहे के कारण। रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून....।

अब समय आ गया है - हम कबूतरों के उड़ाए जाने पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। राष्ट्रीय स्तर पर कबूतरों की गतिविधियों पर नज़र रखनी पड़ेगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये कबूतर दाना पानी लेने के बहाने उग्रवादियों से प्रशिक्षण लेकर, शाम को हमारी मुंडेरों पर आकर बैठ जाते हों। देश के राजनीतिक परिवेश को बनाने-बिगाड़ने में इन कबूतरों का बहुत महत्व है। जो लोग कबूतर पालते हैं, उनका सर्वेक्षण किया जाना चाहिए - उनके पास दो वर्ष पहले कितने कबूतर थे और अब कितने हैं। यदि कबूतर, बन्दूक की आवाज सुनकर भी उड़ें नहीं, तो समझ लो, उन्हें उग्रवादियों ने प्रशिक्षण दे दिया है।

गणतंत्र दिवस समारोह के लिए कबूतर थैलियों में भरकर लाए जाते हैं। दूर से देखें तो ये कबूतर, नोटों के बंडल लगते हैं। थैली का मुंह बन्द होने के कारण अनेक प्रकार के भ्रम उत्पन्न होते हैं। कबूतर थैली में फड़फड़ाते रहते हैं, और जब मुख्य अतिथि जी उन्हें उड़ाना चाहते हैं, तो कबूतर उनके हाथों में आ जाते हैं। इन्हीं हाथों से ध्वजारोहण किया गया था, इसलिए कबूतरों को अपने हाथों में लेना राष्ट्रीय कार्य माना जाता है। उधर कबूतर उड़ते हैं आसमान में, इधर जनता जनार्दन ऐसे ताली पीटती है - जैसे सचिन ने छक्का मार दिया हो। कबूतरों की ऊंचाई देख कर यह अनुमान लगाया जाता है कि अब वे लौटकर शहर में नहीं आएंगे। मगर शाम होते ही, वे अपने मालिक की मुंडेरों पर आ बैठते हैं।

कबूतर सभा स्थल पर थैली में ही क्यों लाए जाते हैं, इस प्रश्न का उत्तर हमारे मित्र कवि अलभ्य ने दिया। उन्होंने बताया, इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह है कि यदि कोई राजनीतिक व्यक्ति ध्वजारोहण कर रहा है, तो उसे भ्रम बना रहता है कि थैली रुपयों की है, और समारोह के दौरान उसे भेंट की जाएगी। वह बहुत उत्साह से ध्वजारोहण करता है। कभी-कभी तो ध्वज का पोल इस अतिरिक्त उत्साह के कारण कांप उठता है, लेकिन ध्वजारोहण के बाद जब उस थैली में से कबूतर निकलते हैं, तो नेता जी का जोश ठंडा पड़ जाता है।

कवि अलभ्य के अनुसार थैली में कबूतर बन्द करने का दूसरा कारण - *न्यूटन का गति सम्बन्धी तीसरा नियम है।* इस नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया के बराबर और विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है। यदि थैली का मुंह बन्द रहता है तो कबूतर पिंजरे में अधिक घुटन महसूस करते हैं। सभी जानते हैं घुटन वाला पंछी पिंजड़े से मुक्त होने पर बहुत ऊंचा उड़ता है। इस नियम के अनुसार यदि कबूतर कम घुटन महसूस करेंगे, तो वे अधिक ऊंचाई तक नहीं उड़ सकेंगे। परिणाम यह होगा कि वे मंच के ऊपर बैठ जाएंगे तथा अतिथियों के कपड़ों पर बीट कर देंगे।

अतिथियों के कपड़े खराब होने पर, देश के गणतंत्र को खतरा पैदा हो सकता है। समारोह में बीट करने वाले, कबूतर शांति स्थापित करने में सफल नहीं हो सकते। जो कबूतर उड़ाए जाने पर भी मंच पर बैठे रहते हैं, वे कुर्सी प्रिय भ्रष्ट नेता के समान होते हैं। कोर्ट में चालान पेश हो गया - मगर कुर्सी पर बैठे हैं। ऐसे कबूतरों के मालिकों को देशद्रोह के आरोप में तुरन्त गिरफ्तार कर लेना चाहिए।

कवि अलभ्य का व्याख्यान सुन कर हमें संतोष हुआ। देश में आटे का भाव कुछ भी हो जाए - कबूतर उड़ाए जाते रहेंगे। दालें कितनी ही महंगी हो जाएं, कबूतर थैलियों में भरे जाते रहेंगे। रेल दुर्घटनाएं भी कबूतरों के उड़ने पर प्रतिबंध नहीं लगा सकतीं। बिहार में नरसंहार होता है, तो कोई बात नहीं, हम कबूतर उड़ाकर उस पर काबू पा लेंगे। नेहरू जी ने कबूतर उड़ाकर जो शांति की नींव डाली थी, उस पर हमने बहुत बड़ा महल बना लिया है। आज के युग में कबूतरों का महत्व बढ़ गया है। घर-घर लड़ाई-झगड़े बढ़ गए हैं। पति-पत्नी के बीच खाइयां खुद गई हैं। ऐसे में घर से लेकर दिल्ली तक भारत को शांति और एकता के सूत्र में यदि कोई पिरो सकता है, तो वह कबूतर है।

तीसरे विकल्प की तलाश

पूरा देश इस समय तीसरे विकल्प की खोज में लगा हुआ है। सत्ता से लेकर सत्य तक, तीसरे विकल्प की खोज जारी है। उन्होंने 50 साल में कुछ नहीं किया और इन्होंने जो किया, वह नहीं करना था। तीसरा मोर्चा चाहिए, जो या तो इन दोनों से अधिक देश का भट्ठा बैठा दे या फिर तीन दिन बाद ही चुनाव करवा दे। पूरा देश ऐसे विकल्प को ढूंढ रहा है। झूठ और सत्य के बीच तीसरे विकल्प की खोज भी जारी है। नितान्त सत्य या नितान्त झूठ इस देश में चल नहीं पा रहा है। जो सत्यवादी है, वह आत्महत्या कर रहा है और जो झूठ में विश्वास करता है उसका झूठ पकड़ा जा रहा है। उसे शेखचिल्ली समझा जा रहा है। सत्य ऐसा होना चाहिए जो झूठ का पूरा-पूरा मज़ा दे।

आज हर व्यक्ति सुरक्षित झूठ की तलाश में है। लेखक सम्मेलन में एक लेखक कह रहे थे "हमारे गॉड फादर हमें अपनी सुरक्षा में इस्तेमाल करते हैं।" मैंने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता।" उन्होंने कहा – ऐसा है। वे हमें परिवार कल्याण के आसान तरीकों की तरह प्रयोग करते हैं और फिर प्रयोग के बाद में वहां फेंकते हैं, जहां कोई देख न सके। वे हमें कचरा समझते हैं और सुरक्षित होकर भौतिक सुखों में लिप्त रहते हैं।" लेखक बहुत गुस्से में थे। वे आगे बोले कि साहित्य को इस स्थिति से उबारने के लिए तीसरा विकल्प तलाशना होगा। मार्क्सवाद मर गया और जो गैर मार्क्सवादी हैं, उनके पास प्रतिभा का अभाव है। तीसरा विकल्प खोजने के अलावा हमारे पास कोई रास्ता नहीं है। यहां तक होता तो भी चल जाता, परन्तु लेखक देशी दारू और विदेशी व्हिस्की को छोड़ कर तीसरे विकल्प की तलाश में भी जुट गए हैं। देशी दारू प्रेमचन्द काल की लगती है और विदेशी नई कहानी की तरह पिट चुकी है। लेखक का विचार है कि वे एक ऐसी दारू का आविष्कार करेंगे, जो न तो देशी हो और न विदेशी हो।

शर्माजी के घर में रोज झगड़ा होता है। शर्माजी कभी अपनी पत्नी को पीटते हैं, तो कभी पत्नी उनको – कुल मिलाकर बच्चों के पिटने वाले तमाशों के

दो ही विकल्प हैं। शर्माजी का अफेयर उनकी स्टेनो से चल रहा है। यदि वे सफल हो गए, तो उनके बच्चों को पिटने वाली तमाशा देखने के मामले में तीसरा विकल्प उपलब्ध हो जाएगा, क्योंकि फिर शर्माजी की पत्नी अपनी सौत को पीटेंगी।

इस समय जिसे देखो वही तीसरे विकल्प को तलाश रहा है। जो लोग दूध और चाय पीते हैं, वे तीसरे विकल्प को ढूंढ़ रहे हैं। तीसरा विकल्प दारू हो सकता है, परन्तु लोग अभी दारू से सन्तुष्ट नहीं लगते, इसलिए तीसरे पेय की तलाश जारी है। एक विकल्प स्वर्गीय मोरारजी भाई वाला पेय हो सकता है। गृहस्थ जीवन में भी तीसरे विकल्प को लेकर बहस छिड़ी हुई है। स्वर्गीय जैनेन्द्र जी बहुत पहले समझ गए थे कि गृहस्थ जीवन के लिए तीसरे विकल्प की आवश्यकता होती है, इसलिए उन्होंने एक उपन्यास लिखा 'पति-पत्नी और वह।''

राजनीति में तीसरे विकल्प के लिए नए-नए गठबंधन हो रहे हैं। दीपू और दीनू की पार्टी के लोग टूट कर मैकू के झण्डे के नीचे खड़े हैं। वे दावा कर रहे हैं कि देश की राजनीति में, वे तीसरे विकल्प के रूप में उभरे हैं। विजातीय तत्वों को मिलाकर प्रयोगशाला में परीक्षण चल रहे हैं। कभी-कभी इन परीक्षणों के दौरान विस्फोट भी हो जाता है।

महिलाओं के सिर के बालों के फैशन को लेकर, तीसरे विकल्प की तलाश की जा रही है। बढ़े हुए बाल, और कटे हुए बालों के बीच तीसरे विकल्प की खोज जारी है। देश में फैले हुए लाखों ब्यूटी पार्लर इस खोज में सक्रिय सहयोग कर रहे हैं। जिस दिन बालों के फैशन के लिए तीसरा विकल्प मिल जाएगा, उस दिन इस देश की आधी समस्याएं हल हो जाएंगी।

विधानसभाओं में जूते और चप्पलें चलते-चलते काफी अर्सा हो गया। अब इन जूते और चप्पलों के विकल्प की खोज करनी पड़ेगी। एक विकल्प पत्थर हो सकता है। खासकर छोटे पत्थर, जूते और चप्पलों का स्थान ले सकते हैं। कुर्तों की झोलेनुमा जेबों में, ये पत्थर आसानी से रखे जा सकते हैं। सिर फोड़ने के लिए एक ही पत्थर काफी होगा। घायल व्यक्ति दो-तीन सत्रों तक विधानसभा में दिखाई नहीं देगा।

रिश्वत में नोटों के प्रचलन और वस्तुओं को प्रेजेन्ट के रूप में देने के स्थान पर नई व्यवस्था कायम की जानी चाहिए। रिश्वतखोरी में विकल्प की तलाश के लिए राष्ट्रीय बहस की आवश्यकता है। इस महती कार्य में श्रीमान हर्षद मेहता अपना अमूल्य सहयोग दे सकते हैं। मेरे विचार से आलू गिफ्ट में दिए जा सकते

हैं। क्योंकि आलू के दाम चढ़ गए हैं। प्याज भी महंगा हो गया है।

ऐसे कई विकल्प हो सकते हैं, जिन पर साहित्यकारों और हिन्दी प्रेमियों को रोना आ सकता है। फिल्मी हस्तियों को फिल्म निर्माण और अभिनय के बीच तीसरा विकल्प व्यापार कम्पनियों के रूप में मिल गया है। अमिताभ बच्चन ने एक कम्पनी बनाई है "अमिताभ बच्चन कारपोरेशन लिमिटेड"। आंध्र प्रदेश में भी कई कम्पनियां बन गई हैं।

जिस दिन, देश को तीसरा विकल्प मिल जाएगा, उसी दिन देश 21वीं सदी में चला जाएगा। भले ही 20वीं सदी पूरी न हो पाई हो।

ये सरकार है या टी क्लब

कुछ लोग कहते हैं कि सरकार ऐसी चल रही है, वैसी चल रही है – इसे ऐसे चलना चाहिए था या फिर वैसे चलना चाहिए था। कुछ लोगों को शक है कि सरकार चल भी रही है ? वे कहते हैं कि सरकार चौराहे पर खड़ी है। सरकार जब चौराहे पर खड़ी हो जाती है, तब बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सारा ट्रैफिक जाम हो जाता है। कुछ लोग कहते हैं हरी बत्ती हो गई, मगर सरकार जस की तस है। वह चौराहे पर खड़ी हो गई है, और तय नहीं कर पा रही है कि उसे किधर जाना है। इसी कश्मकश में बार-बार उसे लाल बत्ती का सामना करना पड़ रहा है। कुछ लोग कह रहे हैं कि सरकार लाल बत्ती का बहाना बनाकर चौराहे पर अड़ गई है।

मैं इन सब बातों का खंडन करता हूं,और दावा करता हूं कि सरकार चल रही है। चल ही नहीं रही है, बल्कि दौड़ रही है और इसी रफ़्तार से चलती रहेगी, क्योंकि हमारे दफ़्तर का टी क्लब चल रहा है। कितनी बाधाएं पार की है हमारे टी क्लब ने मगर बन्द नहीं हुआ। टी क्लब के कई प्रबन्धक बदल गए, कई बार कप प्लेट फूट गए, चाय, दूध और शक्कर को लेकर न जाने कितने घोटाले हुए मगर टी क्लब बन्द नहीं हुआ, उसकी गति धीमी नहीं हुई और उसके चौदह सदस्यों में से एक भी नहीं टूटा। टी क्लब को तोड़ने की अनेक कोशिशें हुईं। न जाने कितने प्रलोभन दिए गए, लाभ-हानि का गणित समझाया गया, परन्तु धन्य है टी क्लब के सदस्य चट्टान की तरह अडिग रहे। लोग उदाहरण देते हैं टी क्लब हो तो ऐसा। बिना शक्कर की चाय पीकर भी इसे चलाते रहे इसके सदस्य।

संयोग देखिए उधर सरकार के भी चौदह घटक हैं, इधर हमारे टी क्लब के भी चौदह सदस्य हैं।

कभी-कभी भ्रम होता है कि कहीं हमारे टी क्लब वालों ने तो सरकार नहीं बना ली। उपस्थिति पंजिका में उनके हस्ताक्षर देख कर, इस भ्रम का खंडन हो जाता है।

सरकार के कार्यकलापों को देख कर यह भी शक होता है कि हमारे क्लब के किसी सदस्य के सरकार से अवश्य ही जायज़ अथवा नाजायज़ ताल्लुकात हैं। इधर हमारे टी क्लब का कोई सदस्य बचकानी हरकत कर बैठता है, उधर सरकार भी नादानी कर देती है। इधर हमारे क्लब का कोई सदस्य, दूसरे क्लब के सदस्य से लड़ बैठता है, तो उधर सरकार विपक्ष से भिड़ जाती है। इधर हमारे टी क्लब का कोई सदस्य अपने ही क्लब के दूसरे सदस्य से भिड़ जाता है, तो उधर सरकार में शामिल लोग सरकार के खिलाफ बयान देने लगते हैं। कोई पत्रकार जब उन्हें टोकता है तो वे कहने लगते हैं, सरकार में आंतरिक लोकतंत्र है। जरूरत पड़ने पर हम सदन में भी यही कार्य कर सकते हैं।

कुछ मास पूर्व जब हमारे क्लब के कुछ सदस्यों ने साथ-साथ मोटर साइकिल खरीदने की योजना बनाई। क्लब के किसी सदस्य के सरकार के साथ गोपनीय संबंधों के चलते इस योजना का पता सरकार को चल गया। हमारे क्लब के उसी सदस्य के कहने पर सरकार ने रातों-रात पेट्रोल की कीमतें बढ़ा दीं। अब खरीद लो मोटर साइकिल। खरीद भी लोगे, तो चला नहीं पाओगे - घर के शो रूम में खड़ी रहेगी। हमारे टी क्लब के सदस्यों ने पूरे देश के लिए पेट्रोल महंगा करवा दिया।

यह रहस्य अभी तक खुला नहीं है, अगर खुल भी गया तो वह साफ इन्कार कर देगी और कहेगी टी क्लब के चौदह सदस्य और सरकार के चौदह घटक संयोग मात्र हैं।

हमारे अंसारी जी को ही लो। अच्छे व्यापारी हैं, मगर हमारे टी क्लब की ख़ातिर नौकरी कर रहे हैं – उन्हें अपने घर ऐसी चाय नहीं मिल पाती है। पिछले सात माह से वे शिकायतें कर रहे थे कि टी क्लब में चाय का स्तर घटिया हो गया है, मगर पिछले माह उन्हें टी क्लब का मैनेजर बना दिया गया, तो तीन दिन बाद चाय की प्रशंसा ऐसे करने लगे जैसे तीन दिन ट्यूशन पढ़ के किसी दक्षिण भारतीय नेता को हिन्दी बोलना आ गया हो। मैंने कहा अंसारी जी यह काफी बिगड़ा हुआ क्लब है,इसे सुधारना उसी तरह कठिन है, जिस तरह चार दिनों में हिन्दी बोलना। चार दिनों में हिन्दी की - क का कि की ..... भी नहीं सीख सकते।

अंसारी जी इस ताक में हैं कि टी क्लब में एक शक्कर घोटाला कर दें। हमारे टी क्लब के लिए इस प्रकार का घोटाला उतना ही महत्व दिया जाएगा, जितना कुछ पूर्व केन्द्र में चीनी घोटालों को दिया गया था। किसी को शक भी नहीं होगा कि अंसारी जैसा करोड़पति मामूली शक्कर घोटाला भी कर सकता है।

अंसारी जी को क्लब का प्रबन्धक बनवाने में हमारे पड़ोसी सेक्शन वालों का प्रमुख हाथ था। जिस कमरे में चाय बनती थी, वह उनके कब्जे में था। उन्होंने धमकी दी, अंसारी जी को प्रबन्धक बनाओ, अन्यथा हम अपने कमरे में घुसने भी नहीं देंगे।

सभी जानते हैं अंसारी जी तीसरे दर्जे के प्रबन्धक हैं। वे अपना घर नहीं चला सके और उनकी पत्नी ने बागडोर अपने हाथ में संभाल ली। जिस प्रकार विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र में सैन्य शासन स्थापित नहीं हो सकता, उसी प्रकार हमारा टी क्लब बन्द नहीं हो सकता। इस देश को और हमारे टी क्लब को चलाने वाले कितने घटिया हैं, हमें इससे कोई सरोकार नहीं रखना है – हमारे लिए गौरव की बात यह है कि हमारा देश और टी क्लब चल रहा है।

टी क्लब में शामिल चपरासियों से आधा पैसा लिया जाता था। उधर केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने रेलवे कर्मचारियों के बोनस के लिए अधिकतम मूल वेतन सीमा हटा दी, इधर एक चपरासी को हमारा क्लब मुफ़्त चाय पिलाने लगा।

उधर दूर संचार कर्मियों ने हड़ताल कर दी, इधर हमारे सेक्शन के शेष तीन चपरासियों ने काम करना बन्द कर दिया। वे रजिस्टर में हस्ताक्षर बनाने के बाद बीड़ी फूंकने और क्लब को गरियाने जैसे राष्ट्रीय कार्य करने में जुट जाते। फाइलें अफसरों को ही लानी ले जानी पड़ती। उधर केन्द्रीय कर्मचारियों के आगे सरकार झुकी,इधर हमारे सेक्शन के चपरासियों के आगे हमारा क्लब झुक गया। अब हाल यह है कि चारों चपरासी मुफ़्त में चाय पी रहे हैं। उधर केन्द्र सरकार का बजट बढ़ गया इधर चाय क्लब में हम लोगों का हिस्सा बढ़ गया।

आफिस में यूनियन के चुनाव हुए। हमारे क्लब ने अंसारी जी को खड़ा कर दिया। उधर सुरक्षा परिषद की अस्थाई सदस्यता के लिए भारत यू.एन.ओ. में खड़ा था। इधर इलेक्शन में अंसारी जी हार गए, उधर यू.एन.ओ. में भारत। विदेश नीति में भारत की हालत इतनी खस्ता पहले कभी नहीं हुई, और हमारे क्लब को हार का सामना पहली बार ही करना पड़ा। विश्व में भारत की साख गिरी और इधर, दफ़्तर में हमारे क्लब की।

निष्कर्ष निकालने वाले यह निकाल सकते हैं (मैंने नहीं निकाला) कि या तो टी क्लब सरकार है या फिर सरकार ही हमारा टी क्लब है। जब तक अंसारी जी हमारे टी क्लब के प्रबन्धक हैं और पड़ौसी सेक्शन का समर्थन उनके पास है, तब तक सरकार को कोई खतरा नहीं हो सकता।

लोकतंत्र में तंत्र-मंत्र

ज्योतिषी, तांत्रिक, पंडित, मौलवी, पादरी आदि का सम्बन्ध राजनीति से नहीं है, किन्तु इधर के वर्षों में देश की राजनीति में स्थापित प्रतिमानों के कारण इनका महत्व बढ़ा है। हर जन प्रतिनिधि, चुनाव जीतने के बाद धार्मिक गुरुओं से आशीर्वाद लेता है - मंत्री बनने की लालसा लिए हुए। जिस तरह सब्जी मंडी में अतिरिक्त गोभी आ जाने से, गोभी की दुकानें बढ़ जाती हैं, उसी तरह ज्योतिषियों और तांत्रिकों की संख्या बढ़ गई है।

इस देश की आधी आबादी जन प्रतिनिधि बनने के धंधे में लगी है - और आधी जन प्रतिनिधि बनाने के। जाहिर है बाकी बची आबादी में, तांत्रिक, ज्योतिषी आदि शामिल हैं। किसी नए प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री के कार्यग्रहण करते ही, कम से कम, सौ ऐसे ज्योतिषी मिल जाएंगे, जो यह दावा करेंगे कि नेताजी को इस पद पर पहुंचाने की भविष्यवाणी हमने की थी। कुछ ज्योतिषी इतने चतुर होते हैं कि लोकल अखबार को पैसा देकर छह माह पूर्व का अंक छपवा लेते हैं, जिसमें उनका लेख छपा होता है - अमुक नेता जी मुख्यमंत्री होंगे।

मुख्यमंत्री जी जब वह अखबार देखते हैं तो ज्योतिषी को गुरु मान लेते हैं। इस तरह, एक तरह से उस ज्योतिषी को सरकारी वजीफा मिलने लगता है। जब कभी, इस वजीफे में कटौती होती है, ज्योतिषी महाराज घोषणा कर देते हैं - अगले तीन माह मुख्यमंत्री पर भारी होंगे। समय का भारी होना कोई भी राजनेता झेल नहीं पाता। ज्योतिषी से समय को हल्का करवाने का उपाय पूछा जाता है और उनका वजीफा बढ़ा दिया जाता है। ज्योतिषी, मुख्यमंत्री के गले में रुद्राक्ष की माला डाल देता है।

चुनाव जीतने के बाद जन प्रतिनिधि अपनी अंगुलियों में तरह-तरह की अंगूठियां धारण करते हैं। तांत्रिकों और ज्योतिषियों के पास हर ग्रह को शांत करने के ''रेडीमेड'' तरीके होते हैं। यही कारण है - देश में विभिन्न प्रकार के नगीनों की बिक्री बढ़ी है। जिस तरह नवजात शिशु को हर बीमारी का टीका लगाया जाता है,

उसी प्रकार नव निर्वाचित प्रतिनिधि के हाथों में विश्व में उपलब्ध समस्त नगीनों वाली अंगूठियां पहनाई जाती हैं, ताकि वे शीघ्र ही उच्च पद प्राप्त कर लें।

यदि पावों की अंगुलियों में अंगूठी पहनने की परम्परा होती, तो हमारे जन प्रतिनिधियों को काफी सुविधा होती।

इस देश में एक स्वामी का अविर्भाव उस समय हुआ, जब देश की राजनीति करवट बदल रही थी। स्वामी जी अपने तंत्र के बल पर राजनीति को सीधा-सीधा सुलाना चाहते थे। वे देश को स्थिर बनाने के प्रयास में थे। परन्तु ऐसा लगता है कि उनका मंत्र थोड़ा गलत तरीके से पढ़ा गया।

जबसे उन्होंने मंत्र पढ़ा है, तब से राजनीति व्याकुल हो गई है, पल-पल पर करवट बदल रही थी। उधर स्वामी जी अदालतें बदल रहे थे, वकील बदल रहे थे - यहां तक कि जेल में उनके लिए कोठरियां बदले जाने की संभावनाएं बन गई थीं।

राजनीति की इस व्याकुलता ने अनेक नए तांत्रिक पैदा कर दिए। स्थिति यहां तक पहुंच गई कि छोटे से छोटा नेता, बड़े से बड़ा पद पाने के लिए अपने घर पर यज्ञ करवाने लगा। यज्ञ आदि अनुष्ठानों की जो स्थिति वैदिक काल में थी वैसी ही स्थिति वर्तमान में चल रही है। एम.एल.ए. के घर मंत्री बनने के लिए, राज्य मंत्री के घर केबिनेट मंत्री बनने के लिए, और केबिनेट मंत्री के घर मुख्यमंत्री बनने के लिए यज्ञ हो रहे हैं।

जैसे ही समाचार मिलता है - मंत्रिमंडल का विस्तार होगा, देश में यज्ञ की वस्तुएं यथा - घी, हवन सामग्री आदि महंगी हो जाती हैं। इस देश में महंगाई का एक प्रमुख कारण, राजनीति में तांत्रिकों की भूमिका का बढ़ जाना है।

पिछले दिनों,जब सभी राजनीतिक पार्टियां प्रधानमंत्री खोज रही थीं, एक तांत्रिक मेरे घर आकर बोला - यज्ञ करवा लो, प्रधानमंत्री हो जाओगे। मैंने कहा - ऐसा मज़ाक मत करो जो देश के लिए महंगा साबित हो। वे बोले देश बाद में, पहले आप हैं। आप यदि प्रधानमंत्री बन गए तो देश का विकास हो जाएगा। मैंने कहा - मैं संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं हूं, प्रधानमंत्री कैसे बन पाऊंगा।

वे बोले - सब मुझ पर छोड़ दो। यदि आप संसद सदस्य होते तो प्रधानमंत्री अपने आप भी बन सकते थे। हमारी तांत्रिक विद्या का यही तो कमाल है न लोकसभा, न राज्यसभा, फिर भी प्रधानमंत्री बना। मैंने कहा - साफ-साफ

बताओ कितना खर्च होगा। वे बोले - एक लाख से एक करोड़ तक खर्च हो सकते हैं। मैंने कहा - मैं रिस्क नहीं ले सकता। वे बोले मूर्ख मत बनो, एक लाख का यज्ञ करवा लो, प्रधानमंत्री बन जाओ तो, बाकी चुका देना। जायेंगे तो एक लाख और यदि प्रधानमंत्री बन गए तो अरबपति हो जाओगे। यह युग घोटाला युग है। मैं तंत्र के बल पर घोटाला करवाऊंगा और मंत्र पढ़ कर आपको बदनामी से बचाऊंगा। नो रिस्क, नो गेन, इसलिए मैन, तुम एक लाख का यज्ञ करवा ही डालो।

उसका कहना अनुचित नहीं था। जिन दिनों प्रधानमंत्री बदलने की कसरत होती है, उन दिनों दस सांसदों का समर्थन प्राप्त व्यक्ति भी प्रधानमंत्री का दावेदार हो जाता है। मिली-जुली सरकार में वह व्यक्ति भी प्रधानमंत्री बन सकता है जिसकी पार्टी का उसके अलग - एक भी सांसद न हो। यह कोई चमत्कार नहीं है, यह तांत्रिकों की तांत्रिक विद्या है, जो सिर्फ हमारे देश में उपलब्ध है।

प्राचीन काल में राजा-महाराजा तलवार के बल पर युद्ध जीत कर सत्ता पर काबिज होते थे, आज-कल तांत्रिकों द्वारा यज्ञ करवा कर सत्तासीन होते हैं।

इन दिनों तांत्रिकों का महत्व इतना बढ़ा कि घोटालों में, ये तांत्रिक मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं, और घोटाला खुलते ही अदालत से बचाने का यज्ञ करवाते हैं। जिस दिन अखबार में छपता है - नेताजी का नाम अमुक घोटाले में है, उसी दिन नेता जी के घर तांत्रिक यज्ञ शुरू करवा देते हैं। कुछ दिनों बाद, जब सी.बी.आई. नेता जी से पूछताछ करती है तो उनके घर चल रहे अखण्ड यज्ञ में "समिधा" बढ़ा दी जाती है। जब सी.बी.आई. द्वारा चार्जशीट तैयार करने की बात कही जाती है तो नेताजी के तांत्रिक पशु-बलि चढ़वा देते हैं - किसी तरह नेता जी घोटाले से बरी हो जाएं। बाद में जब नेता जी की गिरफ़्तारी का वारंट जारी होता है तो तांत्रिक महोदय भूमिगत हो जाते हैं।

उधर नेता जी तांत्रिक की तलाश करते हैं। क्या-क्या नहीं किया इस तांत्रिक के कहने पर, लेकिन साले ने ऐन वक्त पर धोखा दे दिया। हमने अपने भाषणों में हमेशा जीव जन्तुओं पर दया का उपदेश दिया और इस तांत्रिक के कहने पर पशु बलि दे दी। कितनी आलोचना झेली है, हमने इस पशु बलि के कारण, फिर भी घोटाले में फंस गए। जेल तो जाना ही है - तांत्रिक मिल जाए तो एक नर-बलि और दे दें। उसे मार कर।

नेताजी का जो सलाहकार, उस तांत्रिक को लाया था, उसे नेताजी जेल में डलवा देंगे।

भारत को चमत्कारों का देश कहे जाने का एकमात्र कारण है, चमत्कार के बल पर लोकतंत्र बरकरार रखना। जाहिर है, यह चमत्कार ज्योतिषियों और तांत्रिकों के कारण ही संभव हुआ। विश्व में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं है, जहां भूतपूर्व और वर्तमान प्रधानमंत्रियों ने एक साथ निवास किया हो, लेकिन भारत में यह चमत्कार भी संभव हो गया।

देवगौड़ा जी जब प्रधानमंत्री बने तो 7, रेसकोर्स वाले आवास में मय सामान के उस समय आ धमके, जब वहां नरसिंहा राव जी निवास कर रहे थे। देवगौड़ा जी के ज्योतिषी के अनुसार 7 रेसकोर्स में रहने का शुभ मुहूर्त निकला जा रहा था और नरसिंहा राव जी के ज्योतिषी के अनुसार उनके लिए आवास छोड़ने का शुभ मुहूर्त आया नहीं था। बाद में शुभ मुहूर्त निकलने पर, नरसिंहा राव जी 7 रेसकोर्स छोड़ गए।

पी. चिदम्बरम जी ने जब पुनः वित्त मंत्री पद की शपथ ली, तो ज्योतिषियों के मुहूर्त के अनुसार ही ली, जबकि उनके बारे में कहा जाता है कि उनकी दृष्टि वैज्ञानिक है।

राजीव गांधी की मृत्यु के बाद अनेक कांग्रेसियों के घर यज्ञ हो रहे थे - प्रधानमंत्री पद प्राप्त करने के लिए। राजनीतिज्ञों के यहां जब यज्ञ होते हैं - देशी घी की नदियां बहने लगती हैं, जबकि यह एक तथ्य है कि बाजार से शुद्ध घी गायब होता जा रहा है। नेताओं के यहां शुद्ध घी सप्लाई करने वाली फर्म के यहां छापा नहीं पड़ता।

कुल मिलाकर इस देश में तांत्रिकों और ज्योतिषियों की बीसों अंगुलियां घी में हैं, यह अलग बात है - बाद में उनकी हथेलियां हथकड़ियों से सुशोभित हों।

उनका विनम्र निवेदन

वे हमेशा विनम्र निवेदन करते हैं, बात करने से पहले कहेंगे - मैं आपसे निवेदन कर रहा था। इसके बाद उनका निवेदन शुरू हो जाता है - मैं आपसे निवेदन कर रहा था, आजकल के अफसर चोर हो गए हैं। कौन नहीं खाता पैसा ?'' उनका स्वर ऊंचा हो गया है - ''मुझे बताइए कौन नहीं खाता पैसा ? आप नहीं खाते ?'' खाते तो नहीं, परन्तु उसको कैसे कहें। वह अपनी विनम्रता पर डटा हुआ है। वह विनम्रतापूर्वक, जो आरोप लगा रहा है उसका खंडन नहीं हो पा रहा है।

विनम्र व्यक्ति के आगे बोलना बहुत मुश्किल होता है, क्योंकि वह निवेदन करते-करते लड़ने के मूड में आ जाता है। आपकी इच्छा होती है कि उसकी विनम्रता को ताक पर रख कर घोषणा कर दें - आ जा बेटा मैदान में, बहुत कर लिया तूने विनम्र निवेदन। ऐसी भी क्या विनम्रता कि निवेदन करने के नाम पर, आप हमारा कालर पकड़े चले जा रहे हैं। गाली-गलौच पर आ गए, भ्रष्टाचार का आरोप लगा दिया और उस पर तुर्रा ये कि मैं निवेदन कर रहा हूं। निवेदन को चार्जशीट में बदल दिया गया। निवेदन न हुआ भारतीय दण्ड संहिता की धारा हो गई।

एक दिन एक पाठक आया - दुआ सलाम की, मेरी रचनाओं के बारे में बताया - कहां-कहां पढ़ीं। थोड़ी बहुत तारीफ़ करने के बाद वह विनम्रता दिखाने लगा। बोला - मैं आपसे अर्ज़ कर रहा था आप लिखते हैं, ठीक है, लेकिन आपके व्यंग्य में, वह कशिश नहीं है जो परसाई जी के में है। एक गिलास पानी पीने के बाद वह कुछ और विनम्र हुआ - तो मैं अर्ज कर रहा था, आपके समकालीन व्यंग्यकारों ने व्यंग्य का कबाड़ा कर दियां। छपने की महत्वाकांक्षा में कूड़ा करकट लिखने लगे, इससे तो अच्छा था, नहीं लिखते।

उसने एक गिलास पानी और पिया, मैं समझ गया अब यह अति विनम्र हो जाएगा और हुआ भी यही। वह बोला - मैं अर्ज़ कर रहा था, आप व्यंग्य का सत्यानाश क्यों कर रहे हो, कहानी-कविता क्यों नहीं लिखते। मैंने चाय मंगवा

दी। वह चाय पीने लगा है। वह चाय पीकर विनम्रता की पराकाष्ठा पर पहुंचा। "मैं अर्ज़ कर रहा था व्यंग्य के नाम पर गालियां मत दो, वर्ना कोई आपकी पिटाई कर देगा। उसने मुझे आगाह कर दिया - और कोई करे न करे, मैं आपसे अर्ज करूंगा" (या अर्ज़ करते हुए पिटाई करूंगा।)।

कुछ लोग विनम्रता में इतने गहरे धंसे होते हैं कि उन्हें निकालने के प्रयास में विनम्रता को हमेशा के लिए तिलांजलि देनी पड़ती है - यहां तक कि नौबत हाथापाई तक आ जाती है। एक विनम्र व्यक्ति को पता चल जाए कि सामने वाला मेरे से भी अधिक विनम्र है, तो उसकी विनम्रता उसी तरह काफूर हो जाती है जैसे सेंट की शीशी को खुला रखने पर उसकी खुशबू होती है।

मेरे दफ़्तर का एक कर्मी बेहद विनम्र है, हमेशा "हुकुम" शब्द का इस्तेमाल करता है। इस सुपर विनम्र व्यक्ति से कहो कि आप कामचोर हो गए हैं, तो वह कहेगा - "हुकुम"। उससे कहो - आप फर्जी दस्तख़त करते हैं, रोज दस्तख़त करके अपने घर चले जाते हैं, यह अनुशासनहीनता है। वह कहेगा - "हुकुम"। उससे कहो - मैं तुम्हारे खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही करता हूं। वह कहेगा - हुकुम। "हुकुम" कहते समय वह आपकी तरफ इतना झुक जाएगा कि कार्यवाही पर विचार छोड़ना पड़ेगा।

दूसरे दिन, इस सुपर विनम्र व्यक्ति को विनम्रता की एक अतिरिक्त किस्त प्राप्त हो जाएगी, जैसे राज्य कर्मियों का महंगाई भत्ता बढ़ता है। वह कहेगा "माफ करना एक बात कहूं हुकुम।" आप कहेंगे – कहो। वह कहेगा - आपके आने से इस दफ्तर का बेड़ा गर्क हो गया 'हुकु.'। वह 'हुकुम' लगाना नहीं भूलेगा। आप से पहले जो साब थे, उनका रुतबा ही कुछ और था 'हुकुम'। वे तो हाथों-हाथ कागज पकड़ा देते थे 'हुकुम'। उनसे बड़े बाबू भी डरते थे 'हुकुम', आपसे तो कुत्ता भी नहीं डरता। जहां तक मेरी जानकारी थी, दफ्तर में कोई कुत्ता नहीं था, बल्कि दफ्तर के मुख्य द्वार पर भी कुत्ते को नहीं देखा गया था।

मैं सोचने लगा - इसे कैसे पता चला कि मुझसे कुत्ते भी नहीं डरते हैं। मेरी गली में यह कर्मी कभी गया नहीं, मेरे निवास का इसे पता नहीं, फिर कुत्ते वाली बात इसे कैसे पता चली। वास्तविकता यही है जो कह रहा है। मैं गली के कुत्तों से डरता हूं - वे मुझसे नहीं डरते। वे मेरी गली के करोड़पति सेठ से भी नहीं डरते, शुद्ध समाजवादी हैं - भारतीय वामपंथी नेताओं की तरह नहीं। ये कुत्ते शत-प्रतिशत ईमानदार हैं। यही कारण है मैं इनसे डरता हूं। दूर से लौटते समय यदि रात

होती है, तो मैं बस स्टैण्ड या रेलवे स्टेशन पर रात गुजार देता हूं और सुबह होने पर ही डेरे पर पहुंचता हूं। रात को ये कुत्ते कुछ ज्यादा ही समाजवादी हो जाते हैं।

मेरे दफ़्तर में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो "एक्सक्यूज मी" कह कर थप्पड़ मार देते हैं। विनम्रता का इससे बड़ा उदाहरण आज तक सामने नहीं आया। एक दिन अलख सुबह (दफ्तर की सुबह साढ़े ग्यारह बजे होती है) हम अपनी सीट पर बैठे थे कि फोन घनघना उठा।

"हलो मैं पर्सनल सेक्शन से अमुक बाबू बोल रहा हूं।" मैं सावधान हो गया, क्योंकि फोन पर्सनल सेक्शन से था - "हां, बोलिए क्या सेवा करूं।"

वे अत्यन्त विनम्र हो गए - "आपको एक कष्ट दे रहा हूं, आप दो मिनट के लिए यहां पर्सनल सेक्शन में आ जाइए।"

मैं प्रसन्नचित्त मुद्रा में पर्सनल सेक्शन में दाखिल हो गया। सामने फोन करने वाला बाबू था - अधिकारियों की उपस्थिति पंजिका हाथ में लहरा रहा था।

"आपके कॉलम खाली पड़े हैं बताइए इन्हें कौन भरेगा।" वह विनम्रता पर उतर आया था और लगभग डांटते हुए बोला - "आप लोग इस रजिस्टर के साथ मज़ाक करते रहते हो। सी.एल. के ऊपर 'टी' (टूर) लगा देते हो। साहब मुझे डांटते हैं - बताइए मैं क्या करूं।" मैंने मन ही मन कहा - तू मुझे डांट तो रहा है और क्या करना चाहता है। थप्पड़ मारना चाहता है तो मार ले, मेरी कनपटी हाजिर है।

वह न जाने क्या-क्या बकता रहा और मैं अपने कालम में सी.एल. आदि भरता रहा। "बुरा मत मानना" कहकर वह उपदेश दिए जा रहा था। मैंने कहा - आप कहते रहिए मैं बुरा नहीं मानूंगा। आप गालियां भी देंगे, तो भी बुरा नहीं मानूंगा, क्योंकि आपने पहले ही कह दिया है, बुरा मत मानना। वह बोला - "साहब आप तो बुरा मान गए।" उसकी विनम्रता कुछ कम हुई - "हमारी भी मजबूरी है स्टॉफ आफिसर हमें डाटते हैं।" मैं जानता था - सरासर झूठ बोल रहा है। स्टॉफ आफिसर बाबुओं को डांटते नहीं हैं, यदि डांटते तो बाबू इतने विनम्र नहीं होते। कई बार स्टॉफ आफिसर की सज्जनता का लाभ उठा कर पर्सनल सेक्शन के बाबू विनम्रता की हदें छू लेते हैं।

मैं जब एक गांव में हैड मास्टर था तो वहां के सरपंच के साथ उठना-बैठना करता था। वे भी विनम्र थे - मुझे "मालिक"कहते थे। मेरे दफ़्तर में घुसते ही कहते "मालिक साब" क्या हो रहा है। राज्य सरकार ने हर गांव में एक कमेटी

गठित की - निर्माण कार्य के लिए, उसमें सैकण्डरी स्कूल के प्रधानाध्यापक को पदेन सदस्य बनाया। सरपंच जी विनम्र होकर अच्छे-बुरे कागज पर मेरे दस्तख़त ले जाते, "*मालिक साब*" कह कर। इतनी विनम्रता तो मैं झेल गया, लेकिन वार्षिक परीक्षा में जब उनका पुत्र फेल हो गया तो वे अत्यन्त विनम्र हो गए। वे विनम्रतापूर्वक बोले - "मालिक साहब छोरे का एक साल बर्बाद हो जाएगा।" मैंने कहा - "मेरे हाथ में नहीं है।" उन्होंने मेरी बांहे दबाते हुए कहा - "आपके हाथ में सब कुछ है, आप मालिक हैं।" मैं अड़ गया - नियमों के विपरीत कुछ नहीं हो सकता।

सरपंच जी शत-प्रतिशत विनम्र हो गए - "आपने हमारे स्कूल का भट्ठा बैठा दिया, आपसे तो अच्छे पुराने हैड मास्टर थे। आप अपना तबादला खुद ही करवा लो, नहीं तो मैं घर से दूर पहाड़ी इलाके में भेज दूंगा।

कुछ लोगों की विनम्रता कुछ दूसरे किस्म की होती है। वे आपके पास आएंगे और "एक्सक्यूज़ मी" कहते हुए आपकी चीजें ले जाएंगे। लौटाते वक्त धन्यवाद देना नहीं भूलेंगे। आपने अखबार अभी देखा नहीं, परन्तु पड़ौसी अपनी विनम्रता प्रस्तुत कर अखबार ले जाएंगे और जब वह अखबार फिर से आपके पास आएगा, तो ऐसा लगेगा जैसे आप किसी कबाड़ी से रद्दी खरीद लाए हों। सफर में पत्र-पत्रिकाओं की इसी प्रकार दुर्दशा होती है। तीन घंटे के सफर में आपने अपनी पत्रिका के तीन पन्ने भी नहीं पढ़े, लेकिन सह यात्रियों ने एक-एक लेख को तीन-तीन बार पढ़ लिया।

विनम्र व्यक्तियों से हमेशा बचना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अकड़ू या झगड़ालू टाइप का है, तो उससे बात करने में कोई हानि नहीं है, लेकिन विनम्र व्यक्ति मिले, तो नौ दो ग्यारह हो जाना चाहिए।

सुबह की सैर से तौबा

सुबह घूमना सेहत के लिए लाभदायक माना गया है। सुबह घूमते हुए सर्दी लग जाए या आपका पैर किसी गड्ढे में पड़ जाए, तो सेहत में तुरन्त सुधार हो जाने की संभावना बनी रहती है। हमारे एक मित्र मुंह अंधेरे घूमने के शौकीन थे। वे मेरे मना करने पर नहीं माने और एक नाले में गिर कर अच्छी सेहत को प्राप्त हुए। अस्पताल से छूटने के बाद उन्होंने टहलने का कार्यक्रम तो चालू रखा परन्तु अपने घर में ही।

शहर से हमारी पोस्टिंग जब फिर कस्बेनुमा गांव में हुई, तो वर्षों से संचित चली आ रही मोर्निंग वॉक की चाह को पंख लग गए। स्कूल से घर और घर से स्कूल आना-जाना ठीक वैसा ही लगा, जैसे कि मियां की दौड़ मस्जिद तक होती है। मैं इस कहावत को तोड़ना चाहता था, हालांकि हम एक भिंडी या तोरई को तोड़ने में कठिनाई महसूस करते रहे हैं, परन्तु जो ठान लिया सो ठान लिया और जो ठान लिया वो कर दिखाना था।

हमने मोर्निंग वॉक अकेले ही शुरू कर दी और स्कूल से विपरीत दिशा में, जहां लोग दिन में भी कम आते-जाते थे मैं जाने लगा। ऐसे निर्जन स्थान पर घूमने जाना मेरी सेहत के लिए सुरक्षित था। मैंने अपने कई अध्यापक साथियों को घूमने के फायदे बताए, वार्ताएं दीं, साहित्य उपलब्ध कराया और अंत में महात्मा गांधी का वास्ता दिया, जिन्होंने घूमने को कसरतों की रानी कहा है। रानी स्त्रीलिंग शब्द है अतः उन्हें घूमने से एलर्जी हो चुकी थी। वे मुझे स्त्रीलिंग कसरत करने के लिए हेय दृष्टि से देखने लगे।

''एकला'' चलो वाले नारे को अपनाते हुए आलोचनाओं की परवाह किए बिना हम चले। जब आलोचनाओं की परवाह किए बिना, जनता की परवाह किए बिना भारत प्रगति के मार्ग पर दौड़ने के स्थान पर धीरे-धीरे रेंगता है, तो हम क्यों नहीं रेंग सकते। हमने कुछ दिनों के लिए अपने आपको भारत सरकार समझ लिया और घूमने निकल पड़े। पहले दिन सुरक्षित घर लौट आए। दूसरे दिन एक

काला कुत्ता बहुत दूर से भौंका। हमने गति धीमी कर दी। जब अवरोध उत्पन्न हो जाए तो सरकार की गति धीमी हो जाती है, यह मेरी समझ में पूरी तरह आ चुका था। तीसरे दिन उस काले कुत्ते से मैंने दोस्ती कर ली। इसके लिए मुझे जेब में बासी रोटियां भरकर ले जानी पड़ी थीं। संकट हल हो गया था। मैंने मन ही मन सोचा – भारत सरकार भी भौंकने वालों को बासी रोटी का टुकड़ा डालकर चुप कर लेती होगी या क्या पता आटा गूंथ के ताजा टुकड़ा डालती हो। कुल मिलाकर टुकड़ा डालने से स्थिति शान्ति को प्राप्त हो जाती है। किसी भी सरकार के लगातार चलते रहने का यही एकमात्र राज है, और यह राज मैंने पा लिया था।

अब मै किसी भी सरकार के लिए सक्षम था, परन्तु मैंने यही सोचा कि अपनी मॉर्निंग वॉक चलती रहे। कुछ दिनों तक मेरा घूमना निर्बाध रूप से चलता रहा। इस बीच फासिस्ट ताकतें एकत्रित होती रहीं। उस निर्जन स्थान के आस-पास रहने वालों ने मुझे भारत सरकार का प्रतीक समझ कर कुछ कुत्ते और पाल लिए। ये कुत्ते दूर से भौंका करते थे। दूर के कुत्तों से मैं कभी नहीं डरता। अपने घर पर कौन नहीं भौंकता ? मैं भी अपने घर पर शेर की तरह दहाड़ा करता था और बाहर आते ही भीगी बिल्ली बन जाता था।

आप अपने घर में शेर बने रह सकते हो, कोई चिड़िया घर में बन्द नहीं करेगा, लेकिन आपके घर में कोई शेरनी मौजूद है, तो आपको गीदड़ बन जाना होगा। गीदड़ बन जाने पर इस बात की कोई गारन्टी नहीं रहेगी कि आप घर में ही रहेंगे या शेरनी के डर से चिड़िया घर चले जाएंगे। दोनों ही स्थानों पर आप दर्शनीय जन्तु रहेंगे।

इस बीच मॉर्निंग वॉक सम्बन्धी परिधान में हमने कई प्रयोग किए और "जोगिंग" सूट से धोती तक होते हुए, तहमद पर उतर आए। तहमद पहन कर दौड़ना न केवल शरीर के लिए सुविधाजनक था, बल्कि यह हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक भी था। भारत सरकार की तरह मैं भी सोचता था कि मेरे तहमद पहन कर मोर्निंग वॉक करने से, यदि देश में एकता बनी रहे तो मेरे लिए तहमद पहनना गौरव की बात होगी। यही सोच कर सर्दी में भी मैंने कभी पायजामा या पेंट पहन कर मोर्निंग वॉक नहीं की।

फासिस्ट ताकतें देश में बढ़ चुकी हैं, इस बात का एहसास मुझे उस समय हुआ जब मेरे तहमद का एक किनारा एक पीले से कुत्ते ने नोंच लिया। मेरे साथ अच्छी बात यह थी कि उस कुत्ते के पवित्र दांत, अभी तक मेरे बगैर नहलाए शरीर

का स्पर्श नहीं कर सके थे। मैंने चारों ओर दृष्टि घुमाई, काला वाला कुत्ता कहीं दिखाई नहीं दिया। टुकड़ा खाने के बाद भी लोग राजनीति में बेवफाई कैसे करते हैं, अब मेरी समझ में आ गया था।

कुछ दिनों तक भौंकने की परवाह किए बिना मेरा राष्ट्रीय स्तर का वॉक चलता रहा, परन्तु मेरे घूमने वाले रास्ते में एक कुतिया ने डेरा डाला। परिवार नियोजन कार्यक्रम को धता बताते हुए उसने एक साथ आठ बच्चों को जन्म दे दिया। मैं फिर भी भारत सरकार की तरह प्रगति के पथ पर धीरे-धीरे वॉक करता रहा।

प्रसवोत्तर प्रसूति अवकाश का उपभोग करते हुए, उस कुतिया की मुझसे अच्छी जान-पहचान हो गई थी और मैं आश्वस्त था कि वह मुझे काटेगी नहीं। कभी-कभी मैं उसके बच्चों को भी खिला लिया करता था।

मुझे उस कुतिया से एसोरेंश चाहिए था कि वह मुझे काटेगी नहीं। एक दिन उसने मेरे द्वारा अपने बच्चों को खिलाए जाने पर आपत्ति की और पूंछ हिलाते-हिलाते मुझे काट लिया। यह बाइट मैंगो बाइट जैसा छोटा-मोटा बाइट न होकर तरबूज वाला बाइट था। टांग में से मांस नोंचा जा चुका था। खून का अविरल प्रवाह जारी था। अटैक करके कुतिया अपने बच्चों सहित जा चुकी थी और मैं खून बहाते हुए "कारवां गुजर गया" वाला गीत गाता रहा। थोड़ी देर में मुझे होश आ गया कि कुत्ते के काटने पर चौदह इंजेक्शन पेट में लगाए जाते हैं। मैं घर की ओर दौड़ा, और इतना तेज दौड़ा - जितना मैं जीवन में कभी नहीं दौड़ा था। दौड़ते-दौड़ते यह भी भूल गया कि मुझे ब्लड प्रेशर है। हार्ट का पेशेन्ट हूं। मैं दौड़ते-दौड़ते घर न जाकर सीधा अस्पताल गया। अभी अस्पताल खुला नहीं था। इनडोर ड्यूटी वाले डॉक्टर, बैड टी लेने नर्स के आवास पर गए हुए थे। आधे घंटे बाद फ्रैश होकर लौटे, तो सामने मुझे देख कर उनका मूड बिगड़ गया था। दूर से ही घुडक दिया कहां से आए हो - भाग जाओ। मैंने कहा भारत सरकार से आया हूं, नहीं भागूंगा। वे मुस्कराए और मुझे पागल समझ कर इलाज पर ध्यान दिया। मरहम पट्टी हुई और एक इंजेक्शन पेट में लगा। मैंने पूछा, और कितने लगेंगे। डॉक्टर साहब नर्स के कंधे पर हाथ रख कर बोले, यह तो कुतिया ही बताएगी कि कितने लगेंगे।

मैंने कहा डॉक्टर साहब कुतिया तो क्या बताएगी, उसे भौंकने के अलावा कुछ बोलना नहीं आता। डॉक्टर, नर्स और कम्पाउण्डर तीनों एक साथ हंसे। मैं आश्वस्त हुआ कि घरों में न सही, अस्पताल में तो एकता बनी हुई है। वह

अस्पताल भारत का सही-सही प्रतिनिधित्व कर रहा था। डॉक्टर साहब ने हिदायत दी कि उस कुतिया पर नज़र रखनी होगी। अगर वह मर जाती है, तो आपको, न केवल चौदह इंजेक्शन लगवाने होंगे, बल्कि अस्पताल में भर्ती भी होना पड़ेगा। मैंने एक लीटर खून बह जाने का जिक्र करते हुए कहा – अभी भर्ती कर लो।

इस बार डॉक्टर ने लगभग डांटते हुए कहा चले जाओ और कुतिया के मरने की प्रतीक्षा करो। अस्पताल से लौटते समय मैं सोच रहा था कि कुतिया मरे या न मरे, मैं अवश्य वीरगति को प्राप्त हो जाऊंगा। चार दिन तक स्कूल नहीं गया। जिस कुतिया ने काटा था उसका रंग लाल था। बस यही बात दिमाग में घूमती रही। पांचवें दिन स्कूल पहुंचा तो पता चला मेरी दुर्घटना का समाचार बच्चे-बच्चे को ज्ञात था। स्कूल की प्रेयर में घोषणा की गई कि यदि किसी के मौहल्ले में लाल रंग की कुतिया मरी हुई देखी जाए, तो उसकी सूचना तुरन्त पीड़ित अध्यापक अर्थात मुझे दी जाए।

पहले ही दिन तीन छात्र अलग-अलग मौहल्लों से आए, जिनके अपने मौहल्ले में लाल रंग की कुतिया मरी पड़ी थी। मैं उनके साथ में काटने वाली कुतिया को पहचानने चला गया। तीनों छात्रों की बात सही थी। तीनों शवों का रंग लाल था, परन्तु तीनों कुत्ते निकले। मुझे छात्रों पर झुंझलाहट आ रही थी।

साथी लोग पूछते कुतिया मरी कि नहीं। मैं कहता मुझे मिल जाए तो उसे जहर देकर मार दूं और स्वयं अस्पताल जाकर भर्ती हो जाऊं। लाल रंग के कुत्ते बराबर मरते रहे, जैसा कि छात्रों ने प्रति दिन बताया, परन्तु कुतिया नहीं मरी।

मैं रोज-रोज के तानों से तंग आकर बड़े अस्पताल चला गया और धीरे-धीरे पूरे चौदह इंजेक्शन लगवा लिए।

अब मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि सेहत अच्छी हो या खराब, भारत सरकार धीरे-धीरे ही मोर्निंग वॉक क्यों न करे, अपुन से नहीं होगी।

घोटालों का स्वर्ण पदक

भारत के खेल प्रेमी परमानेन्ट चिंतित रहते हैं। खिलाड़ियों को दूध बादाम देने के बाद भी विदेशी टीमों के हाथों भारत हार जाता है। हम हार के आदी हैं। जीत हम पचा नहीं पाते। जब कभी, एक आध बार हम जीते, तो जीत हमें रास नहीं आई, और हम तुरन्त हारने लगे। कप्तान बदलो या चाहे मैनेजर, हम हार कर उतने ही फिदा हैं, जितने माधुरी दीक्षित पर मकबूल फिदा हुसैन। उन्होंने माधुरी दीक्षित के चित्रों की एक ऐतिहासिक श्रृंखला बनाई। उधर हमारे देश के खिलाड़ी लगातार हार की श्रृंखला बनाते रहते हैं। क्रिकेट हो या हॉकी, हम अपनी टीम को जीतने नहीं देते। ऐसा करने से एक तो हमारी बेमिसाल हारने वाली प्रवृत्ति को दुनिया सराहती है, दूसरे हमारे देश का ऐरागैरा नत्थूखेरा वर्ल्ड स्तर की टीम का सदस्य बन जाता है। जीत मिले चाहे न मिले, पैसा अच्छा मिल जाता है। सबसे बड़ा रुपया होता है भैया।

यदि ऐसा नहीं होता तो आज देश घोटाला चैम्पियन नहीं बनता। टीमों के हारने में थोड़ा समय लगता है,लेकिन घोटाला करने में कोई टाइम नहीं लगता। जिसे जहां भी मौका मिलता है, घोटाला कर देता है। चार समझदार नेता जहां इकट्ठे हुए, बस समझ लो घोटाला हो गया। इधर एक घोटाला का बम फटा, उधर दूसरे घोटाले को माचिस दिखा दी। पहले जांच शुरू भी नहीं हुई, तब तक दूसरा घोटाला और फिर धमाका। इस देश की जनता ऊंचा सुनती है, वर्ना अब तक तो घोटालों के विस्फोट से बहरे हो गए होते लोग। और स्वर्गीय दुष्यन्त कुमार की पंक्ति "यहां तो गूंगे बहरे लोग बसते हैं न जाने कैसे यहां जलसा हुआ होगा" को चरितार्थ करते। इतने धमाको के बाद भी इस देश में जलसे हो रहे हैं। राष्ट्रपति भवन में आज कल जल्दी-जल्दी जलसे होने लगे हैं। तुर्रा यह है कि लोकतंत्र के नुमाइंदे जनता की अपेक्षा ऊंचा सुनने लगे हैं। यही कारण है कि हमारे यहां, न केवल लोकतंत्र सुरक्षित है, बल्कि घोटाला करने वाले भी सुरक्षित हैं।

जब से बोफोर्स तोप ने घोटाले का गोला दागा है, तब से विस्फोट ऐसे हो

रहे हैं, जैसे सन् इकहत्तर में भारत-पाकिस्तान का युद्ध हुआ था। पुरानी सरकार के वित्त मंत्री ने आर्थिक उदारीकरण किया था। मिली-जुली सरकार भी उदार होती जा रही है। कुछ शब्द विशेषज्ञ उदारीकरण को "उधारीकरण" कह रहे हैं। उनका ऐसा कहना देश के जनादेश के विपरीत है। जो लोग घोटाले करने वालों को जेल में देखना चाहते हैं, वे भी जनादेश का अपमान कर रहे हैं। भैया हमने आपको समर्थन इसलिए नहीं दिया कि आप हमारा ही कुर्ता फाड़ दें। हमारी धोती ढीली है, इसका अर्थ यह थोड़ी न है कि आप उसे खोल दें।

बोफोर्स का घोटाला करने वाले घोटाले नामक खेल की जलती मशाल लेकर दौड़े। ये दौड़ काफी लम्बी थी। पीछे जनता दौड़ी। कुछ पाकसाफ नेता दौड़े। बोफोर्स वाले थक गए, तो उन्होंने हर्षद मेहता को मशाल थमा दी। हर्षद साहब एक हाथ में सूटकेस और दूसरे हाथ में मशाल लेकर दौड़े। थोड़ी उम्र के इस व्यक्ति ने क्या दौड़ दिखाई, तबीयत खुश हो गई। पीछा करने वाली संसदीय संयुक्त समिति, सी.बी.आई. और रिजर्व बैंक आज तक उस मशाल तक नहीं पहुंच पाए, जो अपने साथ पांच हजार करोड़ का घोटाला लेकर चल रही थी। आज तक यह पता नहीं चल पाया कि कुल कितनी रकम उस फर्जीवाड़े में उड़ाई गई और वह रकम कहां गई।

हर्षद मेहता के पीछे शक्कर घोटाला लेकर लोग दौड़ पड़े। घोटाला और शक्कर - दोनों का स्वाद मीठा था। मधुमेह के रोगी इस घोटाले के खिलाफ संसद में बोले, तो कभी अखबार में बयान दे दिया। आपको मधुमेह है, तो हम क्या करें। हमें शक्कर खाने से क्यों रोक रहे हैं आप।

टेलीफोन घोटाले ने यह साबित कर दिया कि हेलो-हेलो के चक्कर में देश को छलो-छलो की आवाज आ रही थी। टेलीफोन से काम नहीं चला, तो हवाला घोटाला हो गया। इस घोटाले ने कई राजनीतिक दलों की गाड़ियों की हवा निकाल दी। लोगों ने एक-दूसरे के टायर बदले। मगर हर टायर पंचर मिला। गाड़ियां नहीं चलीं। लेकिन डायरी का सबूत पक्का नहीं निकला। एक-एक कर लोग बरी हो गए। हवाला घोटाले की हवा निकल गई और यह हवा फिर से घोटालाबाजों की गाड़ियों के टायरों में भर गई।

तमिलनाडु में साड़ी घोटाला हो गया। नेताजी ने कहा नारियों की अस्मिता साड़ियों से नहीं जुड़ी है। हां, कभी पेटीकोट घोटाला हुआ तो हम उसे अवश्य गम्भीरता से लेंगे। भारत की जनता को उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जब

नेताजी किसी घोटाले को गम्भीरता से लेंगे। कुछ लोग तमिलनाडु में बरामद साड़ियों और चप्पलों तथा सोने के आभूषणों में भी घोटाला ढूंढते रहे। ये व्यक्तिगत सामान, निजी उपयोग में लाए जा रहे थे। एक रुपए वेतन में इतना ही बचाया जा सकता है।

पशु चारा घोटाला उस राज्य में हुआ जहां चरवाहा विद्यालय है। चारा बड़ी कोमल चीज है और भाईचारा उससे भी अधिक कोमल है। चारा घोटाला में भाईचारे का काफी महत्व रहा। बेचारे अधिकारी फंस गए, कितने भोले थे। कह देते चारे में आग लग गई। चारा एक अति ज्वलनशील पदार्थ होता है। अनेक पशुओं को हम देखते हैं, चारा खाकर भी वे सब कुछ मटियामेट करने पर आमादा रहते हैं।

बात जब ज़मीन से उगने वाले चारे तक पहुंच गई, तो लोगों का ध्यान चारा उगाने के काम में आने वाली यूरिया की ओर गया और एक सौ तैंतीस करोड़ रुपए का यूरिया घोटाला हो गया। यूरिया का दाना शक्कर की तरह होता है। अतः शक्कर घोटाले के बाद यूरिया घोटाला करना हमारे देश के घोटाला बाजों का फर्ज़ बनता है। हमारे देश की जनता को गर्व है कि हमारे घोटालाबाजों ने फर्ज़ पूरा किया। माल आया नहीं, और भुगतान हो गया। हमारे देश की सरकारी खरीद के सभी मानदण्ड इस घोटालों में अपनाए गए, क्योंकि किसी छोटे से छोटे दफ़्तर में भी सरकारी खरीद का सामान नहीं आता, केवल उसका बिल आता है। स्टाक में एन्ट्री के बाद पेमेन्ट हो जाता है। आयुर्वेद का घोटाला, सी.आर.बी. आदि घोटालों को जनता ने सीरियसली नहीं लिया, क्योंकि तब तक हवाला जैसे घोटालों के आरोपियों को निर्दोष सिद्ध किया जा चुका था।

इधर मिली-जुली सरकारों का सिलसिला शुरू हो गया है। उधर घोटालों का। कुल मिलाकर देश उन्नति कर रहा है। घोटाला चैम्पियन भारत पूरे विश्व में घोटालों के लिए विख्यात हो चुका है। आप जहां हैं, जिस क्षेत्र में हैं, अपनी सामर्थ्यानुसार एक घोटाला अवश्य करें, ताकि घोटालों की परम्परा को अक्षुण्ण रखा जा सके। कल को आपके पोते-पोती यह नहीं कह सके कि हमारे पूर्वज इतने निकम्मे थे कि भारत में जन्म लेकर भी, एक घोटाला तक नहीं कर सके।

ओलिम्पिक से हम स्वर्ण पदक नहीं ला सके तो कोई बात नहीं, "घोटाला" नामक गेम में हमने स्वर्ण पदक प्राप्त कर लिया है।

देश बुक स्टाल के तले

मैंने निरर्थक यात्राएं बहुत की हैं। जब हिमालय की तराई या शिवालिक की श्रेणियों में होता हूं तो लोग समझते हैं कि तीर्थयात्रा पर हूं। मैं तीर्थयात्रा करता हूं, परन्तु मान्य तीर्थों को छोड़ कर। मेरे लिए किसी भी शहर की पतली गलियां केदारनाथ की पगडण्डियों के समान होती है। जिस शहर में ठहरता हूं वहां का रेलवे स्टेशन अवश्य देखता हूं। रेल से भी तीर्थयात्रा होती है और तीर्थयात्रियों को देख कर मेरी तीर्थयात्रा पूरी हो जाती है। जब मनुष्य का जीवन ही यात्रा है और लिखने-पढ़ने वाले उसी जीवन को लिखते-पढ़ते हैं, तो फिर मैं उन यात्रियों और उनके सहयात्रियों (खासकर स्त्रियों) को गौर से क्यों न देखूं कि वे कैसे यात्रा कर रहे हैं। कौनसी स्टाइल के बाल हैं और उन बालों में कौनसी पिन है। मेकअप कैसा है आदि-आदि। रेलवे स्टेशन से फुर्सत पाकर बस स्टैण्ड आता हूं। मेरे लिए बस स्टैण्ड भी तीर्थ है। विशेष रूप से बस स्टैण्ड का बुक स्टाल। क्या मनोहारी रूप है उसका। कोकशास्त्र की पुस्तकों से लेकर काव्य शास्त्र तक की पुस्तकें तक उपलब्ध होती हैं। रोडवेज के परिचय पत्रों से लेकर परिवार कल्याण विभाग के आसान उपाय तक इस स्टाल पर पाये जाते हैं। ऐसे मल्टी पर्पज स्टोर को भी मैं तीर्थ स्थान मानकर नमन करता हूं।

कुछ शहरों में रेड लाइट क्षेत्र भी मेरी दृष्टि में तीर्थ स्थल हैं। वहां के पंडे भी अन्य तीर्थ स्थलों के पंडों की भांति, तीर्थ यात्रियों को धर्म के नाम पर लूटते हैं। इन लालबत्ती वाली गलियों में बड़े से बड़े और छोटे से छोटे तबके का आदमी, तीर्थ लाभ लेने आता है। तीर्थ स्थानों की विशेषता भी यही है कि वहां सभी वर्ग के लोग जा सकते हैं। कुछ लोग, जो किन्हीं कारणों से इन तीर्थ स्थानों पर नहीं जा पाते, वे इन्हें पाप केन्द्र कहते हैं। यह निष्कर्ष वे सारे प्रयासों के बावजूद, इन्हें न देख सकने के कारण ही निकालते हैं। मैं इन तीर्थ स्थलों की यात्रा करके, बिना पूजा किए ही निकल जाया करता हूं। फिर भी पुण्य नहीं कमा पाया। इससे तो अच्छा यही रहता कि इन लालबत्ती वाले तीर्थों की अर्चना विधिवत करके आता।

एक मंचीय कवि मनुष्य और भगवान की बनाई हुई प्रत्येक वस्तु में तीर्थ के दर्शन करते हैं। घर से निकलते समय रास्ते में गाय, भैंस, सांड जो भी मिले उसके पैर छू लेते हैं। यहां तक कि कई बार उन्होंने, गधे के पैर भी छुए, कुत्ते के छुए और एक बार पत्नी के पैर छूने के जुर्म में पत्नी ने उनकी धुनाई कर दी। विनम्र व्यक्ति के साथ ऐसा ही होता आया है। कुछ लोगों के लिए पत्नी भी तीर्थ होती है और पत्नी की मां तो महातीर्थ होती है। चारोंधाम की तीर्थ यात्रा कर लाभ अकेली पत्नी की मां के दर्शन एवं अर्चना से हो जाता है। ये कवि महोदय जहां भी कवि सम्मेलन में जाते हैं, आयोजक के पैर अवश्य छूते हैं। जहां ठहराए जाते हैं, वहां कमरे में लगे हुए भगवान के चित्र पेंटिंग्स तथा करिश्मा कपूर के चित्रों के पैर छूते हुए उन चित्रों की चरण रज माथे तथा नेत्रों में लगाते हैं। जी हां, चरण रज - क्योंकि जहां कवियों को ठहराया जाता है, उस कमरे में डनलप के गद्दों के साथ-साथ रेत या धूल की मोटी पर्त अवश्य होती है। ऐसे तीर्थ स्थल को पवित्र रखने के लिए कवि महोदय पान या तम्बाखू की पीक, डनलप के गद्दे के नीचे छोड़ते हैं। कभी-कभी जब वे पूजा में रत होते हैं, तो यह शुभ कार्य वे गद्दे के ऊपर बिछी स्वच्छ चादर पर सम्पन्न कर देते हैं। बाद में वह चादर पिकासो का चित्र मालूम पड़ती है। तीर्थस्थल की पवित्रता बनी रहे, इसलिए ये अतिथि कक्ष में अटैच प्रसाधन में लघु दीर्घ शंका करके गंदा करने की बजाय, भवन के बाहरी किनारे को छूते हुए इन क्रियाओं के लिए बैठ जाते हैं। इनकी इस क्रिया से पूरा भवन पवित्र हो जाता है और उस तीर्थ स्थल को अतिरिक्त गरिमा मिल जाती है।

बस स्टैण्ड के बुक स्टाल को भारत की प्रगति का तीर्थ कहा जा सकता है। हमने आज़ादी के बाद क्या-क्या किया, बुक स्टाल से पता चल जाएगा। सैक्स की पुस्तकें कहां से कहां तक पहुंची। साहित्य ने, खासकर जासूसी साहित्य ने कितनी प्रगति की है। बुक स्टाल वाला इन पुस्तकों को पढ़ने में हमेशा तल्लीन रहता है। ग्राहकों के प्रश्नों का जवाब वह पुस्तक से चेहरा हटाए बिना ही दे देता है। परिणामस्वरूप वह ग्राहक बुक स्टाल वाले को चेतावनी देने के लिए सिर्फ एक पत्रिका अपहरण करता है। इधर पत्रिका का अपहरण हो रहा होता है, उस समय जासूसी उपन्यास में भी किसी का अपहरण हो जाता है। उपन्यास पढ़ते-पढ़ते बुक स्टाल वाला रोमांचित हो उठता है। उधर पुस्तक उठाकर ले जाने वाला भी ऐसे रोमांचित होने लगता है, जैसे किसी कन्या को भगाकर ले जा रहा हो। बुक स्टाल वाले के रोमांचित क्षणों में अचानक खलल पड़ता है। प्रश्नोत्तर होने लगता है -

"कर्मचारी चयन आयोग का फार्म है ?"
"नहीं है।"
"पिछले सप्ताह का रोजगार समाचार है ?"
"नहीं है।"
"फिल्मी कलियां ?"
"वह भी नहीं है।"
"कामनीदेवी की कुंवारी कलियां ?"
"थीं, खत्म हो गईं।"
"प्रेम चन्द का गोदान ?"
"ऐसी 'वल्गर' किताबें हम नहीं बेचते।"
"सचित्र कोक शास्त्र है ?"
"सामने देखो, दीवान जी पढ़ रहे हैं।"
"एक ही कॉपी है क्या ?"
"नहीं तीन हैं एक थानेदार के पास, दूसरी डिपो मैनेजर के पास और तीसरी दीवान जी पढ़ रहे हैं।"
"जासूसी उपन्यास 'प्राइम सस्पेक्ट' है ?"
"है, पर उसे मैं पढ़ रहा हूं।"
"दूसरी प्रति नहीं है ?"
"पचास थीं, सब बिक गईं, बहुत रोमांचक उपन्यास है, रेलवे के बुक स्टाल पर ट्राई कर लो।" दूसरा ग्राहक भी चला जाता है। दस मिनट के वार्तालाप में वह दस पत्रिकाओं को उलट-पुलट कर देख लेता है। उसे कोई भी पत्रिका पसन्द नहीं आती, इसलिए पत्रिका की चोरी किए बिना ही वह लौट जाता है। बुक स्टाल वाला पूर्व स्थिति में उपन्यास पढ़ने में व्यस्त रहता है। काफी सस्पेंस क्रिएट होता है। इस सस्पेंस में एक बार फिर बाधा पड़ती है।
"आवारा मसीहा है ?"
"जी नहीं, ईसाई धर्म की कोई किताब नहीं है।"
"हंसराज रहबर का मेरे सात जनम ?"
"जी परालौकिक पुस्तकें भी नहीं।"
"रसीदी टिकट।"
"आदमी हो या पैजामा, किताबों की दुकान को पोस्ट ऑफिस समझ

रखा है क्या ?''

ग्राहक अपमानित होता है, और लौट जाता है। निश्चित ही साहित्यकार है, वह अब साहित्य के गिरते हुए मूल्यों पर लेख लिखेगा और किसी अखबार में इस घटना को छपवा देगा। नास्तिक कहीं का, बुक स्टाल के तीर्थ को बदनाम करेगा। फिलहाल वह टी-स्टाल में घुस गया है। घुसने से पूर्व उसने भली-भांति पूछताछ कर ली है कि बाहर लगा साइन बोर्ड ''टी-स्टाल'' का ही है। चाय के खाली कपों के बावजूद उसे चाय मिलेगी या नहीं। वह चाय की चुस्कियों के साथ बुक स्टाल वाले के बारे में सोचने के बहाने, पूरे युग के बारे में सोचने लगा। इसका ऐसा करना यह सिद्ध करता है कि साहित्यकार युगदृष्टा होता है।

पुस्तक विक्रेता बिना चाय नाश्ता किए उपन्यास से जूझ रहा है। उपन्यास में जासूस कई बार चाय नाश्ते के साथ-साथ सुन्दरियों से रोमान्स भी कर चुका है, इसलिए पढ़ने वाले की आत्मा भी तृप्त हो जाती है। भूख प्यास सब मिट जाती है। उपन्यास अब क्लाइमेक्स की तरफ पहुंचने वाला ही होता है कि वह वृद्ध सज्जन बाधा डालते हैं।

''रुद्राक्ष की माला है ?''

''है पर असली है।'' उपन्यास से दृष्टि हटाए बिना ही पुस्तक विक्रेता जवाब देता है।''

''हमें असली ही चाहिए।''

''बहुत महंगी है, ले नहीं पाओगे।''

''क्या कीमत है ?''

''तीन हजार रुपये।''

''इतने में तो हरिद्वार में कई मालाएं मिल जाएंगी।''

''मेरे पास नकली होती तो यहीं मिल जाती।''

''अच्छा असली है तो दिखाओ।''

''पहले बताओ लेना है या नहीं।''

''लेना है तभी तो आये हैं।''

''जेब के रुपए गिन लो।'' मैं डिस्काउन्ट नहीं दूंगा। पूरे हो तो दिखाऊंगा।''

''क्या मतलब, हम तो पहले देखेंगे और देखने का मतलब खरीदना नहीं होता।''

''देखो, आपका मतलब मैं अभी नहीं समझ पाऊंगा बहुत जरूरी दस्तावेज पढ़ रहा हूं, शाम को आना।''

''दिल्ली में नहीं मिलता असली रुद्राक्ष। आज यहीं ठहर जाओ। सामने ही सस्ता होटल है।''

वह वृद्ध बिना रुद्राक्ष की माला लिए लौट जाता है। आज सुबह से एक भी पुस्तक नहीं बिकी, परन्तु उपन्यास पूरा हो गया। इसी बात को लेकर बुक स्टाल वाले के चेहरे पर संतुष्टि दिखाई दे रही थी। बुक स्टाल पर रुद्राक्ष है, धार्मिक पुस्तकें हैं, मानव मन की शांति के लिए ओशो टाइम्स है। अन्य तीर्थ स्थानों पर भी यही सब कुछ होता है। इसलिए मैं श्रद्धा के साथ बुक स्टाल को नमन करता हुआ सामने से हट जाता हूं, क्योंकि स्टाल वाले ने उपन्यास पढ़कर रख दिया है।

तुलसी के चुटकले

कहते हैं - सूरदास के सवा लाख पद उपलब्ध हैं। यह भी कहा जाता है कि सूर-तुलसी स्तर के कवि अब नहीं पाए जाते हैं। हम इस कथन से असहमत हैं। ऐसा कहने वालों ने मंचीय कवियों को नहीं सुना है। ये छह गीतों वाले कवि, अपने कंठ के बल पर पूरा हिन्दुस्तान घूम रहे हैं। सूर-तुलसी के भाग्य में घूमना कहीं लिखा था। सूर ने लिखा है - शृंगार और वात्सल्य। हमारे मंच के हिन्दी कवि खेत से लेकर चन्द्रमा तक, शिष्टाचार से लेकर भ्रष्टाचार तक, आम के अचार से लेकर दुराचार तक, घोटालों से लेकर अलीगढ़ के तालों तक पहुंच गए हैं। जीवन का कौनसा क्षेत्र है, जो उन्होंने नहीं छुआ है ? कमाल यह नहीं है कि उनका फलक बड़ा है - कमाल तो यह है कि वे समस्त समस्याओं को एक ही कविता या गीत में समेटे, पूरे देश में घूम रहे हैं।

क्वांटिटी पर मत जाइए, क्वालिटी देखिए। जिस तरह गुलेरीजी अपनी एक कहानी ''उसने कहा था'' के कारण अमर हो गए, उसी तरह ये छह गीतिया कवि, चंद गीत लिख कर अमर हुए जा रहे हैं। कविता की दिशा मत देखिए - दशा देखिए।

सूरदास के पास ढंग के कपड़े भी नहीं थे। हमारे आधुनिक मंचीय कवियों का रहन-सहन किसी रईस से कम नहीं है। आप यदि बादल पर कविता लिख रहे हैं, तो आपको पता होना चाहिए कि बादल देखने, छूने तथा सूंघने में कैसा लगता है। आज के युग में कोरी कल्पना चलने वाली नहीं, इसलिए इन मंचीय कवियों को इण्डियन एयर लाइन्स से यात्रा करनी पड़ती है। वे यद्यपि मितव्ययी हैं, परन्तु एयर होस्टेज और बादलों को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। सूर और तुलसी ढंग के चेले भी नहीं तैयार कर सके, लेकिन हमारे छह गीतिया कवियों ने एक से बढ़कर एक सुन्दर कवियित्रियों को कविता सहित तैयार कर लिया। अलग-अलग कवि सम्मेलनों में उनके साथ, अलग-अलग कवियित्रियां होती हैं। इस उपलब्धि के आगे सूर और तुलसी की काव्य कला पानी भरती नज़र आती है।

आज यदि सूरदास जी मंच पर आ जाएं तो वे वही पढ़ेंगे - "मैया मैं नहिं माखन खायो।" श्रोता कहेंगे – यह बात हम भी जानते हैं कि आपने अरवी की सब्जी और सूखी पूड़ियां खाई हैं, क्योंकि आप "झोला छाप" मंचीय कवि हैं। आप "ड्रिंक्स" भी नहीं लेते, इसलिए हम सभी श्रोता आपको रिजेक्ट करते हैं। सूरदास जी के हूट होने पर छह गीतिया कवि प्रसन्न हो जाते और मंच के पीछे जाकर एक पाव "सोमरस" का अतिरिक्त डोज़ ले लेते।

तुलसी के हास्य रस को देखें तो उन्होंने लिखा - विंध्य के वासी उदासी तपोव्रत धारी, महाबिनु नारी दुखारे ....। इसमें कहां है हास्य रस ? आज के युग में बहुत कम आदमी बिना पत्नी के रहते हैं । कुछ लेखक वगैरह रहते भी हैं, तो इसमें हास्य रस कैसे हो सकता है। सभी जानते हैं कि शिलायें नारियां नहीं हो सकती। हां नारियां, शिलाएं हो सकती हैं, तभी तो लेखकों को अकेले रहना पड़ता है।

आज के मंचीय कवियों में, वही कवि हास्य रस का माना जाता है, जिसकी कविता की पंक्तियां द्विअर्थी हो। यह द्विअर्थी का अर्थ दो अर्थों से ही है - दो अर्थियों से नहीं। कहा जाता है कि कुछ मंचीय कवियों ने हिन्दी कविता की अर्थी ही निकाल दी। आज का मंचीय कवि हास्य के नाम पर नाचता है, नौटंकी करता है, रोता है, दांत दिखाता है - कुल मिलाकर चुटकलों और अभिनय के बल पर वह मंच पर जम जाता है।

यदि तुलसी जी ने हास्य की परिभाषा जान ली होती, तो रामचरित मानस के स्थान पर "तुलसी के चुटकले", "तुलसी के कहकहे", "तुलसी के व्यंग्य - पत्नी संग" आदि रचनाएं छपतीं। ये सभी पुस्तकें पॉकेट बुक्स में भी उपलब्ध हो जाने के कारण तुलसीदास जी की आमदनी बढ़ जाती। यदि सूर और तुलसी ने थोड़ी सावधानी से काम लिया होता, तो आधुनिक मंचीय कवि सम्मेलन मध्यकाल से ही प्रारम्भ हो गए होते। सूर-तुलसी एक शहर से दूसरे शहर में काव्य पाठ करते हुए, यात्रा प्रवास में ही कुछ नई तुकबन्दियां, फिल्मी पेरोडियां लिख देते। फिल्मी पेरोडियां कवि को हूट नहीं होने देतीं। आज तक ऐसे श्रोता ने जन्म नहीं लिया, जो फिल्मी पेरोड़ियां सुन कर हूटिंग कर सके। हूटिंग के भी अपने नियम-कायदे होते हैं।

आज अगर, सूर-तुलसी अपने पुराने रूप में प्रगट हो जाएं और उन्हें किसी क्लब द्वारा फाइव स्टार होटल में कवि गोष्ठी हेतु आमंत्रित किया जाए, तो बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। अपनी कविता भूल कर वे कवि, कभी पर्दों को

छूकर देखेंगे तो कभी फर्श का कालीन। आज के छह गीतिया कवि, उनकी इस हरकत पर हंसे बिना नहीं रहेंगे। महिलाएं कहेंगी सूर-तुलसी जी वातानुकूलित हॉल मेंआपको पसीना क्यों आ रहा है। सूर-तुलसी अपने उत्तरीय (अंगोछे) से सचमुच पसीना पोंछने लग जाएंगे।

दूरदर्शन पर दोनों कवियों की हालत खस्ता हो जाती। कैमरे और लाइट के सामने ये कविता नहीं पढ़ पाएंगे। सूरदास जी कृष्ण को और तुलसीदास जी राम को याद करने लगेंगे।

आज के छह गीतिया कवि सागर पार जाकर कविताएं पढ़ रहे हैं और लौटकर झूठे संस्मरण गढ़ रहे हैं। किसी महत्वाकांक्षी छह गीतिया कवि को यह कहते सुना जा सकता है - इसी जून में फीजी, मारिशस या ब्रिटेन जा रहा हूं। सूर और तुलसी से विदेश जाने को कहा जाता, तो वे साफ इन्कार कर देते।

आज के मंचीय कवियों के पास ''विल पॉवर'' कवियित्रियोंऔर महिला श्रोताओं को देख कर बढ़ जाती है - जैसे किसी हिन्दी राज्य के कम पढ़े-लिखे नेता की अंग्रेजी, मंत्री बनते ही परिष्कृत हो जाती है। जब ऐसे नेता पर भ्रष्टाचार का आरोप लगता है तो वह उसे षड्यंत्र न कह कर ''कांसपरेन्सी'' कहता है, जैसे छोटे बच्चे अपने जिन्दा पिता को ''डैड'' कहते हैं। मंच का वीर रस का कवि बहुत ख़तरनाक होता है, वह बार-बार अपने हाथ से अपनी जंघाओं को थपथपाता है और श्रोताओं को कहता है तालियां बजाइए। बिना ताली सुने उसका वीर रस नहीं जागता। ताली सुनकर वह पाकिस्तान को गाली निकालता है। यह बात मैं आज तक नहीं समझ पाया कि यदि पाकिस्तान न होता तो हमारे देश में वीर रस के कवि कैसे पैदा होते। चीन की दादागिरी के खिलाफ आजकल वीर रस के कवि लिखते ही नहीं। जिस तरह कश्मीर समस्या सनातन है, उसी तरह मंच का वीर रस सनातन है। ''मैं पत्थर को पाषाण बना सकता हूं।'' वाली स्टाइल में न तो सूरदास जी लिख सकते थे और न तुलसीदास।

तुलसीदास जी, यदि आप स्वर्ग में ''इन्टरनेट'' पर मेरा यह लेख पढ़ रहे हों, तो मैं आपको एक ऐसा रहस्य बता रहा हूं कि आप दांतों तले अपनी समस्त अंगुलियां दबा लेंगे। आपने ''रामजी'' पर लिखा और कंगाली में जिये। आजकल के कवियों ने ''रामलला'' पर लिख कर करोड़ों बना लिए। आप अपने रामजी से पूछिए कि आपकी भक्ति में क्या कोई कमी रह गई थी और इन ''रामलला'' वाले कवियों ने ऐसी कौनसी साधना की जिसके कारण इन्हें करोड़ों मिले। पांच हजार से

दस हजार तक एक कवि सम्मेलन में ये कवि पारिश्रमिक ले रहे हैं। इनकी भक्ति आपसे ऊंची है, क्योंकि इनका सिद्धान्त है - ऊंचा फल तो ऊंचा कर्म। रामजी को देखिए, इन कवियों की धृष्टता पर तनिक भी नाराज नहीं होते। ये कवि मंच पर ही कह देते हैं 'मेरा पिया घर आया ओ रामजी'' वाली पंक्ति में ''रामजी'' नायिका के पति का नाम है और वह अपने पति का नाम लेकर, उसे अपने प्रेमी के घर पर उपस्थित होने की सूचना दे रही है। हो गई न हद, परन्तु रामजी को देखिए इन कवियों को कवि सम्मेलन छप्पर फाड़ कर दे रहे हैं।

कहते हैं - हमारे समस्त साहित्य का स्रोत वेद हैं। कुछ लोग कहते हैं, वर्तमान चुटकले वेद में नहीं थे। ऐसा नहीं हो सकता। वह रहस्य जो मुझे ही मालूम है, आज खोलने जा रहा हूं। तुलसीदासजी ने मध्यकाल में चुटकले भी लिखे थे, जैसे मंच के कवि अश्लील ग़ज़लें लिखते हैं और कवि सम्मेलन खत्म होने के बाद होटल में पीते-खाते समय एक-दूसरे को सुनाते हैं। मध्यकाल में चुटकले वर्जित थे। अतः तुलसीदास जी की चुटकलों वाली पाण्डुलिपि उस समय प्रकाश में नहीं आई। वह पाण्डुलिपि आज के मंचीय कवियों में से, किसी को प्राप्त हो गई है और सभी मंचीय कवि तुलसीदासजी के चुटकलों को थोड़ा बहुत संशोधित कर कवि सम्मेलन लूट रहे हैं। तुलसीदास जी को मरे हुए शताब्दियां बीत गईं, अतः रॉयल्टी का दावा नहीं किया जा सकता। मंचीय कवियों की दृष्टि में इन चुटकलों के कारण ही तुलसी एक महान कवि हैं।

दिल्ली के जूता चोर

नई दिल्ली का रेलवे स्टेशन भारत में प्रसिद्ध है तो उसका एकमात्र कारण यह है कि देश के कोने-कोने से लोग इन्सान से वस्तु बनने के लिए, इस स्टेशन पर पहुंचते हैं। जब दिल्ली में कोई रैली होती है तो इस स्टेशन पर पैर रखने के लिए जगह नहीं रहती। बावजूद इसके हर कोई दिल्ली के स्टेशनों पर पैर रखता चला आता है। जाहिर है, ये पांव एक-दूसरे के ऊपर ही रखे जाते होंगे। दिल्ली में पांव रखने वाले राष्ट्रभक्त होते हैं और राष्ट्रभक्त जमीन की अपेक्षा, किसी दूसरे के पैरों पर ही अपने पांव रखे जाना पसंद करते हैं।

जब से राष्ट्र के आत्मनिर्भर होने की घोषणा हुई है, राष्ट्र में प्रकाशकों का स्तर बढ़ा है और लेखकों का स्तर घटा है। अपने घटे हुए स्तर के कारण हम अपने को बढ़िया लेखक मानते रहे और हमेशा चल कर प्रकाशकों के घर जाते रहे। इसी क्रम में हम एक बार नई दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर सुबह चार बजे उतरे। नई दिल्ली रेलवे स्टेशन को देख कर तबीयत खिल गई। तबीयत खिलने का एकमात्र कारण यह था कि सुबह होने तक हमें वहीं बैठ कर समय काटना था। सर्वविदित है, प्रकाशक लोग देर से सोकर उठते हैं, जबकि लेखक सोता ही नहीं है। मैं अपने प्रकाशक के जागने की प्रतीक्षा, नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर बैठ कर करने लगा। रेलवे स्टेशन पर एक बड़ी जनसंख्या जमीन पर बैठी थी, जबकि कुछ चुने हुए वी.आई.पी. बैंचों पर सोकर अपनी राष्ट्र भक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे। ऐसे ही एक राष्ट्र भक्त के पास मैं बैठ गया। राष्ट्र भक्त ने सोते हुए हमें लात से गिराने की कोशिश की, परन्तु हम भी कम राष्ट्रभक्त नहीं थे, इसलिए अपने स्थान पर जमे रहे।

पता नहीं कब, बैठे-बैठे मेरी आंख लग गई। जब आँख खुली तो बैंच खाली थी और मेरे जूते किसी राष्ट्रभक्त के पैरों की शोभा बन चुके थे। ये जूते, कुछ ही दिन पहले मैंने सात सौ में खरीदे थे। खाली बैंच मुझे नींद का आमंत्रण दे रही थी, परन्तु जूते चोरी हो जाने के कारण मैं खाली बैंच का सदुपयोग नहीं कर पा रहा

था। अब मैं मूल रूप से लेखक नज़र आ रहा था। पैरों में मौजे शेष थे, जो राष्ट्रभक्त के विशाल हृदय वाला होने के परिचायक थे। ये मौजे कांटो से पैरों की रक्षा नहीं कर सकते थे, परन्तु ठण्ड और गर्मी से निजात दिला सकते थे। लेखक अपने वर्तमान के प्रति लापरवाह होता है। मैंने भी जूतों के मामले में लापरवाही दिखाई थी। मोजे, जरूर सावधानी से पहने रखे थे। कीमती जूते जाने के बाद भी मुझे इस बात का संतोष था कि मैंने मोजे पहन रखे थे।

कभी-कभी मोजे जूतों का काम कर जाते हैं, जैसे कोई छुटभैया नेता किसी बड़े अफसर का तबादला करवा देता है। मुझे यह जानकर गर्व हुआ कि मैं पैरों से नंगा नहीं हूं। पैरों से एकदम नंगा हो जाना साहित्य के लिए काफी ख़तरनाक माना जाता है। शेष शरीर नंगा हो तो चल सकता है। मैं जूतों की खोज में बैंच से उठकर चहलकदमी करने लगा। जूते खोजने के लिए लोगों के पैरों की ओर देखना आवश्यक था। लेकिन मैं ऐसा करने में असमर्थ रहा, क्योंकि लोग मेरे पैरों की ओर देखने लगे। लोग अपने चेहरे पर जूते नहीं पहनते, इसलिए मैं अपने जूते खोजने में असमर्थ रहा। थक कर, उसी बैंच पर बैठ गया, जहां से जूते चोरी हुए थे। बैंच के आस-पास का हर व्यक्ति मुझे चोर नज़र आ रहा था। दो-चार व्यक्तियों की मैंने तलाशी भी ले ली, परन्तु जूते नहीं मिले।

मुझे अपनी गलती का भान हुआ। मुझे सोना नहीं चाहिए था। देश में इतनी बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं और मैं सो रहा हूं। लानत है मुझ पर। लेखकों के जूते चोरी नहीं होते, बल्कि कुछ लेखक तो दूसरों के जूते चुराते हैं। यह सिद्ध हो गया कि मैं "जेनुइन" लेखक नहीं हूं। मैं राष्ट्रभक्त भी नहीं हूं। नेता इस देश में सो सकते हैं, राष्ट्रभक्त नहीं। वास्तव में जूता चोर बहुत बड़ा राष्ट्रभक्त था। वह देश के प्रति लोगों के कर्तव्य का अहसास कराने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा था। एक बार जिसका जूता चोरी हो जाए, भविष्य में वह जूते उतार कर नहीं सो सकता।

सुबह होने पर रिक्शे वालों ने बताया कि यह देश की राजधानी है। यहां देश के छंटे-छंटाए राष्ट्रभक्त रहते हैं। ये राष्ट्रभक्त रातभर जूते चुराते हैं और सुबह उन्हें एक बगीचे में चौथाई कीमत पर बेच देते हैं। उन पैसों से खरीदी गई स्मैक का सेवन कर, राष्ट्र की समस्याएं सुलझाने में व्यस्त हो जाते हैं। मैं पता पूछ कर उस स्थान पर पहुंच गया, जहां राष्ट्रभक्तों का मेला लगता था। शायद वह स्थान किसी राष्ट्रभक्त की कब्रगाह था। अनेक राष्ट्रभक्त ढेरों जूतों के साथ वहां अपने राष्ट्रप्रेम को प्रदर्शित कर रहे थे। मैंने उन जूतों के ढेर में अपने जूते पहचान लिए। राष्ट्रभक्तों के उद्दीप्त

चेहरे देख कर मैं यह नहीं कह सका कि ये जूते मेरे हैं। कोई भी प्रति प्रश्न कर सकता था कि लेखक के जूते इतने महंगे कैसे हो सकते हैं।

मैंने अपने जूते दो सौ रुपए देकर पुनः प्राप्त कर लिए। मैं खुश था। मैंने पांच सौ रुपए बचा लिए। राष्ट्रभक्तों ने मेरी लापरवाही की कीमत सिर्फ दो सौ रुपए आंकी।

होली में प्रेम

होली स्वयं एक प्रेम है। होली की ज्वाला से प्रेम उत्पन्न होता है। कम दहेज लाने वाली बहू अपने पति से बहुत प्रेम करती है, इसलिए वह मिट्टी का तेल छिड़क कर अपने प्रेम की लौ का प्रदीप्त करती है। होली आते ही चारों ओर प्रेम बढ़ जाता है। लकड़ी चोरों की संख्या बढ़ जाती है। वे लोग, जिनके खानदान में कभी किसी ने चोरी नहीं की, लकड़ी की चोरी कर लेते हैं।

वैसे, कई बार लड़की भगाने वाले भी ऐसे ही वीर निकले हैं, जिनके ख़ानदान में कभी किसी ने लड़की नहीं भगाई। हिम्मत की बात है। किसी ख़ानदान में ऐसी हिम्मत, कब बढ़ जाए, कहा नहीं जा सकता।

प्रायः गांवों में होली के दिनों में होली के बहाने लोग अपनी दुश्मनी निकाल लेते हैं। बैलगाड़ियां, लकड़ी के हल, लकड़ी के छप्पर, खम्भे आदि होली को चढ़ा दिए जाते हैं। होलिंका माता ऐसी वस्तुओं को पाकर अपनी लौ ऊंची कर लेती है। जब तक बैलगाड़ी का मालिक आकर अपनी बैलगाड़ी पहचाने, तब तक उसकी बैलगाड़ी जल चुकी होती है। उस वर्ष की होली बैलगाड़ी वाले पर भारी पड़ जाती है।

यह कहानी एक वीर मराठा बाबूराव की कहानी है। मराठा सीरियल से इस कहानी का कुछ लेना-देना नहीं है। मराठा बाबूराव बहुत वीर था और हिन्दी साहित्य के वीरगाथाकाल के अध्ययन से, यह निष्कर्ष निकलता है कि वीर लोग, प्रेम भी बहुत करते हैं। बाबूराव बचपन से ही वीरता और प्रेम, दोनों का प्रदर्शन करने लगा था। बचपन में ही वह कभी किसी खलनायक को पीट देता था, तो कभी किसी लड़की को छेड़ देता था।

उसकी वीरता होली के दिनों में देखते ही बनती थी। फागुन की रातें वैसे भी मादक होती हैं। उस पर मुहल्ले की होली को अव्वल दर्जा दिलाने के नशे में बाबूराव पागल हो जाता था। उसके पागल होने का एक कारण, उसकी प्रेमिका

सरला थी। वह बाबूराव की तरह ही ठिगने कद की थी। प्यार के मामले में वह बहुत बहादुर थी। उसकी बहादुरी का एकमात्र कारण बाबूराव का वीर होना था। सरला के पिता पटवारी थे। गांव में पटवारी धर्मराज और यमराज, दोनों के रूप में मान्यता प्राप्त अधिकारी होते हैं। स्वतंत्र भारत वर्ष में पटवारियों ने देश की जो सेवा की है, उसके लिए देशवासियों को उनका ऋणी होना पड़ता है। इस रचना में पटवारियों की महानता पर प्रकाश डालने की अपेक्षा, सरला और बाबूराव के बीच अचानक प्रेम होने के कारण खोजना श्रेयस्कर होगा।

सरला और बाबूराव के प्रेम का कारण होली वाली लकड़ियां थीं। गांव का जंगल पटवारी की सम्पत्ति होता है, अतः सरला के घर के बाहर पेड़ों के ढेर लगे थे। बाबूराव की नजर इन्हीं कटे हुए पेड़ों पर थी, न कि सरला पर। बाबूराव दिन में इन्हीं पेड़ों की लकड़ियों को घूरता था। सरला को गलतफहमी हो गई कि बाबूराव उसे घूरता है।

पहला प्यार अक्सर गलतफहमी में ही होता है। बाद में मनुष्य शादी से लेकर मृत्यु तक, गलतफहमी में जीता रहता है। बाबूराव के प्रति गलतफहमी में ही सही, सरला के मन में प्रेम उत्पन्न हो गया।

बाबूराव फागुन के महीने में पटवारी के घर चक्कर लगाता था, ताकि लकड़ियों की चोरी हो सके। सरला को जब पता चला कि बाबूराव रात को उसके घर के चक्कर लगाता है, तो उसकी नींद उड़ गई। फागुन के महीने में युवतियों को नींद कम क्यों आती है, इसकी अभी खोज बाकी है।

होली के कुछ रोज पहले फागुन की दूधिया रात में, सरला ने बाबूराव को लकड़ी चुराते हुए पकड़ लिया। बाबूराव ने जैसे ही एक लकड़ी सरकाई, सामने सरला आ गई। सरला बाबूराव को ऐसे घूरने लगी जैसे कोई प्रेमी अपनी पत्नी के सामने, प्रेमिका के साथ रंगे हाथों पकड़ा गया हो।

सरला ने शोर मचाने की धमकी दी। बाबूराव ने कहा ऐसा मत करो। सरला ने कहा ठीक है, शोर नहीं मचाऊंगी, किन्तु तुम्हें मेरे साथ प्रेम करना होगा। मेरे साथ प्रेम करने में दूसरा फायदा यह होगा कि मैं अपने घर से, तुम्हारी होली तक लकड़ियां पहुंचाने में मदद करूंगी।

उस समय बाबूराव को होली बढाने की धुन सवार थी, प्यार करने का मूड कतई नहीं था, मगर लकड़ियों के चक्कर में वह लड़की के हत्थे चढ़ गया। पटवारी के घर से चोरी होने वाली लकड़ियों की संख्या बढ़ गई, तो पटवारी का ध्यान

गया। सरला और बाबूराव दोनों मिलकर लकड़ी उठाते, और होली तक पहुंचा देते। दिन में बाबूराव के साथी बाबूराव की बहादुरी की प्रशंसा करते। उधर सरला भी, अपनी सहेलियों में उसका गुणगान करने लगी, ताकि सहेलियां सरला से ईर्ष्या करने लगे - मगर उसकी सहेलियों ने बाबूराव में कोई रुचि नहीं ली।

क्षेपक शुरू होता है। फागुन की रात में चांदनी बिखरी पड़ी है। बाबूराव और मैं, सरला के घर लकड़ी की चोरी करने जाते हैं। सरला सामने आती है। मैं दोनों से कहता हूं कि मैं चलता हूं। बाबूराव मुझे रोक लेता है। सरला बाबूराव को एक चॉकलेट देती है। बाबूराव उससे कहता है, इसे भी दो। वह मुझे चॉकलेट नहीं देती। बाबूराव अड़ जाता है, इसे चॉकलेट देनी पड़ेगी। मगर मुझे चॉकलेट नहीं मिली। हम तीनों एक मोटी सी लकड़ी चुराकर होलिका माता की ओर ले चलते हैं, तभी पटवारी आ जाता है।

वह देखता है कि लकड़ी और लड़की, दोनों की चोरी हो रही है। वह सरला को वहीं पीटता है और हमसे कहता है कि लकड़ी भी वापिस रख के आओ। लड़की वापिस हो चुकी थी, मगर लकड़ी टस से मस नहीं हो रही थी। हमारे साथ पटवारी के घर से होली तक लकड़ी सरला की ताकत के कारण ही पहुंची थी।

पटवारी ने लकड़ी छोड़ दी और बाबूराव को चेतावनी दी कि मैं लड़की नहीं छोड़ पाऊंगा, इसलिए मेरे घर के चक्कर मत काटना।

उस वर्ष बाबूराव के मुहल्ले की होली सबसे ऊंची लौ के साथ जली और साथ ही प्रेम की लौ में जलने लगे बाबूराव और सरला।

बाद में दोनों की शादी हो गई।

अब प्रतिवर्ष होली आते ही दोनों पति-पत्नी लकड़ी चुराने निकल पड़ते हैं। सरला अपने पीहर से जरूर लकड़ी चुराती है।

इस कहानी से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो लड़कियां होली के दिनों में प्रेम करती हैं, वे अन्य लड़कियों से अधिक शक्तिशाली हो जाती हैं।

प्रयोगशाला में व्यंग्य

हाल ही में, दृष्टि पथ से एक समीक्षक का लेख गुजरा - पैंट के ऊपर कुर्ता पहने हुए। वैसे, यह फैशन काफी पुराना है, परन्तु चूंकि आलेख व्यंग्य का था, इसलिए पाठकों ने पुरानी पोशाक झेल ली। परसाई की भाषा की पड़ताल की गई थी और यह साबित किया गया था कि स्तम्भ लेखन में उनकी भाषा व्यंग्यात्मक नहीं हो पाई थी। भैया, परसाई जी मसिजीवी थे, आपकी तरह स्थापित व्यंग्यकार या, समीक्षक नहीं हो पाए थे। बाद में लेख के अनुसार, शरद जोशी की भाषा भी ठीक नहीं रही। समीक्षक के अनुसार-त्यागी; लतीफ, घोंघी श्रीलाल शुक्ल, नरेन्द्र कोहली आदि की भाषा अलबत्ता कुछ ठीक है। ज्ञान चतुर्वेदी ने भी संभावनाएं जगाई हैं। के.पी. सक्सेना भी ठीक हैं।

नई पीढ़ी के पच्चीसेक व्यंग्यकारों के नाम उन्होंने गिनाए थे, जो व्यंग्य में प्रयोग कर रहे हैं। वे प्रयोगशाला में घुसे हुए हैं और पुराने लेखकों से अधिक प्रतिभाशाली हैं। इधर व्यंग्य का एक फार्मूला खोजते हैं, और उधर पता चलता है कि यह तो परसाई खोज चुके हैं। वे सिद्धान्त को पकाते हैं और आर्किमिडीज की तरह "यूरेका" चिल्लाते हुए प्रयोगशाला से बाहर आ जाते हैं। बाहर आकर वे शरद जोशी की किताब खोलते हैं, तो वही सिद्धान्त मिलता है।...... च् च् .:.......... हो गई न पूरी मेहनत बेकार। एक बीकर में कुछ कड़वे नीम के पत्ते, कुछ शहद, थोड़ी चीनी आदि मिलाकर व्यंग्य का काढ़ा बनाते हैं। स्वाद चखते हैं तो पता चलता है - न कड़वा है न मीठा, न तीखा और न खट्टा। कच्चा सामान चखते हैं - एकदम शुद्ध है। गड़बड़ कहां हुई। बीकर भी खूब धो पोंछकर आंच पे चढ़ाया था। परसाई व्यंग्य को लकड़ी वाले चूल्हे पर पकाते थे, हम गैस पर पका रहे हैं - पक नहीं रहा है।

सबके सब निराश हैं - व्यंग्य पक क्यों नहीं रहा ? परसाई - शहद त्यागी के जमाने में इतनी सुसज्जित प्रयोगशाला कहां थी। फिर भी वे व्यंग्य को पका ले गए, जैसे कोई लाठीवाला, बन्दूक वाले को हरा दे। कुछ भी हो, थे पहलवान। अब

मुश्किल से चार-पांच सौ शब्द लिखे जाते हैं। ज्यादा लिखने पर व्यंग्यकारों की हांफनी छूटती है। ब्लडप्रेशर बढ़ जाता है। किस मिट्टी के बने हुए थे, पुराने व्यंग्यकार। एक-एक व्यंग्य में तीन-तीन हजार शब्द। कोई वाक्य या शब्द हल्का नहीं। उनके घटिया से घटिया व्यंग्य को पढ़े, तो हमसे बढ़िया लगता है।

कुछ देर के लिए अनेक व्यंग्यकार प्रयोगशाला से बाहर आ जाते हैं। मन्त्रणा होती है - बात नहीं बन रही। बूढ़े खूसटों ने ऐसे-ऐसे प्रतिमान स्थापित कर दिए कि उन्हें तोड़ने में पसीना आ गया है। आत्म श्लाघा के कारण इन प्रयोगकर्मी व्यंग्यकारों के चेहरे तमतमा जाते हैं। व्यंग्य में कविता, कहानी की तरह कोई आंदोलन भी नहीं छेड़ा जा सकता है। न तो कविता की तरह "व्यंग्य की वापिसी" का नारा लगाया जा सकता है और न उत्तर आधुनिकता के नाम पर, कुछ नया किया जा सकता है। कितना दकियानूसी है व्यंग्य - जरा भी नहीं बदला। इतने साल हमें कलम घसीटते हुए हो गए, परन्तु न खुदा ही मिला न विसाले सनम। इससे तो अच्छा था कहानी की प्रयोगशाला में घुस जाते। प्रेमचन्द के बाद काफी तरक्की हुई है कहानी - उपन्यास में। व्यंग्य में तो तरक्की हो रही है, परन्तु दिखाई नहीं देती। हमने पूरी प्रयोगशाला को तरह-तरह की दुर्गन्धों से भर दिया, लोग कहते हैं तुमने कुछ नहीं किया। आओ कुछ करें।

तय होता है कि प्रत्येक व्यंग्यकार वर्तमान व्यंग्य की पड़ताल करते हुए किसी अखबार - पत्रिका के लिए समीक्षात्मक लेख लिखेगा, जिसमें अपने गुट वालों के ही नाम होंगे। ध्यान रहे, वर्तमान व्यंग्य पर लिखी पुस्तक में जिन व्यंग्यकारों को लिया है, उन्हें तो ले लेना, लेकिन सम्पादक का नाम नहीं आना चाहिए। उसे हम सबक सिखा देंगे। इतने वर्षों से क्या हम घास खोद रहे थे, जो उसने हमारी रचना शामिल नहीं की। कितने अखबारों में छपते हैं हम। पुस्तकें भी उन्हें समीक्षा के लिए भेजी थीं – न तो धन्यवाद पत्र दिया और न हमारी कहीं चर्चा की। कल हम भी एक व्यंग्य संग्रह का सम्पादन करेंगे। पैसों की कमी थोड़े ही है। पैसे के बल पर स्थापित हो जाएंगे। कौनसी ऐसी चीज है, जो पैसा नहीं खरीद सकता।

ये तो एक प्रयोगशाला के व्यंग्यकारों की बात थी। दूसरी प्रयोगशाला किसी अखबार से जुड़ी है। कुछ नया बने, उससे पहले ही छपवा देते हैं - आधा अधूरा। फार्मूला आगे बढ़ता भी है, परन्तु बम फटने के स्थान पर फुस्स हो जाता है। धत्त तेरी की ! बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का .....। एक अखबार के जरिये, हम एक-दूसरे से जुड़े हैं। हम में से, किसी न किसी का रोज ही व्यंग्य छपता

है। यह बात अलग है, हम सम्पादक होते तो सम्पादकीय अच्छे लिख सकते थे। मूलतः हम सम्पादक ही हैं। सम्पादक की नौकरी नहीं मिली, तो व्यंग्य लिखने बैठ गए। "कांग्रेस काली है" या "घोटाले की दिवाली है" "बेचारा मोर्चा", पर तुरन्त लेख, लिख कर ऐसे दे देते हैं, जैसे टमाटर के पाउडर को गरम पानी में मिलाते हैं, तब सूप बन जाता है, ठण्डे पानी में चीनी के साथ मिलाते हैं तो शरबत बन जाता है। हमें ध्यान है कि सम्पादकों के मूड अलग-अलग होते हैं। कोई ठण्डा लाइक करता है कोई गरम। एक सम्पादक किसी राजनीतिक दल की आलोचना चाहता है, तो दूसरा उसके गीत गाता है। हमारे पास "हर किसिम" का माल है। यही कारण है हम चार पैसे बचा लेते हैं। तीसरी प्रयोगशाला के व्यंग्यकारों की उपलब्धि यह है कि उन्होंने चन्दा करके एक वर्तमान "व्यंग्य यात्रा" उसी प्रकार छापी है, जैसे कुछ पत्रिकाएं अपने पर्यटन विशेषांक निकालती है। इस व्यंग्य यात्रा में प्रयोगशाला के समस्त व्यंग्यकारो के व्यंग्य तो शामिल हैं ही, साथ ही, नुक्कड़ के पान वाले से लेकर, दूध वाले भैया तक की रचनाएं चुनी गई हैं। यह व्यंग्य की प्रथम चुनी हुई पुस्तक है, इसलिए इसकी सभी रचनाएं - व्यंग्य की प्रतिनिधि रचनाएं हैं। ये व्यंग्यकार परसाई - शरद जोशी, होने का दावा तो नहीं करते, परन्तु अपने समकालीन व्यंग्यकारों को पछड़ाने की ताकत अवश्य रखते हैं। इन्हें व्यंग्य की कुश्ती के अत्याधुनिक तरीके आते हैं। तुम सरसों का तेल मलकर अखाड़े में उतरोगे, तो हम नारियल का तेल लगाकर उतरेंगे। तुम चुटकी बजाओगे तो हम ताली पीटेंगे। तुम ताली पीटोगे, तो हम गाली देंगे। तुम लोटा फेंकोगे तो हम थाली फेंकेंगे। तुम ग्यारह हजार का पुरस्कार खरीदोगे, तो हम इक्कावन हजार का खरीदेंगे।

चौथी प्रयोगशाला, हर वर्ष व्यंग्य का पुरस्कार देती है। इस प्रयोगशाला में कार्यरत समस्त व्यंग्यकारों को पुरस्कार दिया जा चुका है। समस्या यह है - अब किसे दिया जाये। अपनी प्रयोगशाला से बाहर के व्यक्ति को देते हैं, तो पुरस्कार की गरिमा घटती है। इधर, हमारी प्रयोगशाला में नई भर्ती पर रोक लगी है। एक-दो वर्ष पुरस्कार स्थगित भी रख सकते हैं, परन्तु व्यंग्य का सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुरस्कार होने के कारण, बंद तो नहीं किया जा सकता। अपने-अपने तरीके से, सभी व्यंग्यकार इस समस्या के समाधान में जुटे हैं।

पांचवीं प्रयोगशाला के मुखिया नए व्यंग्यकारों से पैसे लेकर उनके व्यंग्य संग्रह छापते हैं। व्यंग्य संग्रह छपते ही नवोदित व्यंग्यकार स्थापित हो जाता है।

प्राइमरी शिक्षा के चमत्कार

प्राइमरी शिक्षा बालक की नींव होती है। नींव जितनी मजबूत होगी, इमारत उतनी ही ड्यूरेबल होगी। जिस प्रकार किसी राज्य के मुख्यमंत्री की नींव दिल्ली में होती है, उसी तरह किसी भी बालक की शिक्षा की नींव प्राइमरी स्कूल में होती है। दिल्ली में नींव कमजोर होते ही मुख्यमंत्री गिर जाते हैं, उसी तरह प्राइमरी स्कूल से निष्कासित बालक किसी काम का नहीं रहता। बालक के शैक्षिक निर्माण और मुख्यमंत्री के निर्माण में, इतना फर्क जरूर है कि मुख्यमंत्री भूतपूर्व होकर दिल्ली में अपनी नींव मजबूत कर सकता है, परन्तु प्राइमरी में फेल हुए बालक को ऐसे चान्स मुश्किल से मिल पाते हैं।

प्राइमरी शिक्षा और प्राइमरी शिक्षा प्राप्त करने का समय, किसी भी व्यक्ति के लिए अविस्मरणीय होता है। हम सब कुछ भूल सकते हैं, परन्तु प्राइमरी के जमाने में मुर्गा बनना और बगल वाले सहपाठी की नई शर्ट पर स्याही छिड़कने जैसी, ऐतिहासिक घटनाओं को नहीं भूल सकते। अगली बैंच पर बैठे साथी की पीठ में परकार की नोंक चुभाना, हर व्यक्ति के लिए प्राइमरी शिक्षा में उतना महत्वपूर्ण है, जितना किसी लड़की से पहली बार आंखें लड़ाना।

इधर जब से नई शिक्षा नीति लागू हुई है, प्राइमरी शिक्षा का नाम उछल कर ऊपर आ गया है। प्राइमरी शिक्षा रातों-रात महत्व पा गई। राज्य सरकारों ने घोषणा कर दी कि कदम-कदम पर खुलवा देंगे, प्राइमरी स्कूल। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड चला। जहां नहीं चल पाया, वहां कागज़ों पर चला। कागज़ के आंकड़े सरकार से भी तेज चलते हैं। प्राइमरी स्कूल पास न कर सकने वाले लोगों का कहना है कि प्राइमरी शिक्षा को स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन कर देना चाहिए। प्राइमरी स्कूलों के मास्टर नसबंदी के केस लाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और करते रहेंगे। पढ़ाने का कार्य तो गौण है। देश की प्रगति छात्रों को पढ़ाने से नहीं, बल्कि छात्रों की संख्या कम होने से होती है। इसलिए पहले आबादी कम करो, फिर पढाओ। ''आपरेशन ब्लैक बोर्ड'' का अर्थ गांव वालों ने अस्पताल में होने वाले ऑपरेशन

से लिया, तो इसमें मास्टर जी क्या करें।

प्राइमरी शिक्षा बंगाल के जादू से कम नहीं होती। इसमें इतनी विचित्रता, इतनी अक्षमता, इतनी सुगमता, इतनी जटिलता, इतनी कुटिलता, इतनी विषमता और इतनी विविधता होती है कि भारत की प्राइमरी शिक्षा प्रणाली को ''गिनीज बुक'' में अंकित किया जा सकता है। किसी प्राइमरी स्कूल में पेंसिल की चोरियां करने वाला छात्र, युवा होते-होते बैंक डकैतियों को प्राप्त हो जाए, तो उस प्राइमरी स्कूल का नाम रोशन हो जाता है। कालान्तर में वह बैंक डकैत, उस प्राइमरी स्कूल के भवन की मरम्मत करवा कर, अपने अनैतिक राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर उसे डिग्री कालेज में बदल सकता है। उस छात्र को प्राइमरी स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापक यदि जिन्दा हुए, तो अपने भूतपूर्व छात्र के कारनामे पढ़कर सीना तानने लग जाएंगे। गर्व के साथ कहेंगे अमुक डाकू या आतंकवादी मेरा शिष्य है। इस प्रकार मुहल्ले में ही नहीं, बल्कि पूरे शहर में उनकी धाक जम जाएगी। उनसे उधार के पैसे कोई नहीं मांगेगा । दूधवाला फ्री दूध सप्लाई करेगा। रातों-रात उनका सम्मान बढ़ जाएगा। नगर पालिका वाले पांच सितम्बर को, उनका नागरिक अभिनन्दन कर डालेंगे।

विज्ञान के चमत्कारों की भांति प्राइमरी शिक्षा भी चमत्कारों से भरी पड़ी है। शिक्षाविद् विज्ञान के चमत्कारों का प्रयोग प्राइमरी शिक्षा में करने पर जोर दे रहे हैं। उनकी यह धारणा गलत है। लगता है उन्होंने गांवों के प्राइमरी स्कूलों को देखा ही नहीं। अपने देश के गांवों के प्राइमरी स्कूल देवकीनन्दन खत्री जी के उपन्यासों की भांति तिलिस्म से भरे पड़े हैं। अपने घर से बस्ते के साथ ''टाट'' का टुकड़ा लाने वाले और स्याही से मुंह रंगने वाले छात्र इस तिलिस्म को जानते हैं। प्राइमरी शिक्षा के कुछ चमत्कार सामान्य ज्ञान बढ़ाने की ग़रज से, नीचे दिए जा रहे हैं।

प्राइमरी शिक्षा की धुरी घंटी होती है। घंटी बजते ही स्कूल चालू हो जाते हैं और घंटी बजते ही छुट्टी हो जाती है। प्राचीनकाल से ही लोहे या पीतल की घंटी काम में लाई जाती है। कालेज या सैकण्डरी स्कूल में घंटी चोरी हो जाए, तो चिन्ता की बात नहीं है। प्राइमरी स्कूल के अध्यापक घंटी की वैकल्पिक व्यवस्था कर लेते हैं। किसी प्राइमरी स्कूल में एक ही अध्यापक थे। एक ही कमरा था। फर्नीचर के नाम पर एक टूटी चारपाई थी। वही कमरा स्कूल था, कार्यालय था, निवास था। मास्टर जी पेंसिल कापी बेचते थे, अतः वह कमरा स्टेशनरी की दुकान भी था। ऐसे ''मल्टीपर्पज'' कमरे में विभाग द्वारा भेजी हुई घंटी नहीं थी। बालक

आते और मास्टर जी की टूटी चारपाई के इर्द-गिर्द बैठ जाते। मास्टर जी चारपाई पर बैठ कर पढ़ाया करते थे। बैठे-बैठे थक जाते तो चारपाई पर लेट जाते। उनका चारपाई पर लेट जाने का अर्थ "बीच की छुट्टी" होता था। छात्र उन्हें लेटा देख, अपने घर खाना खाने चले जाते। जब वे सोकर उठते, तो छात्र आकर फिर पढ़ने लगते। इस प्रकार प्राइमरी शिक्षा ने, बिना शब्द की घंटी का आविष्कार कर लिया, जो विज्ञान के किसी भी आविष्कार से कम नहीं था।

प्राइमरी शिक्षा ने बेरोजगारी की समस्या को किस प्रकार आनन-फानन में हल कर दिया, इसके लिए एक उदाहरण ही काफी होगा। एक बार एक शिक्षा अधिकारी, जब एक प्राइमरी स्कूल का मुआयना करने पहुंचे, तो देखा की एक नवयुवक बीसवीं सदी के अन्त में भी, प्राइमरी कक्षाओं में बड़ी मेहनत और लगन के साथ पढ़ा रहा है। अधिकारी ने नवयुवक की तारीफ की और पूछा, "आपकी पोस्टिंगं यहां कितने दिनों से है ?" नवयुवक ने उत्तर दिया कि चार रोज पहले ही उसने, नियुक्ति होने पर कार्यभार संभाला है। उसका उत्तर सुनकर शिक्षा अधिकारी जी भौंचक्के रह गए, क्योंकि पिछले वर्ष से, उस जिले में किसी भी अध्यापक की नियुक्ति नहीं की गई थी। गहराई से पूछताछ करने पर पता चला कि जो अध्यापक उस स्कूल में नियुक्त हैं, वे चार रोज पहले अपने गांव कृषि कार्य करने चले गए हैं। फसल बोने से पकने तक, इस नवयुवक को दो सौ रुपए प्रति माह पर रख लिया है।

कई बार प्रशासनिक परेशानियां प्राइमरी शिक्षा को प्रभावित करती हैं, परन्तु प्राइमरी स्कूल के आविष्कारोन्मुख अध्यापक इनका समाधान बडी तत्परता से कर देते हैं। एक दूर-दराज़ के गांव में सरकार ने एक "सिंगल टीचर" प्राइमरी स्कूल खोला। बिल्डिंग की व्यवस्था न हो पाने के कारण एक चौधरी जी के घर में स्कूल चलने लगा। स्कूल के अध्यापक जी तीन कोस दूर गांव के रहने वाले थे और आना-जाना करते थे। कुछ महीने, स्कूल ठीक-ठाक चला फिर चौधरी जी ने मकान खाली करा लिया। मास्टर जी को भी तीन कोस पैदल चलना पड़ता था, सो उन्होंने उच्चाधिकारियों को लिखा कि बरसात का मौसम है और "ओपन एअर स्कूल" की कहीं व्यवस्था नहीं हो पा रही है। अधिकारियों ने लिखा कि अपने स्तर पर व्यवस्था कर लें। अध्यापक जी ने स्कूल को स्थानान्तरित कर अपने ही गांव में, कैम्प कार्यालय की तरह स्थापित कर लिया। उनके गांव में पहले से ही स्कूल था, परन्तु तीन कोस दूर वाले गांव का स्कूल भी अपने गांव ले गए।

अध्यापक जी डाक भेजते तो स्कूल का नाम असली लिखते, परन्तु "कैम्प कार्यालय" लिख कर अपने गांव का नाम जोड़ देते। चूंकि तीन कोस दूर प्राइमरी के छात्र पैदल जाकर पढ़ नहीं सकते, अतः मास्टर जी फर्जी हाजरी भरकर अपनी खेती-बाड़ी देखने लगे।

भारत की प्राइमरी शिक्षा इतने चमत्कारों से भरी है कि उसे छोटे से लेख में चित्रांकित नहीं किया जा सकता, अतः मैं इस लेख को यहीं समाप्त करता हूं।

गुड़ और गुलगुले का शाश्वत सम्बन्ध

मैं गुड़ खाने का शौकीन हूं, लेकिन गुलगुले, मुझे अच्छे नहीं लगते। बचपन से ही मुझे नमकीन पकौड़े खाने का शौक रहा है। पकौड़े चाहे ब्रेड में हों, या पालक के, टमाटर के हों या पनीर के - मेरी पहली पसन्द हैं। बचपन में मां गुलगुले बनाकर उन्हें, पकौड़ों के साथ प्लेट में रख देती थी। मैं गुलगुलों को हाथ नहीं लगाता। बाद में ब्लड प्रेशर होने पर डॉक्टर से छिपा कर पकौड़े खाता रहा। एक समय तो ऐसा भी आया कि डॉक्टरों के लिए मेरी बीमारी एक पहेली बन गई। दवाई के तगड़े डोज़ देने के बाद भी सुधार नहीं हो रहा था, कारण वही पकौड़ों का था। मां से मैंने अनेकों बार कहावत सुनी थी - "गुड़ खाए और गुलगुलों से परहेज।"

गुड़ इसलिए खाता हूं, क्योंकि एक तो शक्कर नुकसान करती है, दूसरे अभी तक कोई गुड़ घोटाला उजागर नहीं हुआ। वैसे, अब गुड़ घोटाला होने ही वाला है, क्योंकि गुड़ वाले समुच्चय की वस्तुओं यथा यूरिया, शक्कर, चारा आदि के घोटाले हो चुके हैं।

गुलगुले से पहरेज करने वाले यत्र-तत्र-सर्वत्र फैले हुए हैं। मेरे एक अधिकारी हैं - बेहद पाक साफ। रिश्वत लेते नहीं, चाय पीते नहीं अर्थात् वे गुड़ और गुलगुले दोनों से परहेज करते हैं। एक दिन बड़े नाराज थे - मेरे काम को लेकर। बोले - तुम हो, कोई और होता तो एक्शन ले लेता। हम दोनों बस में एक ही सीट पर बैठे थे - दफ़्तर होता तो उनकी इस कृपा पर कुर्सी छोड़ कर खड़ा हो जाता। बस में इतनी भीड़ थी कि खड़े हुए लोग मुझे खड़े होने के लिए तभी स्थान देते, जब उन्हें मैं अपनी सीट देता। उस वक्त मैं इतना त्याग करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। कंडक्टर आया और हमारे साहब से टिकट के पैसे मांगे। साहब के पास छुट्टे नहीं थे, मैंने डरते-डरते, दोनों के पैसे दे दिए। साहब नाराज हुए, तुम क्यों देते हो। मैं रुक गया - शायद साहब ही दोनों के दे दें। लेकिन साहब ने नसीहत देने के अलावा कुछ नहीं दिया। मैंने दो टिकट ले लिए। साहब का गुस्सा उसी तरह साफ़ हो गया

था, जैसे पाकिस्तान के चुनावों में विश्वविख्यात क्रिकेटर, इमरान की पार्टी साफ हुई थी।

साहब रास्ते में आत्मीयता दिखाते रहे। एक जगह हम दोनों ने चाय पी और चाय के पैसे भी मैंने ही दिए। साहब ने अहसान किया - ये तो तुम्हारी चाय थी, जो पी ली वर्ना मैं ऐसी चाय पर थूकता हूं। चाय वाला उनका वाक्य सुनकर सहम गया। उसने धीमी आवाज में पूछा - सर चाय में कुछ खराबी थी। साहब कड़के - ये हमारी बातें हैं, तुम अपना काम करो।

गुड़ और गुलगुले वाली कहावत का हमारे साहब से अच्छा उदाहरण नहीं मिल सकता।

एक दूसरे साहब हैं - लहसुन प्याज बिल्कुल नहीं खाते। बीड़ी, सिगरेट, जर्दा वगैरह से भी परहेज करते हैं। सब्जियों में बैंगन की सब्जी नहीं खाते। इन वस्तुओं को वे तामसी कहते हैं। वे रोज शाम को पाव-डेढ़ पाव दारू पीते हैं। दारू तामसी नहीं है। दारू का सेवन वे दवाई के रूप में करते हैं। वैसे, उनकी क्षमता पूरी बोतल की है, लेकिन वे अपनी क्षमता का प्रदर्शन नहीं करते। अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन छिछंले स्तर वाले लोग किया करते हैं।

एक तीसरे साहब हैं, जो महिलाओं को बहन, माता जी आदि से सम्बोधित करते हैं। उनकी पत्नी ने एक बार उन्हें, इन सम्बोधनों के साथ नौकरानी के साथ प्रेम की पींगें बढ़ाते हुए पकड़ लिया और चप्पलों से धुनाई कर दी। बाद में पता चला वे साहब भी गुड़ और गुलगुले वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे थे।

एक सामाजिक संस्थान ने संयुक्त परिवार पर एक गोष्ठी की। संयुक्त परिवार के महत्व को प्रतिपादित करते हुए अध्यक्ष महोदय ने हमारे देश की महान परम्पराओं का जिक्र किया। उनका कहना था कि विश्व में सर्वाधिक नैतिकता हमारे देश में है, और इसका एकमात्र कारण संयुक्त परिवार हैं। मैंने जब उनके बारे में जानकारी प्राप्त की तो पता चला, वे अपने माता-पिता से अलग रह रहे हैं - बीवी बच्चों के साथ। उन्हीं के अनुसार, वे अनैतिक व्यक्ति साबित हो रहे थे और गुड़ खाकर गुलगुलों से परहेज़ पर आमादा थे।

जाहिर है, बिना गुड़ के गुलगुले तैयार नहीं हो सकते। गुड़ और गुलगुलों में वही सम्बन्ध है जो अभिनेता और इन्कम टैक्स में होता है, शादी और दहेज में होता है, लाइसेंस और रिश्वत में होता है, संचालन समिति और मिलीजुली सरकार में होता है, दूध और पानी में होता है, बाप और बेटे में होता है, नेता और ऐश्वर्य

(ऐश्वर्यराय नहीं) में होता है। जहां गुलगुला है वहां गुड़ अवश्य पाया जाता है। गुड़ आश्रय है गुलगुले आश्रित।

यदि कोई राजनीतिज्ञ, महत्वपूर्ण पद पर बैठ कर, सिर्फ एक रुपया वेतन उठाता है तो कहीं न कहीं गड़बड़ अवश्य है। या तो वह व्यक्ति महान् संत है या फिर गुड़ और गुलगुले वाली कहावत को चरितार्थ कर रहा है। ऐसे भी उदाहरण सामने आए हैं, जब एक रुपए वेतन लेने वाले व्यक्ति के घर से सोने, चांदी, साड़ियां, चप्पलें वगैरह छोटे-मोटे सामान बरामद हुए हैं। एक रुपया वेतन में, बड़े सामान तो बरामद होने से रहे।

दूरदर्शन वाले एक मित्र कॉफी हाउस में दावा करते हैं कि वे प्रतिभाशाली साहित्यकारों को ही दूरदर्शन पर दिखाते हैं। एक दिन उनके घर जाने का सौभाग्य मिला, तो यह जानकर कोई हैरानी नहीं हुई कि वे कुछ नवोदित कवयित्रियों से घिरे थे। गुड़ और गुलगुले वाली कहावत में हैरानी को स्थान नहीं मिला है। मैं जानता था, कुछ दिनों बाद दूरदर्शन पर भी इन युवतियों के दर्शन करने पड़ेंगे। ये कवयित्रियां अपने रूप के बल पर, लाल किले से लेकर, हर जिले के कवि सम्मेलनों में जाती हैं। इन्हें प्रोत्साहित करने वाले, गुड़ खाकर गुलगुले से परहेज करते रहते हैं।

मैं जब सरकारी पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में पदस्थापित हुआ तो पता चला कि वरिष्ठ सम्पादक जी बड़े सिद्धान्तवादी हैं। वे प्रकाश्य सामग्री को मैरिट के आधार पर छांटते व छापते हैं। मुझे उनका यह सिद्धान्त बहुत अच्छा लगा। एक अंक में, एक समारोह के चित्र छपने थे। उन्होंने सिर्फ वे ही चित्र छांटे, जिनमें उनका अपना फोटू विभागाध्यक्ष के साथ था। बाद में जब उन्होंने एक बाल-लेख में, अपने बेटे का चित्र छाप दिया, तो हमने घोषणा कर दी कि वे गुड़ और गुलगुले की कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं। मेरी घोषणा उनके कानों तक पहुंच गई और वे मुझे किसी राजनीतिक दल के अध्यक्ष की भांति पार्टी से निकालने पर आमादा हो गए। वैसे भी, जब छोटा अफसर बड़े अफसर पर हावी होने लगे, तो उसका तबादला करवा देना श्रेयस्कर होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि गुलगुले, बिना गुड़ के भी बनाए जा सकते हैं। ऐसे व्यक्ति गुड़ और गुलगुले वाली कहावत पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। उनका दावा है कि शक्कर के गुलगुले, न केवल स्वादिष्ट होते हैं, अपितु देखने में भी सुन्दर लगते हैं। गुलगुलों को लेकर उनका सौन्दर्यबोध उसी प्रकार जागृत हो गया है, जिस प्रकार दूरदर्शन वालों का विज्ञापनों को लेकर होता है।

गुड़ और गुलगुले का सम्बन्ध तर्क का विषय है। दर्शन शास्त्र के कई सिद्धान्तों के द्वारा इस संबंध की व्याख्या की जा सकती है। जहां धुआं है वहां आग होती है। जहां आग होती है - आवश्यक नहीं कि वहां धुआं हो। गुड़ आग है और गुलगुले धुआं। अतः आग के बिना धुएं की कल्पना नहीं की जा सकती।

इस सम्बन्ध में हमने अपने मित्र वर्मा जी से बात की तो उन्होंने गुड़ और गुलगुले के मामले में दर्शन शास्त्र के सभी तर्कों को झुठला दिया। उन्होंने कहा - "आग और धुएं वाला तर्क, गुड़ और गुलगुले पर लागू नहीं किया जा सकता।

मैंने कहा "ऐसा क्यों।" वे बोले-सीधी-सी बात तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आती। देश की आज़ादी का इतिहास पढ़े हो या नहीं।

मैंने कहा - खूब पढ़ा है। हमारे नेताओं ने जितना बन सकता था, उससे अधिक त्याग किया। अंग्रेजों ने एक माह की कैद बोली, तो उन्होंने भारत माता की जय बोली। परिणाम यह निकला कि उन्हें छह माह की अतिरिक्त जेल हो गई। उन्होंने वन्दे मातरम कहा, तो उसकी जेल अवधि साल भर के लिए उसी प्रकार बढ़ गई, जैसे सूचकांक बढ़ने पर कर्मचारियों के महंगाई भत्ते में वृद्धि हो जाती है।

वर्मा जी बोले - तुम्हें यह भी पता होना चाहिए कि आज़ादी के बाद जेल जाने वाले नेताओं को कुर्सी मिली, जिसने अधिक जेल काटी, उनको अधिक सम्माननीय पद मिला। जेल के रास्ते अंत में कुर्सी तक जा पहुंचे। अब, जरा आज के नेताओं के बारे में बताओ।

मैंने कहा - "आज के नेताओं के बारे में आप ही बताइए।"

वे बोले - "आज के नेता कुर्सी से उतर कर जेल जा रहे हैं। पुराने मिथक टूट गए हैं। कुर्सी और जेल का शाश्वत रिश्ता है। पहले जेल ले लो या कुर्सी। गरीबों के कंधे से कंधा मिलाने का नारा देने वाले नेता अमीर हो गए। अब गुड़ और गुलगुले का चक्कर तुम्हारी समझ में आया कि नहीं।" मैंने कहा - "समझ गया। जहां गुड़ नहीं है, वहां भी गुलगुले हो सकते हैं। जहां आग नहीं है वहां भी धुआं हो सकता है।"

वे बोले - गुड़ और गुलगुले की बात छोड़ो और आटे की बात करो। गुड और गुलगुले पर तभी चिंतन किया जा सकता है, जब आपके यहां आटे का घाटा न हो। चारे का घोटाला हो गया, अब आटे का घोटाला होगा। देश इसी तरह प्रगति करता रहा, तो देश में गोबर घोटाला हो जाएगा और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित

गोबर गैस प्लांट ठप हो जाएंगे। नमक घोटाला हो सकता है। सागर के किनारे रहने वाले, समुद्री पानी में दाल उबाल लेंगे, परन्तु शेष देश का क्या होगा? नमक का घोटाला हुआ तो नेता गुलगुले खाकर काम चलाएंगे - हमारी, अपनी सोचो।

मैंने कहा - ''मेरे यहां गुलगुले बने हैं। आप यदि चाहें तो खा सकते हैं।''

वर्मा जी बोले - ''आटे के बारे में चिन्तन के लिए हमारे पास काफी समय है। फिलहाल हमें गुलगुले खाने चाहिए।

पुलिस चौकी और गोंद की शीशी

मुझे एक सम्पादक के आदेश पर (आजकल अनुरोध शब्द प्रचलन में नहीं है) एक व्यंग्य तुरन्त भेजना था। मैं यात्रा प्रावास में था, और जिस होटल में ठहरा था, उसके मैनेजर ने मुझे सूचित किया कि उसके दफ़्तर में गोंद नहीं है। मैं बाहर निकला तो देखा आस-पास की दुकानें बंद थीं और मुझे अपनी रचना का लिफाफा हर हालत में प्रेषित करना था। होटल के पास पुलिस चौकी थी, जिसके भवन के नाम पर फटा तम्बू था। उसके तम्बू को देख कर यह कहा जा सकता था कि चौकी पूरी तरह सुरक्षित थी, और आम नागरिक की सुरक्षा पूरी मुस्तैदी से कर सकती थी। फिलहाल, चौकी का स्टाफ अपनी राइफलों और कागजों को आंधी-पानी से बचाने में व्यस्त था। यही कारण था, वह छोटे-मोटे अपराधों की रिपोर्ट दर्ज नहीं करता था।

हमारे देश में जिनके अपने भवन नहीं होते, वे दूसरों के लिए भवन बनाते हैं। जिनकी अपनी पार्टी स्थिर नहीं होती, वे स्थिर सरकार देने का दावा करते हैं। पुलिस चौकी महानगर में थी, अतः उसके लुटने की संभावना कम थी और अगर लुट भी जाती, तो उसके इंचार्ज दीवान की नौकरी पर कोई आंच नहीं आती। सारा दोष फटे हुए तम्बू को, उसी तरह दिया जाता जैसे त्रिशंकु सदन के लिए भारतीय मतदाताओं को दिया जाता है। जितने नेता, उतनी पार्टियां गठित करने वाले लोग, भारतीय जनता को राजनीतिक अस्थिरता का सबसे बड़ा कारण मानते हैं।

होटल के मैनेजर ने बताया कि पुलिस चौकी पास में होने से वह यात्रियों को अधिक सुविधाएं नहीं दे पाता। होटल और पुलिस चौकी में हिन्दी के तीन और छह – अर्थात छत्तीस अंकों का रिश्ता था। हालांकि होटल मैनेजर और पुलिस चौकी का इंचार्ज, दोनों ही इस कोशिश में थे कि दोनों में तैंतीस का आंकड़ा हो जाए। साप्ताहिक किस्त की राशि का निर्धारण नहीं हो पाने के कारण समझौता नहीं हो सका था। होटल का मैनेजर चौकी वालों को, और चौकी वाले होटल के मैनेजर को, शांति समझौता न हो पाने के लिए जिम्मेदार ठहरा रहे थे। समझौते के

अभाव में होटल और पुलिस चौकी, दोनों का ही धंधा मंदा चल रहा था।

मुझे मैनेजर ने समझाया कि पुलिस चौकी में गोंद की शीशी है, मांग लो। मैंने डरते हुए - डगमगाते आत्मविश्वास के साथ पुलिस चौकी में प्रवेश किया। दीवान जी फटे हुए तम्बू में टेंट हाउस की फोल्डिंग चारपाई पर (जो निःशुल्क ली गई थी) सोये पड़े थे। जून की तीव्र एवं मनमोहक धूप, उनके सोये हुए चेहरे की आभा को बढ़ा रही थी। एक कांस्टेबल अपनी राइफल को साफ कर रहा था। मैंने डरते-डरते उससे गोंद की शीशी मांगी। उसने गोंद मांगने का कारण पूछा, तो मैंने खुला लिफाफा दिखा दिया। उसने, उसे प्रेम पत्र समझ कर पढना चाहा, लेकिन वह व्यंग्य निकला। भारतीय पुलिस की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वह गोपनीय कार्यों की राज़दार होती है - खासकर प्रेम सम्बन्धी।

उसने मुझे भारी मन से गोंद की शीशी दे दी। मैंने शीशी खोलने से पहले, यह सुनिश्चित करना जरूरी समझा कि शीशी में गोंद है या नहीं। शीशी में गोंद था। मेरी नज़र जब कांस्टेबल पर पड़ी तो मैं डर से कांपने लगा। उसने रायफल की सफाई करते-करते अपना हाथ ट्रेगर पर उसी प्रकार रख दिया - जैसे समर्थन देने वाली पार्टी, अकारण ही समर्थन वापस लेने की घोषणा कर देती है। ट्रेगर पर उसके हाथ को देख कर मेरे हाथ से गोंद की शीशी छूट गई। मेज पर गोंद फैल चुका था, जिसे समेटने का प्रयास मैं करने लगा। गोंद काफी पतला था, समेटने में नहीं आ रहा था।

मैं गोंद को समेटने के प्रयास में उसी तरह जुट गया, जैसे कुछ सिरफिरे लोग, इस देश से भ्रष्टाचार को साफ करने में जुटे हुए हैं। खैर, मैंने गोंद को अपने हाल पर छोड़ दिया और लिफाफा लेकर निकलने लगा, तो कांस्टेबल ने मेरी बांह पकड़ ली। कहां जा रहे हो, गोंद के पैसे देकर जाओ। मैंने कहा - गोंद पतला था। वह बोला - गनीमत है पतला ही सही, गोंद तो था। पुलिस थानों में तो गोंद की शीशी में पानी भरकर रखते हैं और गोंद के पैसे वसूलते हैं। यदि हम प्योर गोंद रखने लगे तो कागजों में हेरा-फेरी कैसे कर पाएंगे। गवाहों के नाम कैसे बदल पाएंगे। इस देश में पतले गोंद के कारण ही लोकतंत्र कायम है। हमारा काम पुलिस चौकी की रक्षा करना है - जनता की नहीं। वह अपने भाषण को आगे बढ़ाता, उससे पहले ही मैंने दस का एक नोट बढ़ा दिया। उसने रायफल के ट्रेगर से अपना हाथ हटा लिया।

मैं उसके तर्कों से प्रभावित हो गया। मुझे लगा, हमारे यहां के राजनैतिक

निजी अनुभाग का एल.डी.सी.

हर पढ़े-लिखे व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह निजी शाखा उर्फ सेक्शन उर्फ अनुभाग के बारे में जाने। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति निजी शाखा की जानकारी नहीं रखता हो तो बाकी बचे, पढ़े-लिखे व्यक्तियों का परम कर्त्तव्य है कि वे समवेत स्वर में उच्चारें - अरे ! यह निजी अनुभाग ही नहीं जानता।

आज, पचास साल के बाद भी हमने अपनी आजादी सुरक्षित रखी है - तो इस निजी अनुभाग की बदौलत या यह कहना अधिक समीचीन होगा कि हमारी सम्पूर्ण आज़ादी निजी अनुभाग में निहित है । कुछ लोग कहते हैं कि देश की आज़ादी निजी अनुभागों में कैद हो गई है, यह कहना इसलिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि आजादी कभी कैद नहीं होती।

उचित समय पर, उचित मात्रा में उचित साधन से, उचित लोगों को निजी अनुभाग वाले, जब-जब आज़ादी की सप्लाई कर दिया करते हैं, ताकि देश की जनता को इस बात का अहसास होता रहे कि देश आज़ाद है। बिना निजी अनुभाग को समझे, हम अपनी आज़ादी को नहीं समझ सकते। यही कारण है कि देश में साक्षरता कार्यक्रम चलाया जा रहा है, जिसका उद्देश्य आम आदमी को लिखना-पढ़ना सिखाना नहीं, बल्कि निजी अनुभाग के बारे में सोच-समझ उत्पन्न करना है। आज़ादी, चाहे आर्थिक हो या राजनीतिक,सामाजिक हो या असामाजिक - निजी अनुभाग की फाइलों से ही निकलती है। ब्यूरोक्रेसी से जुड़े हुए लोग जानते हैं कि निजी अनुभाग से फाइलें निकलवाना आसान कार्य नहीं है - असामान्य तरीके से चने चबाने पड़ते हैं।

निजी अनुभाग को परिभाषित करना उतना आसान नहीं है, जितना समझा जाता है। निजी अनुभाग, जन प्रतिनिधियों तथा बड़े अफसरों के यहां पाये जाते हैं। जिस प्रकार एस.पी.जी. या कमाण्डो, प्रधानमंत्री तथा अन्य वी.आई.पी. की सुरक्षा करते हैं, उसी प्रकार निजी अनुभाग बड़े अफसरों और जन प्रतिनिधियों की सुरक्षा करते हैं। जिस प्रकार एस.पी.जी. या कमाण्डो का अविर्भाव, बढ़ते हुए

आतंकवाद के कारण हुआ, उसी प्रकार निजी अनुभागों का अविर्भाव ब्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) के आतंकवाद के कारण हुआ।

किसी दफ़्तर का निजी अनुभाग एक तरह से विदेशी नस्ल का सौम्य, संवेदनशील, अनुशासित एवं प्रबुद्ध कुत्ता है, जो साहब के साथ उनकी गाड़ी में चलता है, शैम्पू से नहाता है। इसके विपरीत शेष दफ़्तर, उस आवारा कुत्ते के समान है, जो साहब की गाड़ी के पीछे कुछ दूर तक भौंकता हुआ चलता है, बाद में पिछड़ जाता है और दौड़ना तथा भौंकना एक साथ बन्द कर देता है। यह कुत्ता एक तरह से देश को पीछे ले जा रहा है। यह कुत्ता साहब की गाड़ी के साथ यदि लगातार चलता रहता, तो आज देश जिस हाल में है, उसमें नहीं होता। गांधी जी का सुराज उर्फ रामराज्य आ गया होता।

निजी अनुभाग का एल.डी.सी. (छोटा बाबू) प्रशासन की महत्वपूर्ण कड़ी – *यह कहना भी अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा - रीढ़ की हड्डी होता है।* जन प्रतिनिधि या अफसर का प्रशासन इसी छोटे बाबू के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है - जैसे पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है।

साहित्य की भाषा में कहें, तो निजी अनुभाग का एल.डी.सी., प्रशासन का प्रस्थान बिन्दु है।

बीटिंग, ईटिंग और चीटिंग जैसे सद्गुण सभी बाबुओं में नहीं पाये जाते। यही कारण है, कुछ जन प्रतिनिधियों और अफसरों का निजी अनुभाग अपनी सम्पूर्ण क्षमता का परिचय नहीं दे पाता। कहीं-कहीं निजी अनुभाग में इन सद्गुणों से युक्त कई एल.डी.सी. होते हैं, जबकि कुछ निजी अनुभाग इस प्रकार की प्रतिभाओं से वंचित रहते हैं। देश में विकास की असमानता का यही सबसे बड़ा कारण है, अतः व्यवस्था कुछ ऐसी होनी चाहिए कि हर निजी अनुभाग में "बीटिंग", "ईटिंग" और "चीटिंग" वाले एल.डी.सी. उपलब्ध हो जाएं। आजादी के पचास वर्ष बाद, हमें इस विषय पर गम्भीर चिन्तन करना चाहिए।

निजी अनुभाग का एल.डी.सी. जन प्रतिनिधि या अफसर से विधिवत कोई अधिकार पत्र प्राप्त नहीं करता, लेकिन उसका सर्वशक्तिमान होना, एक तरह से इम्प्लाइड (स्वयंसिद्ध) होता है। वह जब बोलता है, तो ऐसा लगता है स्वयं जन-प्रतिनिधि या अफसर बोल रहा है। जब वह छोटे-बड़े अधिकारियों को डांटता है तो जन-प्रतिनिधियोंऔर अफसरों को पीछे छोड़ देता हैं। छोटे-मोटे जन-प्रतिनिधि और अफसर उसकी जी हुजूरी करते है, नखरे उठाते हैं और उसका

अभिवादन उसी प्रकार करते हैं, जैसे वे अफसर या जन प्रतिनिधि का करते हैं। बड़े अफसर और जन प्रतिनिधि अभिवादन का उत्तर देते हैं, परन्तु निजी अनुभाग का एल.डी.सी. अभिवादन पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता - जबकि वह प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए कुख्यात होता है। निजी अनुभाग के एल.डी.सी. का अपना स्टेटस होता है। वह उतने ही धुले और चमकदार कपड़े पहनता है, जितने उसका बॉस पहनता है। निजी अनुभाग में घुसने वाला बड़े से बड़ा अफसर उसके रहन-सहन से दहशत खाता है। देखने से ऐसा लगता है, उपनिदेशक एल.डी.सी. है और एल.डी.सी. - उपनिदेशक। निजी अनुभाग में एल.डी.सी. बैठा होता है, उपनिदेशक (या उससे भी बडा अधिकारी) खड़ा रहता है। उपनिदेशक जब चिरौरी करता है, तो यह एल.डी.सी. गाली-गलौच पर उतर आता है। शर्म के मारे उप निदेशक कमरे से बाहर चला जाता है। वह, बड़े साहब से शिकायत भी नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसी शिकायतों पर बड़े साहब ध्यान नहीं देते। जहां-जहां ध्यान दिया गया, वहां-वहां उपनिदेशक के खिलाफ़ ही कार्यवाही हुई, एल.डी.सी. के खिलाफ़ नहीं।

बात सही है, जब आप एक एल.डी.सी. के साथ "एडजस्ट" नहीं कर सकते, तो पूरी रेन्ज के साथ समायोजन कैसे बैठाओगे। कुल मिलाकर निजी अनुभाग का एल.डी.सी. बड़े-बड़े अफसरों के, अफसर होने पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है। यही कारण बड़े से बड़ा अधिकारी, बड़े साहब से मिलने से नहीं कतराता, परन्तु निजी अनुभाग के एल.डी.सी. से मिलते हुए, उसके हाथ-पांव फूल जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्यों को, जैसे वीटो का अधिकार प्राप्त है, वैसे ही निजी अनुभाग के समस्त छोटे बाबुओं के पास वीटो अधिकार होता है। इसी "वीटो पॉवर" के कारण निजी अनुभाग के एल.डी.सी. की अपनी पहचान बनती है। उनकी हर छोटी-बड़ी गलती, किसी दूसरे के सिर मढ़ दी जाती है। समरथ को नहि दोष गुसाईं।

पूरे दफ्तर में कोई अधिकारी या कर्मचारी ऐसा नहीं होता, जो निजी अनुभाग के एल.डी.सी. की अवज्ञा करे। उसका सन्देश या स्लिप, जहां-जहां जाती है, वहां-वहां हड़कम्प मच जाता है - जैसे शासन सचिवालय में कभी-कभी बम की अफवाहों से मचता है। जब कभी वह, अपने दफ़्तर के अन्य अनुभाग में फोन करता है, तो स्वयं अफसर को फोन अटैण्ड करना पड़ता है। यदि

अफसर सीट पर नहीं है तो शाम तक वह एल.डी.सी. उस अफसर को उपालम्भ (छोटी डांट के लिए यह शब्द सटीक है) अवश्य देगा। यह उपालम्भ इतना मीठा होता है कि कोई भी अफसर इसे ग्रहण नहीं करना चाहता, कारण वही ब्लड में शुगर का बढ़ जाना। अधिकांश छोटे-बड़े अफसर एल.डी.सी. से उम्र में बड़े होते हैं, अतः ढलती उम्र की अनेक बीमारियों से ग्रसित होते हैं।

वे अपनी कुंठा निजी अनुभाग के एल.डी.सी. पर निकालना चाहते हैं, परन्तु एल.डी.सी. अपनी कुशाग्र वृद्धि के कारण, ऐसा नहीं होने देता।

भारत सरकार, विश्व स्वास्थ्य संगठन और आम चिकित्सकों की राय है - किसी बीमारी की चिकित्सा से बचाव बेहतर है, अतः निजी अनुभाग से "व्यवहार" करते समय पर्याप्त सावधानी रखनी चाहिए। निजी अनुभाग से सम्बन्धित बीमारियों का इलाज संभव नहीं है, अतः बीमारियों से बचाव के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रसार-प्रचार की आवश्यकता है। कुछ "टिप्स" नोट किए जाएं।

निजी अनुभाग में प्रवेश करते ही प्रत्येक चपरासी से नमस्कार करें, भले ही वे नमस्कार का जवाब न दे। निजी अनुभाग में मस्तक झुकाकर (यदि मूंछें हों तो नीची कर लें) शालीनता से मुस्कुराते हुए ही प्रवेश करें। निजी अनुभाग में बड़े बाबू के चरण स्पर्श करें। (प्रगट रूप से आशीर्वाद न मिले, तो यह मानकर चलें कि बड़े बाबू ने मन ही मन आशीर्वाद दे दिया है)। एल.डी.सी. को षाष्टांग प्रणाम करें और तब तक जमीन से न उठें, जब तक वह कहे नहीं - अरे साहब क्यों शर्मिन्दा कर रहे हैं। याद रखिए, निजी अनुभाग का एल.डी.सी. अकेला कभी शर्मिन्दा नहीं होता, वह हमेशा, सामने वाले को शर्मिन्दा करके ही शर्मिन्दा होता है।

इन बातों का ध्यान रखा जाए तो निर्बाध रूप से निजी अनुभाग से अपना काम करवाया जा सकता है।

अथ श्री चमचा कथा

निर्भय हाथरसी ने लिखा है, "सुनो मेरी सरकार जमाना चमचों का।" इस समय चमचों का युग चल रहा है। पान वाले की दुकान से लेकर, राजनीतिक मंचों तक चमचे ऐसे बिखरे पड़े हैं, जैसे किसी टैंकर के सड़क पर उलट जाने से तेल बिखर जाता है। यह बिखरा हुआ तेल लोगों को फिसला देता है। चमचों का काम भी पहले लोगों को फुसलाना, फिर फिसलाना होता है। अगर कवि, साहित्यकार, संगीतकार, नेता, अभिनेता, अपराधों के प्रणेता, उठाईगीर, चोर या उचक्के चमचे नहीं रखते, तो अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

चमचा एक रोबोट होता है, जो गुरु के इशारे पर चलता है। आंधी, पानी, तूफ़ान, दंगा, फसाद, चुनाव इत्यादि इन चमचों का कुछ नहीं बिगाड़ पाते। चमचा अजर है, अमर है, वह अपराजेय है। हनुमान जी जो संजीवनी बूटी लक्ष्मण जी के लिए लाए थे - शायद उसी बूटी से मिलती-जुलती कोई बूटी खाकर ये चमचे जिन्दा हैं। किसी के चमचे को अगर आप डंडा मारते हैं, तो वह डंडा चमचे को लगने के स्थान पर आप को स्वयं लगेगा। इसी कारण कोई अधिकारी किसी चमचे को नहीं छेड़ता, बल्कि उन चमचों का भक्त हो जाता है। शायद तीतर के दो आगे तीतर, तीतर के दो पीछे तीतर - आगे तीतर पीछे तीतर, वाली पहेली इन चमचों से उत्पन्न जान पड़ती है। चमचों के पीछे चमचे ऐसे जुड़े रहते हैं जैसे रेलगाड़ी के इंजन के पीछे रेल के डिब्बे। हां, अगर कोई इंजन थोड़ा कम शक्तिशाली हुआ तो ये चमचे उसे छोड़कर दूसरी गाड़ी में जुड़ जाते हैं। इस क्रिया को चमचों की शांटिंग कहा जा सकता है। रेलगाड़ी का इंजन खराब हो सकता है, पर डिब्बे आसानी से खराब होने वाले नहीं हैं। ये डिब्बे स्टील के बने होते हैं। अतः चमचों को स्टील नाम भी दिया गया है। जैसे कोई व्यक्ति किसी के बारे में कहे कि यह स्टेनलैस स्टील है तो इसका अर्थ है कि वह मंजा हुआ चमचा है। अन्य बर्तनों की तरह चमचे को भी मांजना पड़ता है। यह क्रिया तब आवश्यक हो जाती है, जब चमचे महाराज भगौने या डेगचियां बदलने लगते हैं। सब्जी वाली डेगची से

निकला हुआ चमचा अगर खीर वाली डेगची में, बिना मंजे हुए घुस जाएगा, तो खीर का स्वाद खराब होगा ही, साथ ही चमचे को भी फेंक दिया जाएगा। कोई भी चमचा फेंका जाना पसन्द नहीं करता।

भारत में चमचों की इतनी जातियां, प्रजातियां, शाखाएं, उप-शाखाएं फैली हुई हैं कि उन्हें सूचीबद्ध करना अपने सिर के बाल गिन लेने के बराबर है।

अफसर के चमचे कई प्रकार के होते हैं। एक चमचा होता है, जो प्रतिदिन अफसर की सब्जी बाजार से उसी तरह लाता है, जैसे हम और आप मंदिर, मस्जिद या गुरुद्वारे में जाते हैं। एक दूसरा चमचा होता है जो अफ़सर के बच्चे को खिलाता है, झूले झुलाता है, यहां तक कि उसे सू-सू भी कराता है। यह चमचा अपने घर में अपने बच्चे को हाथ तक नहीं लगाता, परन्तु अफसर के बच्चे को खिलाते हुए अपनी बांहों में स्थाई दर्द उत्पन्न कर लेता है। जब भी अफसर के बच्चे को खिलाने से फुर्सत मिलती है, यह चमचा अपनी बांहों के दर्द का इलाज कराने डॉक्टर के यहां चला जाता है। डॉक्टर उसे वज़न न उठाने की सलाह देता है। चमचा चूंकि स्टील का है, इसलिए डॉक्टर की सलाह को ठुकरा देता है। जब तक वह नौकरी से रिटायर होता है, उसकी दोनों बाहें बेकार हो जाती हैं।

एक बहुत बड़े प्रशासनिक अधिकारी थे। उनके कई छोटे प्रशासनिक अधिकारी चमचे थे। चमचे अपने लाइटर से उनकी सिगरेट जला देते। "बाई द वे" अगर एक बार में लाइटर नहीं जल पाता, तो बड़े प्रशासनिक अधिकारी उस छोटे अधिकारी की कान्फिडेंशल रिपोर्ट खराब कर देते। बड़े प्रशासनिक अधिकारी की सिगरेट जब पीते-पीते छोटी सी रह जाती है, तो ये चमचे अपने हाथ से अधिकारी के मुंह की सिगरेट निकाल कर फेंकते हैं। इस तरह इन चमचों के रहते हुए अधिकारी को न सिगरेट जलानी पड़ती है, न बुझानी पड़ती है। बस वह तो सिगरेट के कश खींचता है। चमचे का बस चलता, तो वह खुद सिगरेट के कश खींच कर अधिकारी के गले में पहुंचा देता, परन्तु विज्ञान की प्रगति धीमी गति से होने के कारण, तथा चमचों की प्रगति तेजी से होने केकारण, यह अब तक संभव नहीं हो सका है। एक अन्य दफ़्तर के कर्मचारी को अन्य कर्मचारी साहब का चमचा कहते थे। सच्चाई यह थी कि वह कर्मचारी न तो अधिकारी के आगे पीछे घूमता था, न सब्जी लाता था, न बच्चे पालता था और न उनके चैम्बर में कभी जाता था। हां, कभी-कभी उस कर्मचारी की अनुपस्थिति में उसके घर के सामने अधिकारी की गाड़ी जरूर खड़ी पाई जाती थी। अब इतने छोटे से कारण के लिए

उस कर्मचारी को अधिकारी का चमचा कहना कहां तक उचित था, यह पाठक ही सोचें। कई बार अधिकारी की चमचागिरी के स्थान पर लोग उनकी पत्नी या उनकी खूबसूरत लेडी स्टेनो की चमचागिरी करके सफलता प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे चमचे दफ़्तर में अधिकारियों को आंखें दिखाते हैं और दफ्तर से छूटते ही उनकी पत्नी की सेवा कर आते हैं। जैसे ही अधिकारी अपने घर पहुंचता है, पत्नी उसे डांटती है कि तुमने अमुक कर्मचारी को तंग कर रखा है। अफसर की एक नहीं चलती और उसे हर हालत में उस कर्मचारी से डरकर रहना पड़ता है।

कुछ चमचे बड़े बलिदानी होते हैं। वे बाजार से सस्ती ग्रामीण वस्तुएं खरीदते हैं और अपने बॉस को भेंट कर देते हैं। वे कहते हैं कि हमारे गांव में बहुत पैदा होती है, आपके लिए भी लेकर आया हूं। बाजार से कुछ देशी घी, कुछ डालडा घी खरीद कर मिला कर अधिकारी के घर पहुंचा देते हैं और कहते हैं गांव में अपनी बीस भैंसें हैं, यह घी एकदम शुद्ध है। अधिकारी उसकी बातें सुनकर मान लेता है कि घी शुद्ध होता है और उस कर्मचारी के यहां बीस भैंसें अवश्य होंगी।

यदि अधिकारी कवि हो तो चमचा-कर्म आसान हो जाता है, बस अधिकारी से उसकी कविता सुनने की फ़रमाइश करते रहो। अधिकारी खुश बना रहता है तथा दफ़्तर का काम भी, जहां का तहां बना रहता है। ऐसे दफ़्तर में बॉस और चमचे देश की प्रगति में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं।

वास्तव में देखा जाए तो चमचों को राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है, फिर चाहे वह कर्मचारी संघों की राजनीति हो या राज्य की राजधानी की। राजनीति के चमचे स्वामिभक्त तो होते ही हैं। वे टिकट इत्यादि प्राप्त करने के लिए अपने को मिटा देते हैं। इसे चमचा शास्त्र में अद्वैतवाद कहा जाता है। चमचा और उसके गुरु दोनों एकाकार हो जाते हैं। उनकी सम्पत्ति एक हो जाती है। उनका घर-बार अर्थात परिवार एक हो जाता है। ऐसे चमचे कभी-कभी अपने गुरु से बहुत आगे निकल जाते हैं और उनकी पत्नी गुरु के साथ पीछे रह जाती है।

कुछ इस प्रकार के चमचे भी होते हैं, जो दूरदर्शन और रेडियो पर जल्दी-जल्दी बुलाए जाते हैं। ऐसे चमचों के गुणों के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि मुझे कुछ मालूम ही नहीं है। यदि मुझे कुछ मालूम होता तो पाठकों को बताने की बजाय मैं खुद वैसा ही चमचा न बन जाता। "चमचा शास्त्र" इतना बड़ा है कि उसके बारे में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है और देर तक दिन में दीपक जलाए रखना फिजूल खर्ची के सिवाय और कुछ नहीं है।

पार्टी में लोकतंत्र है

जिस तरह मंचीय कवियों के बारे में कहा जाता है कि कविता के मूल्यों में गिरावट हो रही है, उसी तरह राजनैतिक क्षेत्रों में भी कहा जाता है कि राजनीति के मूल्यों में गिरावट हो रही है। बाजार में हर वस्तु के दाम बढ़ रहे हैं, ऐसे में राजनीति के गिरते मूल्यों का स्वागत होना चाहिए था, परन्तु हो उल्टा रहा है। बुद्धिजीवी और सामान्य नागरिक इन गिरते हुए मूल्यों को लेकर परेशान हैं। महंगाई का रोना रोने वालों को कौन समझाए कि सस्ती राजनीति के कारण ही, न जाने कितने गुंडों का पुनर्वास हुआ है। हम भारतवासी अपराध समाप्त करने के समर्थक हैं, न कि अपराधी।

अब ये भी कोई बात हुई - आटा, दाल की महंगाई का आप विरोध करें और जब साहित्य, नैतिकता और मनुष्य के प्राणों की बात हो तो कहें - इन्हें महंगा होना चाहिए। अर्थात भारतवासियों के पास गर्व करने लायक कोई चीज़ ही मत रहने दो। आज हम गर्व से कह सकते हैं कि हमारे देश में मनुष्य की जान बहुत सस्ती है। हम गर्व से कह सकते हैं कि हमारे यहां कोई भी एम.एल.ए. या एम.पी. हो सकता है - उसके लिए आदर्शों, सिद्धान्तों और कुर्बानियों की आवश्यकता नहीं होती। ये ऐतिहासिक बातें हैं, इनका वर्तमान राजनीति से कोई सरोकार नहीं है।

जिन्हें कवि सम्मेलनों के मंचों पर सफलता नहीं मिल पाती, जो साहित्यकार किसी खेमे से नहीं जुड़ पाते, जिन्हें नौकरी नहीं मिल पाती, जिनकी बेटियां जला दी जाती हैं - वे राजनीति के मूल्यों के ह्रास पर चिंतित हैं। लेकिन जो तिकड़मी हैं, उनसे पूछो राजनीति कितनी महंगी है। राजनीति में अक्ल को उतना स्थान नहीं दिया गया, जितना भैंस को। प्रदेश अध्यक्ष को दो भैंसें दे दो - आपका टिकट पक्का। भैंस की यह विशेषता होती है कि वह स्वयं को पार्टी अध्यक्ष के घर रह जाती है और अपने मालिक के घर पार्टी का टिकट भिजवा देती है। पार्टी अध्यक्ष के यहां भैंस को अधिक पौष्टिक आहार प्राप्त होता है। कुछ चमचे ऐसे होते हैं, जो

पार्टी अध्यक्ष की भैंस को तीन बार नहलाते हैं। वे भैंस की पूंछ पकड़ कर राजनीति की वैतरणी पार कर लेते हैं।

राजनीति में किसी पार्टी की सदस्यता पैसे देकर मिलती है। यह मूल्य अल्प होते हुए भी महत्वपूर्ण होता है। राजनीति में किसी वस्तु की फ्री सप्लाई नहीं होती। हर पद के मनोनयन की फीस निश्चित है। उधर चुनाव टिकट प्राप्त करने वाला उम्मीदवार चुनाव जीतने तक हर चीज की कीमत अदा करता है और उधर बुद्धिजीवी कहते हैं - राजनीति सस्ती हो गई।

चुनाव जीतने के बाद दिए गए मूल्यों के अनुपात में पद आवंटित कर दिए जाते हैं। दी गई कीमत से हल्के दर्जे का पद मिलता है, तो उम्मीदवार उसे लौटा देता है और घोषणा करता है - पार्टी में लोकतंत्र नहीं है। वांछित पद नहीं, तो पार्टी में लोकतंत्र नहीं। आपके लोगों को टिकट नहीं मिला तो घोषणा कर दो - पार्टी में लोकतंत्र नहीं है। पुलिस आपके गुंडों को नहीं छोड़ती तो पार्टी में लोकतंत्र नहीं है। सी.बी.आई. आपके यहां छापा मारती है तो पार्टी में लोकतंत्र नहीं है। अपने दल के विरोधी यदि आपके कारनामों का पर्दाफाश करें तो उसके लिए आप अपनी पार्टी को ही उत्तरदायी मानो और घोषणा करो - पार्टी में लोकतंत्र नहीं है।

हाईकमान आपके इस वाक्य को गंभीरता से लेगा। वह यह पता लगाएगा कि पार्टी और सरकार में शामिल कितने लोग, आपके साथ इस वाक्य को बोल रहे हैं। अगर बोलने वाले अधिक हैं, तो हाईकमान एक डिनर का आयोजन करेगा। जो लोग राजनीति को सस्ती कहते हैं, वे डिनर का बिल देख लें। डिनर में हाईकमान "पार्टी में लोकतंत्र नहीं" का वाक्य उछालने वाले नेता की कीमत का आकलन करेगा। यदि विद्रोही नेता का मूल्य अधिक हुआ, तो डिनर में ही उसे महत्वपूर्ण पद देने की घोषणा कर दी जाएगी।

दूसरे दिन वही नेता पत्रकार सम्मेलन में घोषणा करेगा - पार्टी में पूरी तरह लोकतंत्र कायम है। हमने अपने मतभेद डिनर और लंच में सुलझा लिए हैं। कतिपय मीडिया के लोगों ने गलतफहमी पैदा कर दी थी। मैंने इस आशय का वक्तव्य कभी नहीं दिया कि पार्टी में लोकतंत्र नहीं है।

उधर पत्रकार सोचेंगे कि सिर्फ चौबीस घंटे में लोकतंत्र कैसे कायम हो गया। एक पत्रकार पार्टी अध्यक्ष को फोन करेगा - ऐसा कैसे हुआ। अध्यक्ष कहेगा - विद्रोही नेता को डिनर में परोसा गया सलाद पसंद आ गया। हमारी पार्टी के लंच और डिनर में सलाद बड़ी मेहनत से तैयार किया जाता है। सलाद खाते ही

विद्रोह के स्वर दब जाते हैं। अध्यक्ष उस पत्रकार को अपने स्तर पर कुछ लाभ पहुंचा देता है।

दूसरे दिन उसी पत्रकार के नाम से विशेष रपट छपेगी – पार्टी अध्यक्ष की 'पार्टी पर पूरी पकड़ है। वे सभी गुटों को साथ लेकर चल रहे हैं। पार्टी में पूरी तरह लोकतंत्र कायम है। सरकार और संगठन में किसी प्रकार की खींचतान नहीं है। इसी प्रकार के समाचार अन्य अखबारों में छपेंगे।

समर्थन दिया - दिया, न दिया

हमारे मित्र ने घोषणा कर दी, - तुम्हें समर्थन नहीं देंगे। यह मित्र मेरे साथ दफ़्तर में अधिकारी हैं और जब दफ्तर का कोई बाबू मुझे आंखें दिखाने लगता है, तब यह मेरे समर्थन में खड़ा हो जाता है। एक तरह से दफ्तर में मेरा "बैक ग्राउण्ड" है यह मित्र। मैंने कहा - जरा धीरे बोलो, किसी बाबू ने सुन लिया, तो हम दोनों को एक-एक कर पछाड़ देगा। दफ़्तर में काम का विभाजन कुछ इस प्रकार हुआ कि जो विभाग उसके पास थे, वे मुझे मिल गए और मेरे विभाग उसके पास आ गए। मैंने उसके विभाग संभालते ही, उसके द्वारा किए गए अनेक घोटाले पकड़े और फाइल चला दी। नौबत जब चार्जशीट तक पहुंची, तो उसने समर्थन वापिस ले लिया।

हमारे दफ़्तर का यह हाल है कि हर अधिकारी एक-दूसरे के समर्थन पर टिका है। अधीनस्थ कर्मचारियों की जब इच्छा होती है, तब किसी अधिकारी को घेर लेते हैं। अधिकारी वास्तव में अल्प मत सत्ताधारी दल के समान होते हैं और समर्थन करने वाले अधिकारियों के बलबूते पर नौकरी करते रहते हैं। समर्थन देने वाले अधिकारी राष्ट्रीय स्तर का "ब्लैकमेल" करते हैं। वे, उस समय चोट करते हैं जब लोहा तपकर लाल हो जाता है। जब पूरा देश ही बैशाखी पर टिका हो, तो दफ़्तर के एक अदना से अधिकारी को बैशाखी की कमी थोड़े ही है न। हमारे आस-पास इतनी बैशाखियां हैं कि समस्या उत्पन्न हो जाती है - किसका सहारा लें। हमारे दफ़्तर के अधिकारी किसी तथाकथित अछूत राजनैतिक दल के सदस्य तो हैं नहीं, जो उन्हें बैशाखी न मिले। समस्या यह है, किस पर भरोसा किया जाए। धूम्रपान के लिए, जब कोई अधिकारी किसी बैशाखी पर पूरा वजन डाल देता है, तो वह बैशाखी उसे तत्काल गिरा देती है। अधिकारी सिगरेट तो तत्काल फेंक देता है, परन्तु उसे संभलने में वक्त लग जाता है। सीने में सिगरेट का धुआं लिए हुए वह ज़मीन पर आ जाता है। समर्थन के सहारे जरा सा सुस्ताने लगे, तो उन्होंने उसी प्रकार समर्थन वापिस ले लिया, जैसे कोई प्रेमिका किसी प्रेमी से अपने

समस्त प्रेम पत्र वापिस कर नाता तोड़ लेती है। यहां तक होता, तो भी ठीक था, परन्तु वह प्रेमिका भविष्य में प्रेम के इज़हार पर चप्पल मारने की धमकी दे देती है। धोखा देने की भी हद होती है।

धोखा देने का स्तर, हमारे दफ़्तर में राष्ट्रीय स्तर से भी अधिक गिर गया है। मैं तो धोखेबाज राजनीतिज्ञों को यही सलाह दूंगा - हमारे दफ़्तर में आकर धोखेबाजों से ट्रेनिंग ले लो - सत्ता प्राप्त करने में काम आएगी। हमारे यहां के अनेक शरीफ लोग चलते आदमी को टंगड़ी लगा कर गिरा देते हैं। राजनीतिज्ञों के अलावा मैं साहित्यकारों को भी आमंत्रण दे रहा हूं - हमारे यहां आकर टंगड़ी लगा कर प्रतिभाओं को गिराये जाने की ट्रेनिंग ले जाओ। हमारा दावा है - बिना प्रतिभा के स्थापित हो जाओगे। पुरस्कार वगैरह प्राप्त करोगे, सो अलग।

स्वर्गीय कवि बलबीर सिंह रंग ने अपने गीतों से समर्थन देने या न देने की प्रेरणा दी है। उनकी एक प्रसिद्ध ग़ज़ल की पंक्तियां हैं - आग पानी हुई, हुई , न हुई। मेहरबानी हुई, हुई - न हुई। आप हैं, हम हैं गनीमत है, रितु सुहानी हुई, हुई - न हुई। इसी तर्ज़ पर राजनीतिक "समर्थन दिया - दिया, न दिया" वाली ग़ज़ल पढ़ रहे हैं। बहर, काफिया वगैरह का ज्ञान इन राजनीतिज्ञों को नहीं है, लेकिन ग़ज़ल पढ़ रहे हैं। अप्रासंगिक मिसरों की वजह से श्रोता बोर हो रहे हैं।

हमारे दफ़्तर की बैशाखियों से पूछो कि तुमने हमें क्यों गिराया तो वे कहेंगी - यों ही जरा लंतरानी के मूड में थे। कमाल है भाई! आप मज़ाक कर रहे थे, इधर हमारे कपड़े गंदे हो गए। पांव में मोच आ गई और दर्शकों की हंसी का पात्र बन गए। इतना सब होने के बाद, उसी बैशाखी ने फिर समर्थन कर दिया।

काफी निराश होकर हमने अपने पुराने शर्मा जी मित्र से कहा - किसी का भरोसा नहीं है, किसका समर्थन लें। मित्र ने सुझाव दिया - दफ़्तर की चार दीवारी ज्यादा ऊंची नहीं है, उसी पर टिक जाओ। गिरने-गिराने का भय समाप्त हो जाएगा। मैंने कहा चारदीवारी के सहारे टिकने का मतलब, सत्ता से दूर होना है। दफ़्तर में जितनी भी सत्ता है, वह कुर्सियों, फाइलों और बाबुओं के पास है। चारदीवारी से टिकने का मतलब है राजनीति में "बीजेपी" हो जाना। हम तो हमेशा सत्ता के सुख के आसपास रहे हैं - चारदीवारी वाली बात हमारे गले नहीं उतरती। मित्र बोले - फिर कपड़ों की चिंता मत करो। घुटने पर चोट लगने दो। एक गिराता है, तो दूसरे का दामन थाम लो - प्रैक्टिकल बनो। तालमेल बेहतर होना चाहिए, जो समर्थन दे रहा है उसी के खिलाफ जांच करवाओगे तो वही हश्र

होगा, जो केन्द्र में सत्ताधारी मोर्चा का हुआ है। जिस प्रकार मज़ा किसी की बपौती नहीं है - कब आए कब चला जाए, उसी प्रकार समर्थन भी तुम्हारी बपौती नहीं है। साधिकार समर्थन मांग रहे हो - कितने नादान हो तुम।

मेरी आंखें खुल गई हैं। मैंने समर्थन देने वाले अधिकारी को विश्वास दिलाया है, हमारे सम्बन्ध हमेशा मधुर रहेंगे। तुम नेतृत्व बदलने की बात करते हो, हम पूरा दफ़्तर ही बदलवा देंगे, लेकिन बेवफाई मत करना। हम आपको वफा करने पर तनहाई नहीं देंगे। फिल्म निकाह का गाना - हम वफा करके भी तनहा रह गए... आपके लिए थोड़े ही न लिखा गया था। फिल्मी बातों का वास्तविक दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं है। समर्थन के लिए आभार। देश की प्रगति हो या न हो, हम दोनों की ज़रूर होगी।

मेरे पास हैं राष्ट्रीय समस्याओं के हल

देश के अभूतपूर्व और भूतपूर्व नेताओं, पेट की गैस से त्रस्त बुद्धिजीवियों एवं वोट डालने के लिए जीवित बची जनता से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर ब्लड प्रेशर, कुंठा या हीन भावना कतई न पालें। मेरे पास इन ज्वलन्त समस्याओं के कारगर हल हैं।

वे लोग, जो इन ज्वलंत समस्याओं के कारण ही वी.आई.पी. बने हैं, मेरे लेख पढ़कर निराश होने में जल्दबाजी न करें। मेरे पेटेण्ट हल से उनके हितों पर किसी प्रकार की आंच नहीं आएगी। धर्म के कट्टर ठेकेदारों से भी मैं निवेदन करूंगा कि वे मेरी गुस्ताखी को अन्यथा न लें और जैसा वे कर रहे हैं - भगवान या खुदा या रब के नाम (जो लागू न हो काट दें) पर करते रहें। धर्म के शर्बत में राजनीति की सेक्रीन अवश्य मिलाएं, क्योंकि देश में मधुमेह के रोगियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है, जो कि परम हर्ष की बात है। हम शक्कर के मामले में कई समृद्ध देशों से काफी आगे हैं। कुछ ग़रीब लोग बिना शक्कर परीक्षण के ही शक्कर खाना छोड़ चुके हैं, जिससे हमारे देश में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता का पता चलता है। गैट समझौते के बाद जनसंख्या की समस्या धीरे-धीरे समाप्त हो गई है।

बेकार के शब्दाडम्बर से मुद्दे पर आना अच्छा माना जाता है। खासकर देश की समस्याओं के मामले में। इसलिए मैं भारतीय पुलिस की भांति, तुरन्त हरकत में आकर, ज्वलंत समस्याओं के आदर्श हल बताना प्रारंभ करता हूं। मेरे इन मेडिकल नुस्ख़ों में किसी भी तरह का परहेज नहीं रखा जाता, इसलिए ये नुस्खे हर मरीज को पसन्द आयेंगे। मैं हकीम वैद्यों की तरह खिचड़ी दलिया में विश्वास नहीं रखता। मेरे नुस्खे अपनाओ और गरिष्ठ भोजन उसी प्रकार खाते रहो, जैसे नेतागण मद्यनिषेध पर भाषण देकर देर रात को पी लेते हैं। ऐसा करते समय, वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसी तारीख़ में पीने का कार्यक्रम न चले, जिसमें उन्होंने भाषण दिया था। देर रात्रि में पीने का अर्थ, बारह बजे के बाद पीना होता है। मेरे नुस्ख़ों की एक झलक भारत सरकार के कार्यक्रमों में देख सकते हैं।

कश्मीर समस्या हो या असम की, तराई में आतंकवाद हो या मंदिर विवाद हो, हर समस्या के समाधान के लिए पूरे देश में एक निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित की जानी चाहिए। राज्य सरकारें अपने शिक्षा विभाग को कुछ विशेष बजट आवंटित करके स्कूलों में ये प्रतियोगिताएं करवा सकती हैं। स्कूल के छात्र बड़े होनहार होते हैं, और अक्सर अपने स्कूल में पढ़ने वाली छात्राओं के बारे में निबंध लिखने का कार्य परोपकार की भावना से, स्कूल की दीवारों पर करते हैं। इससे जहां एक ओर स्टेशनरी का खर्च बच जाता है, वहीं ऐसे निबन्ध विद्यालय में प्रवेश करने वाले हर व्यक्ति को पढ़ने को मिल जाते हैं और वह उस स्कूल में घुसने पर गौरवान्वित हो सकता है। देश की समस्याओं पर निबंध लिखने वालों को पुरस्कृत भी करना चाहिए। निबंध के लिए नए विषय मिल जाने के कारण छात्र एवं शिक्षक राहत महसूस करेंगे। उन्हें अब निबंध के लिए "महान नेता", "राष्ट्रीय त्यौहार" आदि पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

कन्याकुमारी के छात्रों को पता चलना चाहिए कि कश्मीर समस्या क्या है। जंगजू क्या होते हैं तथा किस प्रकार से छापामार लड़ाई लड़ते हैं। निबन्ध लिखने से रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। आतंकवादियों के पास भी रचनात्मक शक्ति होती है, जिससे वे नए इतिहास भूगोल इत्यादि का निर्माण करते रहते हैं।

यदि निबंध वाला नुस्खा भी फायदा नहीं पहुंचा सके तो व्याख्यान वाला नुस्खा आजमाना चाहिए। इस नुस्खे के अंतर्गत कालेजों, विश्वविद्यालयों आदि उच्च शिक्षण संस्थाओं में व्याख्यानमालाएं आयोजित की जाती हैं। बड़े-बड़े व्याख्याता अपने व्याख्यान के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि समस्या क्या है, और उसका समाधान कैसे हो सकता है। जिस प्रकार संसद में अलग-अलग सदस्य, किसी समस्या पर भाषण देकर उसे संसद में हल कर लेते हैं, उसी प्रकार ये व्याख्यान देने वाले समस्याओं को व्याख्यानमाला द्वारा तुरन्त हल कर देंगे। ये व्याख्यान देने वाले लोग कहेंगे कि "हमें ऐसा करना चाहिए या वैसा करना होगा।"

व्याख्यान से भी राष्ट्रीय समस्याएं हल न हों, तो हमें बच्चों की चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन करना चाहिए। बच्चे स्वयं शांति के प्रतीक होते हैं। इस चित्रकला प्रतियोगिता का अखबारों, टी.वी. आदि पर व्यापक प्रचार करना चाहिए। ऐसा हो जाने पर देश में भाईचारा बढ़ेगा तथा कुछ पशुओं को, चारे के

अभाव में भाईचारा खाने को मिलेगा।

कुछ लोग भाईचारा को भुनाने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग यह नहीं जानते कि भाईचारा चारा होता है, जो भुनने से पहले ही जल जाता है। हमारे यहां जितना भी भाईचारा है वह सूखा हुआ है, अतः "हाइली इनफ्लेमेबल" है, जिसने भी इसे भुनाने की कोशिश की वह स्वयं जल गया। चित्रकला प्रतियोगिता से भी फायदा न पहुंचे, तो शहरों में दौड़ों का आयोजन कियां जाना चाहिए। हर समस्या के लिए एक अलग दौड़। गांव के लोग तो दौड़ते रहते हैं, पर शहरों के लोग दौड़ के लिए तरसते हैं। इस प्रकार एक साथ दो फायदे होंगे। एक तो शहर के लोगों का स्वास्थ्य सुधर जाएगा, दूसरे राष्ट्रीय समस्या का हल हो जाएगा। इससे राष्ट्र विरोधी लोगों को सबक़ मिल जाएगा कि बाकी का भारत ग्लूकोज पीकर कितना संगठित हो गया है। यह भी पता चल जाएगा कि शहर के किन-किन लोगों को दमा इत्यादि की बीमारी है।

राष्ट्रीय समस्या हल हो या न हो, शहर के लोगों की बीमारी का डाइग्नोसिस अवश्य हो जाएगा। कई प्रेमिकाएं अपने प्रेमियों की दौड़ - "परफोरमेन्स" देख कर दल-बदलू नेताओं का आचरण कर सकती हैं।

दौड़ों के आयोजन से भी समस्या का समाधान न हो, तो साइकिल यात्राओं का आयोजन किया जा सकता है। पैदल दौड़ने की अपेक्षा साइकिल द्वारा अधिक तेज़ी से समस्याओं की तह तक पहुंचा जा सकता है।

यों तो कार द्वारा भी समस्याओं तक शीघ्र पहुंचा जा सकता है, किन्तु ऐसा करने से गरीबी की रेखा के नीचे जी रहे लोग बुरा मान जाएंगे। कुछ गरीब लोग साइकिल को भी लग्ज़री का सामान समझते हैं। ये लोग बीसवीं सदी खत्म होते-होते खत्म हो जाने वाले हैं। इक्कीसवीं सदी तक हम लोग कार वाले हो जाएंगे। हमारी सरकारें गरीबी दूर करने के लिए जो करती रही हैं, इक्कीसवीं सदी तक उनके परिणाम मिलने शुरू हो जाएंगे।

साइकिल यात्राओं से भी समस्या हल न हो, तो महिला रैलियों का आयोजन किया जाए। समस्या से सम्बन्धित स्लोगन लिखे हुए बैनर लेकर सुन्दर महिलाएं सड़कों पर रैली करने आ जाएं तो समस्या सुलझ जाएगी। नारियों को पूजनीय मानने वाले देश में महिलाओं के लिए श्रद्धा का स्टाक चुका नहीं है। सम्बन्धित लोग यह जानकर आत्मसमर्पण कर देंगे कि महिलाओं ने देश के लिए पसीने के साथ-साथ मैकअप को भी बहा दिया है।

किसी महिला द्वारा अपना मेकअप देश के लिए बहा देना खून बहाने के समान ही होता है। प्रसाधन सामग्री का महंगापन और बहते हुए मेकअप का भद्दापन, इससे बड़ा रिस्क देश के लिए और कोई नहीं उठा सकता। बहते हुए मेकअप से महिला की उम्र का पता चल जाने का खतरा बना रहता है। इतने बड़े-बड़े खतरे उठाकर जब महिलाएं राष्ट्रीय समस्या का हल ढूंढेंगी, तो तुरन्त मिल जाएगा, जैसे आर्किमिडीज को अपना सिद्धान्त मिल गया था।

महिला रैलियों से भी यदि समस्या हल न हो, तो सबसे अच्छा उपाय है कि हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाएं। समस्या चुटकियों में हल हो जाएगी।

जब असम की समस्या बढ़ गई तो एक नेताजी ने घोषणा कर दी कि वे समस्या हल करेंगे। हमने पूछा - कैसे करेंगे? वे एक हाथ पर दूसरा हाथ रख कर बैठ गए और बोले - ऐसे। मैंने कहा - बैठे-बैठे कैसे समस्या हल हो जाएगी।

उन्होंने कहा - यह भारत है, यहां पर समस्या को वर्षों तक लटकने दो और अपने हाथ पर हाथ धर लो। समस्या अपने आप हल हो जाएगी। "लिंगर आन एण्ड हाथ अपोन हाथ - समस्याएं साफ" यह नारा नेताजी ने दिया था। नारा आज तक फेल नहीं हुआ। हां, कई सरकारें फेल हो गईं।

उनकी कृपा से असम, पंजाब, तमिल-कर्नाटक आदि की समस्याएं हल हो गईं। अब नेताजी फिर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, कश्मीर समस्या के लिए। वह दिन दूर नहीं, जब हाथ पर हाथ धरने से सारी समस्याएं हल हो जाएंगी।

हमारे देश में पारिवारिक समस्याओं के लिए सबसे अच्छा उपाय है हाथ पर हाथ धरे बैठना। घर में गैस खत्म हो जाए, तो आप हाथ पर हाथ धर लो, गैस आ जाएगी। हां, यदि पत्नी प्रवचन दे रही हो, तो हाथ पर हाथ रखने के स्थान पर कानों पर हाथ रखना पड़ेगा तथा मुंह पर टेप लगाना पड़ेगा।

हाथ पर हाथ रखने से भी कोई जटिल समस्या हल न हो तो देश के कर्णधारों से निवेदन है कि मेरे पास आ जाएं। तब तक मध्यावधि चुनाव आ जाएंगे और उस समय का हल किसी न किसी पार्टी के घोषणा-पत्र में अवश्य छपा होगा। मैं अपनी डायरी में उसे नोट कर लूंगा और किसी देशभक्त के चिंतित होने पर उसे चिन्तामुक्त कर दूंगा।

चुनाव के बाद होली

चुनाव और होली, दोनों ही एक जैसे त्यौहार हैं। दोनों ही राष्ट्रीय जीवन में उल्लास भरकर जनता में हलचल पैदा करते हैं। चुनाव चाहे आम हों या पंजाब के खास, मध्यावधि चुनाव हों या उप चुनाव, पूरे देश को झकझोर कर रख देते हैं। किसी किसी को माया और राम दोनों मिल जाते हैं और किसी को न माया मिलती है न राम।

उप चुनावों में जहां एक तरफ देश के छंटे-छंटाए बूथ कैप्चर सक्रिय हो जाते हैं, वहीं विभिन्न पार्टियों के चोटी के नेता सक्रिय हो जाते हैं। सरकारी कर्मचारी से लेकर हमारे गांव के अंतिम मतदाता इतवारी तक, चुनाव को अपने-अपने तरीके से लेते हैं। मैंने बचपन से इतवारी का वोट कई बार डाला है। इतवारी को जता भी दिया, लेकिन इतवारी ने न तो चुनाव आयोग को शिकायत ही की और न टेण्डर वोट डालने गए। इस देश में इतवारियों की संख्या करोड़ों में है, जिनका फर्जी वोट मेरे जैसे मतदाता डालते रहे हैं, डालते रहेंगे।

इतवारी को न चुनावों से कोई फर्क पड़ता है और न होली से। दोनों त्यौहारों के लिए कानून व्यवस्था बनानी पड़ती है - दोनों में दंगा होने की संभावना बनी रहती है। ब्रज की लट्ठमार होली में नारियां अपनी नाजुक कलाइयों से पुरुषों को लट्ठ मारती हैं, और पुरुष बिना बुरा माने पिटते रहते हैं। उधर उप चुनाव में मतदाता मतपत्र से ऐसी मार लगाता है कि अनेक उम्मीदवार राजनीति से ही संन्यास ले लेते हैं। होली के मज़ाक को लोग भूल जाते हैं, परन्तु चुनाव में किए गए मज़ाक से पूरा देश प्रभावित होता है। कई पीढ़ियों तक दुश्मनी की शानदार परम्परा कायम हो जाती है। होली, हर वर्ष आती है - चुनावों का कोई भरोसा नहीं कब आ जाए, इसलिए हर समय कीचड़, कागज तथा घटिया रंगों का स्टाक अपने पास रखना पड़ता है। अगले चुनाव में सूद समेत असल का चुकारा कर दिया जाता है। होली और चुनाव, दोनों में अश्लीलता की छूट होती है।

नेता मतदाता से, मतदाता मत पेटियों से, पुलिस कानून व्यवस्था से, पत्रकार

पत्रकारिता से, विधायक व्यवस्थापिका से, मंत्री जी कार्यपालिका से ऐसे भद्दे और अश्लील मज़ाक करते हैं कि पशुओं को भी शर्म आ जाए, परन्तु राजनीतिज्ञों को कोई फर्क़ नहीं पड़ता।

होली जब खेली जाती है, तब कोई ख़ास मज़ा नहीं आता, लेकिन चुनाव जब खेले जाते हैं, तो जमकर आनन्द आता है। मामला आर-पार हो जाता है। इधर तमंचा चला, उधर कार्यकर्ता ढेर हो गया। इधर राइफल चली, उधर लाशें बिछ गईं। हर तरफ लाल खून - ये हुई न मर्दों वाली बात। इस पार्टी के पोस्टर जलाए, उस पार्टी की जीप जला दी। होली से पहले ही, होली जला दी गई।

चुनावी होली में होलिका जिंदा रह जाती है, प्रहलाद जल जाता है। अबकी बार, होली है या दीवाली पता ही नहीं चल पा रहा। इधर चुनाव समाप्त हुए, उधर बोफोर्स तोप ने अपना बहुप्रतीक्षित गोला दाग दिया। पटाखे-बम तो दीवाली पर चलते थे, - होली में कैसे चले, समझना मुश्किल है। जब से बोफोर्स आई, तभी से गोला फटने की उम्मीद थी। हर बार बिना फटे, गोला बैरल से बाहर आता रहा है। इस बार गोला फटा है, तो पब्लिक सीरियसली नहीं ले रही।

हमारे देश की यह विशेषता है, बात जब हवा में की जाती है, तब हंगामा अधिक होता है - वास्तविकता पर अधिक चिल्लपों मचाने की परम्परा नहीं है। जैन बन्धुओं की डायरी के "एब्रीविएशन" (संक्षिप्त नाम) कमाल कर गए, बोफोर्स मामले में बाकायदा, सप्रमाण किया गया भुगतान कमाल क्यों नहीं कर पा रहा है - हमें होली के अवसर पर यह सोचना होगा। अब तो उप चुनाव भी हो गए, क्यों डर रहे हो, उठाओ कीचड़, मल दो उनके मुंह पर और कहो - होली है।

कांग्रेस ने होली से पहले ही अपने चेहरे रंग लिए - गहरे काले रंग से। अब कीचड़ लेकर आगे बढ़ रहे हैं, दूसरी पार्टियों को रंगने के लिए। भाजपा सामने पड़ती है, लेकिन वह सरसों का साग खाकर और अपने मुंह पर सरसों का तेल मलकर सामने आती है। तेल पुते चेहरे पर कीचड़ असर नहीं दिखाता। चुनावों ने भी होली के लिए भाजपा को पर्याप्त तेल उपलब्ध करवाया है - पूरे शरीर पर मलो। ख़ैर, कांग्रेस तो कीचड़ मलेगी ही, फिर भले ही उसका अपना ही चेहरा क्यों न हो।

चुनाव के बाद, नेताओं के लिए होली मनाना उसी तरह कठिन कार्य माना जाता है, जैसे गरीब आदमी का रोटी कमाना। सरकार जब होली मनाती है, तो विपक्षी दल कहते हैं - ठहरो, होली बाद में खेलना पहले इस्तीफा लिख दो,

दफ्तर में होली

सरकारी दफ़्तरों में वर्ष भर तक होली चलती रहती है। कभी पुरानी फाइलें जलाई जाती हैं, कभी किसी अधिकारी के ऊपर कोई कर्मचारी कीचड उछालता है तो कभी, किसी कर्मचारी का मुंह काला हो जाता है। हमारा देश घोटाला प्रधान देश है, जिसकी जैसी हैसियत है, वह, वैसा ही घोटाला कर देता है। जिन बाबुओं के पास स्टेशनरी का चार्ज है, वे स्टेशनरी में, जिनके पास पदस्थापन का चार्ज है, वे पदस्थापन में तथा जिनके पास कोई चार्ज नहीं है, वे हवा में हवाला करते रहते हैं। "घोटाला" और "कीचड़ उछाला" एक-दूसरे से उसी तरह जुड़े रहते हैं, जैसे कोई मिली-जुली सरकार किसी संचालन समिति से जुड़ी रहती है। अतः वर्ष भर तक होली का कार्यक्रम चलता रहता है। कर्मचारी, अधिकारी को छकाने के लिए पुड़िया में काला रंग अपने साथ रखते हैं, मौका मिलते ही मुंह काला कर देते हैं।

इस बार होली आते ही हमारे दफ़्तर के सबसे बड़े अधिकारी ने "यू नोट" अर्थात अनौपचारिक टिप्पणी जारी की - हर सेक्शन में होली की छुट्टी से पूर्व होली मिलन कार्यक्रम आयोजित किया जाए। जिस तरह होली परम्परा के अनुसार रंगों और प्रेम का त्यौहार है, उसी तरह कर्मचारियों द्वारा अधिकारियों को टंगड़ी लगाने की समृद्ध परम्परा है। यू नोट पढ़ने के बाद अधिकारियों के चेहरे मुर्झा गए और कर्मचारियों के चेहरों पर युवावस्था के लक्षण प्रगट हो गए। योजनाएं बनाई जाने लगीं - क्या-क्या करना है। सूचियों में अबीर-गुलाल से लेकर वार्निश के रंग, कीचड़ तथा भांग आदि ने स्थान प्राप्त कर लिया। पूरा दफ़्तर होलीमय हो गया। जिस दिन होली मिलन कार्यक्रम होना था, उससे चार दिन पहले यू नोट आ गया था, अतः चार दिनों तक दफ़्तर में कोई कामकाज नहीं हुआ। अधिकारियों के लिए होली मिलन चुनाव की ड्यूटी के समान जोखिम भरा कार्य था, जबकि शेष कर्मचारी इसे पिकनिक समझ रहे थे। सामान की सूची के साथ यह सूची भी बनाई गई कि किस अधिकारी ने किस कर्मचारी को लताड़ा था तथा उसके मिलने वाले

का काम नहीं किया। कौनसा अधिकारी, कमीशन वगैरह बिना कर्मचारी को खिलाए स्वयं खा गया। यहीं मानदण्ड कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों पर भी लागू हो रहे थे। एक-दूसरे को नीचा दिखाने की योजनाएं बनाई जा रही थीं। जिन अधिकारियों को आशंका थी कि उन्हें कीचड़ में घसीटा जा सकता है, वे छुट्टी पर चले गए।

हमारे सेक्शन में भी तैयारियां जोरों पर की जा रही थी। मैंने अपने सहयोगियों तथा मातहतों के प्रति होली मिलन से पहले ही नम्रता दिखानी शुरू कर दी। मैंने दफ़्तर में रोज चाय पिलाने का कार्यक्रम उसी प्रकार प्रारंभ कर दिया, जैसे गर्मियों में सेवाभावी लोग, ठंडे जल की प्याऊ खुलवा देते हैं। साथी कर्मचारी भली-भांति समझ गए कि मेरे धार्मिक होने के पीछे होली मिलन कार्यक्रम है। वे जानते थे कि सावधानी अनेक दुर्घटनाओं को टालती है। कुछ लोग ऐसे भी थे जो हमारी चाय पीकर हमारा मुंह काला करने पर आमादा थे। वे मेरी उदारता को वैसे ही ले रहे थे, जैसे हड़ताल से पूर्व सरकार द्वारा महंगाई भत्ता बढ़ाए जाने को कर्मचारी लेते हैं। वस्तुतः, मेरी उदारता का सबसे बड़ा कारण - मेरी छुट्टियों का बाकी न होना था। पता नहीं कौनसा कर्मचारी मेरी छोटी-सी बात पर खार खाए बैठा हो और होली मिलन के बहाने वार्निश मल दे। पिछली बार इसी दफ्तर में कुछ अधिकारियों की पीठ पर फेविकोल से कुछ आप्त वाक्य चिपका दिए थे, जो घर जाकर छुटाने पर छूट तो गए, लेकिन अधिकारी के शरीर पर अपना स्थाई प्रभाव छोड़ गए थे।

होली मिलन वाले दिन सुबह से ही होली शुरू हो गई थी। जो कर्मचारी अपने सम्पूर्ण सेवाकाल में कभी समय पर दफ्तर नहीं आए वे भी ठीक दस बजे रंग-गुलाल के साथ हाजिर थे। उनकी इस कर्त्तव्य परायणता को देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सरकारी दफ़्तरों में यदि वर्ष भर तक होली मिलन चलता रहे तो और कोई काम हो या न हो, कर्मचारियों में समय पालन की आदत पड़ जाएगी। हमारे कुछ मित्रों का विचार था - वर्ष भर तक होली मिलन चलाओ, फिर अगले वर्ष से सरकारी काम निबटाओ, तो उपस्थिति और समय पालन में काफी सुधार हो सकता है।

हमारे सेक्शन में भी कर्मचारी एक-दूसरे को होली की बधाइयां दे रहे थे। रंग मल रहे थे और आशा के विपरीत कीचड़ या कालिख दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रही थी। शर्मा और वर्मा जिनके बीच पूरे वर्ष तक शीत युद्ध चलता रहा था, एक-दूसरे के गले मिल रहे थे। न वार्निश का प्रयोग हो रहा था और न फेविकोल

था। कुल मिलाकर बड़ा सौहार्दपूर्ण वातावरण बन गया था। दूसरे सेक्शनों में होली अपने परम्परागत तरीके के साथ गाली-गलौच वाले गायन के साथ खेली जा रही थी। हमारे ग्रुप अधिकारी बहुत खुश थे, क्योंकि इस ग्रुप में होली मिलन किसी साहित्यिक समारोह की भांति हो रहा था, बल्कि उससे भी अच्छा आयोजन हो रहा था। साहित्यिक समारोह में थोड़ी बहुत टांग खिंचाई अवश्य होती है, परन्तु यहां का वातावरण विश्व शांति की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता था।

हमने अपने साथी अधिकारी से कहा - ये क्या हो रहा है। वे बोले - ये शांति जो तुम देख रहे हो वह, तूफान आने से पहले की शांति है।

तभी एक सहायक कर्मचारी चाय से भरे हुए प्याले रख गया। साथ में मिठाई भी थी, उसने बताया - यह टी पार्टी बड़े बाबू द्वारा दी जा रही है। हमारा माथा ठनका। हमें इतने वर्ष यहां आए हुए हो गए थे, परन्तु याद नहीं आ रहा था, कभी बड़े बाबू ने चाय पिलाई हो। सचिव, वैद गुर तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।

बड़े अनमने मन से, डरते चाय पी, मिठाई नहीं खाई। स्वयं बड़े बाबू हमारे पास आए और मिठाई खाने का आग्रह करते रहे। हमने बीमारी का बहाना बनाकर उन्हें टरका दिया।

थोड़ी देर बाद तूफान का आभास हो गया। मिठाई और चाय में पर्याप्त मात्रा में भांग मिलाई गई थी। पूरा सेक्शन भांग की तरंग में झूम रहा था। ग्रुप अधिकारी का बुरा हाल था। आशा के विपरीत होली मिलन वाले दिन सरकारी कामकाज चल निकला। फाइलों पर टिप्पणियां लिखी जाने लगीं। भांग की झोंक में उन मामलों की भी स्वीकृति दे दी गई, जिनके लिए हमारे ग्रुप अधिकारी सक्षम नहीं थे।

फाइलें जब निदेशक जी के पास पहुंची, तो उन्होंने ग्रुप अधिकारियों के साथ अनुभाग अधिकारियो को भी बुला लिया। भांग की तरंग में न जाने उनसे क्या-क्या बात हुई। उसी दिन ग्रुप अधिकारी को, अनुभाग अधिकारियों के साथ चार्जशीट पकड़ा दी गई। भांग का नशा अपने आप उतर गया। बडे बाबू की खोज की गई, ताकि उन्हें चार्जशीट दी जा सके, परन्तु वे उपलब्ध नहीं हो सके। इस तरह होली मिलन का कार्यक्रम सम्पन्न हो गया।

जापानी ''पति'' और भारतीय ''पति''

भारतवासियों को स्वर्गीय शरद जोशी का आभारी होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने पति नामक जीव पर एक लेख लिखा और उसे पूरे देश के कवि सम्मेलनों में सुनाया। उस लेख को पढ़-सुन कर भारतवासियों को पता चला कि पति नाम का प्राणी कितना निरीह होता है। अभी तक इस देश में गधे को ही निरीह समझा जाता था, लेकिन अब समय आ गया है कि हम यह तय कर लें कौन अधिक निरीह है - गधा या भारतीय पति। इस मुद्दे पर न्यूनतम साझा कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है या फिर राष्ट्रीय बहस की जा सकती है। केन्द्र सरकार चाहे तो सर्वेक्षण करवाकर, पतियों के लिए आर्थिक पैकेज की घोषणा कर सकती है। पतियों की व्यथा सुने बिना, सामाजिक न्याय नहीं किया जा सकता।

जापान की एक संस्था, जिसका हिन्दी रूपान्तरण नाम ''मनोविनोद'' है ने, जापान के पतियों का बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया है। इस संस्था ने स्वर्गीय शरद जोशी की तरह जापान के पतियों पर अनेक सर्वेक्षण किए।

''मनोविनोद'' के एक सर्वेक्षण के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चालीस वर्षीय जापानी पति बेहद निकम्मे होते हैं। वे चालीस वर्ष की उम्र पार करते ही उसी प्रकार आलसी हो जाते हैं जैसे, कुछ भारतीय हनुमान चालीसा पढ़कर हो जाते हैं। ये पाखण्डी हनुमान चालीसा पढ़ने के अलावा अन्य कोई कार्य नहीं करते। जापान में चालीस वर्षीय पति पूरी तरह अपनी पत्नी पर आश्रित होता है। उसे, अपने मौजे पहिनने में पत्नी की मदद लेनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में पत्नी के सामने तलाक़ लेने के अलावा कोई विकल्प बचता ही नहीं।

भारत में ताउम्र पति पत्नी पर आश्रित रहते हैं, फिर भी तलाक नहीं होते तो इसका एकमात्र कारण है - पति अपनी पत्नी को मरते दम तक चौका चूल्हा में मदद देता है। किसी-किसी घर में तो पति अकेला ही चौका-चूल्हा कर लेता है और उसकी पत्नी पड़ोसियों के यहां गप्प गोष्ठी, निन्दा-गोष्ठी तथा किटी पार्टी में व्यस्त रहती हैं। इन कार्यों की महत्ता को ध्यान में रख कर ही पति घरेलू कार्य कर

लेते हैं। हमारे देश में जितने भी पति हैं, घरेलू कार्य में दक्ष हैं। इस प्रकार भारत के पति लम्बी आयु को प्राप्त होते हैं और उनकी पत्नी मोटापे को।

टोक्यो की "मनोविनोद" संस्था ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि जापान में पचास-पचपन के बाद पुरुष पुनः स्फूर्तवान होने लगते हैं, जैसे हमारे देश में अधिक आयु प्राप्त करते ही लेखक सम्माननीय हो जाते हैं। जापान के पति पचास-पचपन के आस-पास बचपना दिखाने लगते हैं और ऐसी-ऐसी हरकतें करते हैं, जिसके कारण हमारे देश में जूते इत्यादि चल जाते हैं। वे इस उम्र में मौजा पहिनने के लिए पत्नी पर आश्रित न रहकर, पत्नी को भी अपने हाथ से मौजा पहिना देते हैं। ऐसा होने पर पत्नी बहुत खुश हो जाती है और उसकी दृष्टि में पति सम्माननीय हो जाता है। इधर इण्डिया में अगर कोई पति इस उम्र में अपनी पत्नी को मौजा पहिनाने की कोशिश करे तो पत्नी उसे झिड़क देगी - कुछ तो शर्म करो इस उम्र में ये हरकत। मुझे नहीं चाहिए पहनने मोजे-ओजे। पोते-पोती क्या कहेंगे। तुम्हारी तो अक्ल ही सठिया गई है। जाओ, थोड़ा सा हनुमान चालीसा पढ़ लो या गीता पढ़ लो। पति बेचारा, अपमानित महसूस करेगा और सोचेगा - काश! अपना भी जन्म जापान में हुआ होता।

"मनोविनोद" के सर्वेक्षण के अनुसार जापान में तलाकशुदा कम उम्र की महिलाएं पचास वर्ष से अधिक उम्र के पुरुषों के साथ पुनर्विवाह कर लेती हैं, ताकि उन्हें पति की शक्ल में अच्छा-खासा नौकर मिल सके।

यह वैश्विक सत्य है कि जो पति जितना अधिक नौकर का रोल करेगा, उसका दाम्पत्य जीवन उतना ही सफल होगा। नौकर-कर्म में लापरवाही बरतने वाला तलाक को प्राप्त हो जाता है।

यह खोज का विषय है कि पचास-पचपन की आयु में जापानी पुरुष पुनः स्फूर्तवान क्यों हो जाते हैं। सबसे बड़ा कारण चालीस की उम्र में तलाक लेने का हो सकता है। यह भी वैश्विकीय सत्य है कि तलाक लेते ही पति की सेहत में अभूतपूर्व सुधार होता है। वह बड़ी खुशी के साथ अपने समस्त कार्य निपटा लेता है। खाना बनाना हो तो एक का ही बनाना पड़ेगा। कपड़े धोने हो, तो एक ही व्यक्ति अर्थात स्वयं के ही धोने होंगे। सबसे बड़ी चीज है आज़ादी, जो उसे तलाक के कारण प्राप्त हो जाती है।

पचास तक पहुंचते-पहुंचते वह फिर से जवान होने लगता है।

इधर हमारे देश में पचास की आयु के पुरुष लकड़ी का सहारा लेकर चलने

लगते हैं। जो लकड़ी का सहारा नहीं लेते, वह राजनीति का सहारा लेते हैं। राजनीति का सहारा लेते ही हमारे यहां उम्र ठहर जाती है, जैसे लाल वत्ती होने पर चौराहे पर ट्रैफिक ठहर जाता है। जो लोग राजनीति में पड़ जाते हैं वे लम्बी उम्र और स्वर्गवासी होने के हकदार हो जाते हैं। जिनके पास राजनीति नहीं होती वे जल्दी मर जाते हैं और नरक की आवादी बढ़ाते हैं। स्वर्गवासी होने के जितने चान्स भारतीय राजनीति में है, उतने अन्यत्र नहीं है।

चालीस की उम्र का पुरुष जापान में एक समस्या है, तो हमारे यहां बिना राजनीति में टांग रखे, जीने वाला पुरुष गम्भीर समस्या है। चालीस वर्षीय भारतीय पुरुष को किसी न किसी राजनीतिक दल में घुसपैठ करके अपना स्थान सुरक्षित कर लेना चाहिए। हमारे यहां की राजनीति में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जब दरी वाला या माइक वाला या कार्यालय की सफाई करने वाला उच्च पद को प्राप्त हो गया। हमारे यहां चालीसा पुरुष वार्ड मैम्बर से लेकर एम.एल.ए. तक का चुनाव लड़ सकता है।

ईश्वर पर विश्वास हो और बूथ कैप्चरिंग में पूरी आस्था हो, तो वह अस्सी की उम्र तक एक-दो चुनाव जीत भी सकता है। हां, अगर वह चालीस वर्ष की वय में ही चुनाव जीत जाए, तो उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

राजनीति में पंडितों का मानना है कि भारतीय पुरुष चालीस वर्ष तक ही गृहस्थी में रम सकता है, इसके बाद उसे संन्यास ले लेना चाहिए। राजनीति में जाए बिना संन्यासीकरण की क्रिया पूरी नहीं होती, और लाभवाला मिले बिना, वानप्रस्थ आश्रम नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त एक नई धारणा है, वानप्रस्थ आश्रम में तभी प्रवेश मिल सकता है, जब राजनीति की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ व्यक्ति मंत्री अथवा समकक्ष पद को हथिया ले।

मंत्री पद को प्राप्त करने के लिए दरी को उठाकर झाड़ना आवश्यक है, ताकि दरी पर विराजमान व्यक्ति लुढ़क जाए और आप उसका स्थान ग्रहण कर सकें। कब दल-बदल करना है, कब सामने वाली पार्टी से समर्थन वापस लेना है, और कब जन आन्दोलन करना है, इनका सही-सही निर्धारण ही आपको परलोक में स्वर्ग की व्यवस्था करवा सकता है।

जापान के पतियों को हमारे यहां की तरह दरी झाड़ने की सुविधा उपलब्ध नहीं है, अतः वहां संन्यास और वानप्रस्थ आश्रमों में पुरुष प्रवेश नहीं कर पाते। ताउम्र गृहस्थ होने के कारण वे दीर्घायु तो हो सकते हैं, परन्तु मोक्ष के द्वार उनके

लिए नहीं खुल सकते।

भारतीय रेल, जापानी रेल से जरूर पीछे है, लेकिन भारतीय पति जापानी पतियों से इक्कीस ही बैठेंगे, उन्नीस नहीं।

बैंगन पर ललित निबन्ध

डॉ. त्यागी ने "संसार सार" अखबार का स्वास्थ्य कॉलम हथिया रखा था। वैसे इस कॉलम के अतिरिक्त उनका अखबार में कोई उपयोग नहीं था। प्रबन्धक ने उन्हें उनके नाम के आगे डॉक्टर होने के कारण स्वास्थ्य कॉलम में चिपका रखा था। डॉ. त्यागी एम.बी.बी.एस. या मेडिकल की किसी अन्य डिग्री धारक नहीं थे, बल्कि उन्होंने हिन्दी में एक घिसे-पिटे विषय पर शोध प्रबन्ध नकल किया, जो गाइड के शक्तिशाली होने के कारण विशेषज्ञों ने पास कर दिया था। पीएच.डी. के अलावा एम.ए. तक डॉ. त्यागी कभी एक वर्ष में पास नहीं हो पाए थे। यही कारण था, जब उन्होंने अपनी योग्यता पीएच.डी. पूरी की तो उनकी आयु चालीस वर्ष की हो चुकी थी।

आजकल वे सब्जियों के ऊपर अग्रलेख लिखने में जुटे थे। भिण्डी से लेकर टिण्डे तक पर वे लिख चुके थे। गाजर से लेकर मूली तक में उन्होंने औषधियों का भण्डार खोज निकाला था। पत्तागोभी और फूलगोभी पर उन्होंने तुलनात्मक लेख ऐसा लिखा, जैसे कोई मतदाता बी.जे.पी. और संयुक्त मोर्चा के घोषणा पत्र को साथ-साथ पढ़ रहा हो। लेख पढ़कर पाठक वैसे ही ठगे जाते थे, जैसे चुनाव के बाद मतदाता ठगे जाते हैं।

उनके महत्वपूर्ण लेखों के कारण डॉ. त्यागी को साधुवाद देते हुए पाठकों के अनेक पत्र संसार सार में छप चुके थे। इन पत्रों के छपने के कारण प्रबन्ध सम्पादक ने उन्हें अपना कॉलम बड़ा करने का हुक्म दिया था। इस हुक्म ने उन्हें उलझन में डाल दिया।

डॉ. त्यागी की पाठकों पर पूरी पकड़ थी। उनके अनुसार इस संसार में ऐसी कोई भी सब्जी नहीं थी, जो रोगों के लिए लाभदायक न हो। प्रबन्धक डॉ. त्यागी को हटाना चाहते थे, परन्तु उनके कॉलम की लोकप्रियता को देखते हुए उन्हें हटा नहीं पा रहे थे।

प्रबन्धकों को यह पता था कि डॉ. त्यागी फुटपाथ पर मिलने वाली पुस्तक

"सब्जियों के हजार गुण" से अपना कॉलम भरा करते हैं। वे तीन रुपए कीमत की इस पुस्तक से प्रतिमाह छह हजार रुपए कमा रहे थे। सम्पादक ने एक बार उन्हें कहा कि वे बैंगन पर ऐसा ललित निबन्ध लिखें, जिसे पढ़कर पाठक कांप उठें और सब्जी मंडी में बैंगन की कालाबाजारी होने लगे।

बैंगन का नाम सुनते ही डॉ. त्यागी स्वयं कांप उठे। वे बैंगन नहीं खाते थे और उनकी माताजी ने बीस साल पहले बैंगन खाना छोड़ रखा था। तभी से उनके परिवार में बैंगन निषिद्ध सब्जी थी। फिर भी, उन्होंने बैंगन पर कलम चलाई और बैंगन को सहज वस्तु की संज्ञा देते हुए लिखा - जो वस्तु सहज प्राप्त हो जाती है, वह विश्व कल्याणकारी होती है (जैसे कि वे स्वयं थे)। और जो वस्तु विश्व कल्याणकारी होती है, उस वस्तु को निरर्थक या हानिकारक क़दापि नहीं कहा जा सकता।

अभी वे बैंगन में प्रोटीन तत्व के बारे में लिख ही रहे थे कि पता चला कम्प्यूटर ऑपरेटर शर्मा पेट के दर्द से तड़फ रहा है और अखबार की गाड़ी उसे लेकर अस्पताल गई है। त्यागी को सम्पादक जी ने बुलवाया -

"तुमने बैंगन के ऊपर लेख छाप दिया लगता है।"

"नहीं सर वह तो मैं आज लिखने जा रहा हूं।"

"फिर शर्मा आज बैंगन की सब्जी खाकर कैसे आ गया।"

"मुझे नहीं मालूम सर। मैंने तो अभी तक लेख की पांडुलिपि भी तैयार नहीं की है।"

सम्पादक जी ने सिगार सुलगा लिया और शर्मा के स्थान पर दूसरे ऑपरेटर से काम करने के लिए कहा। डॉ. त्यागी को रुका हुआ देख वे दहाड़े।

"तुम अब तक यहां क्या कर रहे हो।"

"सर मैं यह सोच रहा हूं, बैंगन पर ललित निबन्ध न ही लिखा जाए तो ठीक होगा।"

"तुम्हें संसार सार के नियमों का पता नहीं है। यहां जो निर्णय एक बार ले लिया गया वह बदला नहीं जाता। जाओ और समय से पहले ही दो कॉलम का लेख लिख दो।"

"एक प्राब्लेम है सर।"

"बोलो।"

"मैं बैंगन खाता नहीं।"

"ओह : तो यह बात है। यह प्राब्लेम नहीं प्लस पाइंट है - इस लेख के लिए। जब तुम्हें उसके दोष मालूम ही नहीं तो गुणों की ही चर्चा करोगे। पाठकों और सब्जी विक्रेताओं को इससे शीघ्र लाभ होने वाला है।"

"और सुनो डॉ. त्यागी आज घर जाते समय सब्जी मण्डी होकर चले जाना। सब्जी विक्रेताओं से कहना कल से बैंगन का स्टॉक दुगुना कर दें। कल "संसार सार" में बैंगन पर ललित निबन्ध छपने जा रहा है।"

"वो तो ठीक है सर, परन्तु ललित निबन्ध में बैंगन की बुराइयां भी तो शामिल हो सकती हैं। ललित का मतलब ..... सम्पादक ने डॉ. त्यागी की बात बीच में ही काटी।

"आप ठहरे निरे हिन्दी के डॉक्टर। ललित माने सुन्दर होता है और जो चीज सुन्दर होती है उसमें कोई बुराई नहीं हो सकती। देखो डॉ. त्यागी तुम्हारे अपने चेहरे पर चेचक के दाग कितने भद्दे दिखते हैं। उधर टाइपिस्ट रीता को देखो, स्वयं ललित निबन्ध लगती है। बैंगन आपसे तो सुन्दर ही होता है।"

डॉ. त्यागी सम्पादक की बात से तिलमिला गए और निबन्ध लिखने बैठ गए। "बैंगन का रंग बस बैंगनी होता है। जैसे कभी-कभी गहरी घटाएं आसमान में छा जाती हैं, वैसे ही खेतों में बैंगन के फल छा जाते हैं। बैंगन रूपवान होने के साथ ही गुणवान भी होता है, लेकिन इसके गुणों का फायदा इसके विशेष उपयोग पर निर्भर होता है। यदि आपने इसे उबाल कर खाया तो यह वायु करेगा। दूसरी तरफ भुना हुआ बैंगन, औषधि का कार्य करता है। भुना हुआ बैंगन रामबाण औषधि होता है। पेशाब में जलन, कान में दर्द, सिरदर्द आदि के लिए बहुत उपयोगी होता है। यह विटामिन ए. डी. और टी. से युक्त होता है।"

इसी तरह के वाक्यों से डॉ. त्यागी ने लेख लिख मारा। सम्पादक के दृष्टिपथ से जब बैंगन वाला लेख गुजरा, तो वे सनका खा गए। उन्होंने अभी तक 'टी' नाम के विटामिन के बारे में नहीं सुना था। उनकी जहां तक जानकारी थी लेख में वर्णित अन्य विटामिन भी बैंगन में नहीं पाए जाते हैं। त्यागी ने बैंगन पर ललित निबन्ध में यह भी लिख दिया था कि यह सब्जी जुझारू व्यक्तियों को बहुत प्रिय है। यही कारण है वोटों के राजनीतिज्ञ इसी का सेवन करते हैं। कुछ पत्रकारों की पहली पसन्द बैंगन है। सम्पादक ने डॉ. त्यागी को तलब किया। ये झूठा सच्चा का लिख मारा। ये विटामिन 'टी' क्या होता है। त्यागीजी ने सहजता से जवाब दिया विटामिन 'टी' माने टेस्ट।

लिखेगा तो देखेंगे

पिछले दिनों, हमारे एक मित्र ने हमें एक उपन्यास पढ़ने के लिए दिया, जिसका शीर्षक था - "खिलेगा तो देखेंगे।" उन्होंने उपन्यास देते हुए मुझे बताया कि वे भी ऐसा ही उपन्यास रचने जा रहे हैं, जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर होगा। मैंने उनसे कहा आप इसी उपन्यास की तर्ज पर, अपने उपन्यास का नाम रखें - "लिखेगा तो देखेंगे।" वे बुरा मान गए। वे लेखन पर बात करते समय बुरा मान जाते हैं, क्योंकि वे साहित्यकार हैं। वे मेरे अभिन्न मित्र हैं और लिखने पर आमादा हैं। वे कभी भी लिख सकते हैं। उन्हें फुर्सत नहीं मिलती। फुर्सत मिलते ही वे लिखेंगे, यों कहिए - वे घात लगाकर बैठे हुए हैं और लेखन पर हमला करने वाले हैं।

जब तक वे कुछ लिखते नहीं, तभी तक स्वयंभू लेखक अपने को महान सिद्ध करते रहें, लेकिन जिस क्षण उनका लेखन प्रारम्भ हो जाएगा, अन्य लेखकों की महानता स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। वे जन्म से महान हैं, उनकी सोच महान है, उनकी कलम महान है। बस, इस महानता को कागज़ पर उतारने की देर है।

वे मेरे साथ ही, सरकारी सेवा में आए थे और कर्मचारी संघ के अनेक "पम्पलेटों" का उन्होंने सम्पादन किया तथा प्रूफ पढ़े। वे, इसी आधार पर महान साहित्यकार बन गए थे, फिर भी उनकी महानता देखिए कि वे अभी तक, अपने को साहित्यकार नहीं मानते। वे कुछ शाश्वत लिख कर ही साहित्य में स्थापित होना चाहते हैं, परन्तु उनके परिवार के सदस्य इस कार्य में रोड़ा अटकाते आए हैं।

एक शाम, वे बड़े संजीदा थे। उन्होंने कहा था - आज रात को कुछ गंभीर लिखना है। उन्होंने गृहस्थी के समस्त आवश्यक कार्य स्थगित कर कागज कलम पकड़ ली थी। वे नीले कलम को सफेद पर चलाने ही वाले थे कि उनकी पत्नी द्वारा एक कन्या को जन्म देने का समाचार प्राप्त हो गया। पत्नी द्वारा शाश्वत रचना के जन्म के बाद, उन्होंने उस दिन लेखन कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

एक बार जब उनका मूड बना, तो उनके पुत्र ने हिन्दी साहित्य के कुछ प्रश्न पूछ लिए। पहले ही प्रश्न में वे अटक गए। मूड ऑफ हो गया और लेखन का जोश जाता रहा। दूसरे दिन, जोश फिर लौट आया और वे कुछ न कुछ लिखने के लिए कटिबद्ध दिखाई पड़े। समस्या समय मिलने की बनी रही।

आखिर एक दिन उन्हें समय मिल ही गया। उस दिन, उन्होंने गोभी की सब्जी खाई थी, जिसमें भरपूर गरम मसाला पड़ा था, जैसे हिन्दी फिल्मों में डाला जाता है। जिस क्षण उन्होंने कलम पकड़ी उसी क्षण गरम मसाले की डकार आ गई। उन्होंने डेढ़ पेज का एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था "गरम मसाले का गोभी में प्रयोग।" संयोग से वह लेख दो राज्य स्तरीय और एक लोकल दैनिक में छप गया। मित्र को बधाइयां मिलने लगीं और साहित्यिक मित्रों के सुझाव भी मिले - हल्दी, अजवाइन और सौंफ पर लेख लिखने के सम्बन्ध में। साहित्यकारों ने यह भी कहा कि वे सभी विषय हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठा दिलवा सकते हैं, लेकिन वे नहीं माने। उनका प्रण था कि वे शाश्वत साहित्य ही रचेंगे। जब तक, साहित्यिक विषय उनके ज़ेहन में नहीं आएंगे, तब तक वे, काग़ज पर कलम नहीं चलाएंगे।

एक दिन अनेक साहित्यिक विषय उनके ज़ेहन में उतरे, लेकिन उस समय वे बाजार में थे। वे तेज चाल से घर पहुंचे, परन्तु निगोड़ी कलम नहीं मिली। काग़ज से काग़ज पर तो नहीं लिखा जा सकता, अतः कुशल दायी के अभाव में, शाश्वत रचना जन्म नहीं ले पाई। सुबह, जब उन्हें कलम मिली, तो साहित्यिक विचार उनके दिमाग से उसी प्रकार निकल चुके थे, जैसे बहुमत सिद्ध न हो पाने के कारण शपथ ले चुकी किसी सरकार को त्याग पत्र देना पड़ता है। उन्होंने कलम की साहित्य में उपयोगिता विषय पर एक निबन्ध लिखा। उन्होंने, साहित्य में काग़ज की उपयोगिता विषय पर एक शोध पत्र तैयार किया है, जिसे किसी साहित्यिक गोष्ठी में पढ़ने वाले हैं। अभी तक उन्हें, ऐसी गोष्ठी का आमंत्रण नहीं मिल पाया है।

काग़ज, कलम और गरम मसाले पर लेख लिखने के बाद उन्होंने एक लेख लिखा, जो साहित्य में चुप्पी तोड़ने वाला साबित हुआ। इस लेख का शीर्षक था - 'रजाई की धुलाई कैसे करें।' इस अनूठे लेख में उन्होंने, रूई सहित रजाई धोने के अभिनव तरीके बताए थे। इस लेख को लगभग सभी समाचार पत्रों ने छापा और अच्छा पारिश्रमिक दिया। गुलेरी जी "उसने कहा था" के कारण प्रसिद्ध हो गए थे, और हमारे यह मित्र "रजाई की धुलाई" से प्रसिद्ध होने जा रहे

थे। मैंने उनको सलाह दी - अब समय आ गया है कि आप गद्दे की धुलाई पर एक लेख, लिख मारें। वे नाराज हो गए और मुझे समझाने लगे, जिस तरह रजाई की धुलाई होती है; उसी तरह गद्दे को धोये जा सकते हैं। एक बार फिर, उनके लेखन में व्यवधान आ गया।

उन्होंने अनेक, नामी गिरामी लेखकों को पत्र लिखे, जिनमें साहित्य न रच पाने की वेदना को प्रगट किया है। इस प्रकार उनके वे पत्र, हिन्दी साहित्य में "न लिखने का कारण" के लिए मील का पत्थर साबित होंगे।

मैंने उन्हें समझाया - जितना आपने लिखा है, उतना एक महान लेखक ही लिख सकता है - अब आप महान हो गए हो, लिखना बन्द कर दो। वे मेरे तर्कों से सहमत नहीं थे और कुछ न कुछ शाश्वत रचने की लालसा पाले हुए थे।

एक दिन पता चला, किसी प्रकाशक ने उन्हें एक पुस्तक लिखने हेतु अनुबन्धित किया है। मैं बहुत खुश हुआ, देर आयद दुरुस्त आयद वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। मैंने काफी हाउस में घोषणा कर दी - हमारे मित्र श्रेष्ठ साहित्य की रचना में मिशनरी भाव से जुटे हैं। अग्रिम रॉयल्टी ले ली है - हमारी तुम्हारी तरह प्रकाशकों के घर चक्कर काटने नहीं गए, बल्कि प्रकाशक उनके घर तक चलकर आए हैं। नए लेखकों में उन्होंने यही कीर्तिमान स्थापित किया है।

कई दिनों तक जब वे कहीं दिखे नहीं तो हम आश्वस्त हुए, अबकी बार वे साहित्य जगत में झंडे गाड़कर ही रहेंगे। वे एकान्तवास में थे और पुस्तक लिखने में तल्लीन उन्हें डिस्टर्ब करना उचित नहीं लगा।

लेखन कार्य से अवकाश पाते ही वे मेरे घर आए और रहस्योद्घाटन किया - तीन दिन में पुस्तक लिख दी। मैं आश्चर्यचकित था, इतना "डाइनमिक" लेखक अभी तक हिन्दी साहित्य में नहीं हुआ। मैं उन्हें सलाह देने जा रहा था कि अपना नाम गिनीज बुक में दर्ज करवा लें, तभी उन्होंने कहा - वह पुस्तक जानते हो क्या थी कक्षा सात की गणित की कुंजी। उन्होंने यह भी बताया कि प्रकाशक उनसे और दूसरी कुंजियां लिखवाना चाहता था, परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इस कुंजी के लिखने के उन्हें कुल पांच सौ रुपए एक मुश्त मिले हैं। मैंने कहा और लिख दो, हर्ज क्या है, रुपए मिलते ही हैं। उन्होंने मेरी बात नहीं मानी और घोषणा कर दी - शाश्वत साहित्य ही रचेंगे।

अब हाल यह है, कोई मित्र उनके लेखन की चर्चा करता है तो मुंह से निकलता है - लिखेगा तो देखेंगे।

होली पर कवि सम्मेलन

इस समय, रामलीला मैदान के पूर्वी भाग में खड़े हुए, वीर रस के कवि के मानिंद, कृशकाय पेड़ पर बैठा हुआ, मैं होली के कवि सम्मेलन का हाल सुना रहा हूं। एक तरफ़ तो मुझे होली के कवि सम्मेलन की कामेन्ट्री करनी है, दूसरी ओर इस बात पर भी ध्यान देना है कि कवियों को हूट करने की तरह कोई श्रोता इस पेड़ को काटकर किसी होली के ढेर पर न रख दे। आप कहेंगे ऐसी चिन्ता नहीं करनी चाहिए, मैं कहता हूं - मैं भक्त प्रहलाद नहीं हूं। इस समय मंच पर जो कवि आसीन हैं उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं। आज दिन के समय जब मैं कामेन्ट्री के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश कर रहा था, तब ये कवि, इसी मैदान में पत्थर और ईंटों के टुकड़े एकत्रित कर रहे थे। यहां तक कि इन्होंने गाय का गोबर भी बीन लिया था। होली के कवि सम्मेलन के श्रोताओं का कोई भरोसा नहीं होता। अतः कवियों की दूरदर्शिता की मुझे दाद देनी पड़ेगी। ईंट और पत्थरों से रहित, यह रामलीला मैदान रोशनी से जगमगाकर कवियों का स्वागत कर रहा है।

मंच पर बैठे हुए कवियों के गले में गाजर-मूली की मालाएं सुशोभित हो रही हैं। वे भांगयुक्त चाय का सेवन कर रहे हैं और इसके बाद भांग युक्त पान के बीड़े इनकी सेवा में प्रस्तुत किए जाएंगे।

प्रत्येक कवि श्रोताओं की ओर सी.बी.आई. वाली दृष्टि से देख रहा है, परन्तु उन्हें अभी तक किसी भी "बोफोर्स" मामले के कागजात नहीं मिल पाए हैं। इन सभी कवियों का रंग उड़ा हुआ है, जबकि कवि सम्मेलन रंगों के त्यौहार के उपलक्ष्य में ही आयोजित किया गया है। गाजर-मूली की मालाओं के कारण प्रत्येक कवि की गर्दन झुकी जा रही है। परन्तु वे गर्दन को सीधी रखने की हर सम्भव कोशिश कर रहे हैं। मंच के ये महारथी मात्र दस-बारह कविताओं के बल पर पूरा देश घूम चुके हैं। लाखों श्रोताओं के समक्ष काव्य पाठ किया है। परन्तु होली के इस कवि सम्मेलन में हूट होने की आशंका से त्रस्त हैं। श्रोताओं की फील्डिंग बहुत टाइट है, वे अपने साथ थैलियों में भरकर अण्डे और टमाटर लाए

हैं। श्रोताओं द्वारा महंगे दामों पर इन वस्तुओं को क्रय किया जाना, उनके काव्य प्रेमी होने का परिचायक है।

जैसा कि मैं देख रहा हूं, संचालक जी ने माइक थाम लिया है। वे इस ऐतिहासिक शहर के, ऐतिहासिक रामलीला मैदान में, ऐतिहासिक कवियों का ऐतिहासिक श्रोताओं से, उसी प्रकार परिचय करवा रहे हैं, जैसे किसी दंगल से पूर्व पहलवानों का करवाया जाता है। यद्यपि संचालक जी ने कवियों को देश की क्रीम कहा है, तथापि श्रोताओं को विश्व की क्रीम कहने से भी नहीं चूके। उन्होंने अभी-अभी दावा किया है कि इस शहर के श्रोता विश्व के सर्वाधिक धैर्यवान व्यक्ति हैं - वे हर प्रकार की कविता को निर्विकार भाव से ग्रहण करते हैं।

और लीजिए, कवि सम्मेलन शुरू हो गया। कवियों के सिर पर होली की टोपियां रखी होने के कारण वे निर्जीव मूर्तियों की भांति लग रहे हैं। संचालक जी ने सर्वप्रथम गीतकार मरे जी को बुलाया। मरे जी सचमुच देखने में मरे हुए लगते हैं, जबकि उनकी सांसें उन्हें जिन्दा साबित कर रही हैं। खैर, कवि तो होते ही हैं विरोधाभास के नमूने - देखना यह है कि मरे जी कौनसा जीवन्त गीत सुनाते हैं और क्रीज पर कितने समय तक टिके रहते हैं। मरे जी ने सहमी-सहमी दृष्टि से श्रोताओं को निहारा और अपने गले को खंखारा। ढेर सारा कफ, जो मुंह में आ गया था, पुनः निगलते हुए ,मरे जी ने गीत पढ़ा - "मैं दर्द पी रहा हूं। मैं दर्द पी रहा हूं" - श्रोताओं ने फील्डिंग टाइट कर दी। "झूठ बोलते हो हम देख रहे थे आप चाय पी रहे थे और मंच पर आने से पहले दारू भी पी थी।" संचालक जी ने कहा - "आप विश्व के सर्वश्रेष्ठ श्रोता हैं।" श्रोताओं ने कहा - "ठीक है। विश्व की सर्वश्रेष्ठ कविताएं आने दो।" संचालक जी ने मरेजी से कहा - दूसरी सुनाओ। मरे जी ने गीत पढ़ा - "मैं जिन्दा क्यों हूं। मैं जिन्दा क्यों हूं।"

श्रोता चीखे - "जिन्दा इसलिए हो, क्योंकि तुम मंच पर खड़े हो। हमारा दावा है अगर तुम मंच से नीचे आ जाओगे तो जिन्दा नहीं रह पाओगे।"

और इस प्रकार देश के सर्वश्रेष्ठ गीतकार "मरे जी" बिना कोई रन दिए हुए आउट अर्थात हूट हो गए। श्रोताओं ने कहा - संचालक जी किसी हास्यरस के कवि को बुलाइए और कवि सम्मेलन को ऊंचा उठाइए। पिच अनुकूल है, एक-आध रन मिल जाएगा और हास्य कवि को आउट करने में हमें भी मजा आएगा।

मैं देख रहा हूं पेवेलियन की ओर हास्य कवि "चना जोर गरम" आ रहे हैं। उनके विशालकाय शरीर को देख कर श्रोता हाथी-हाथी चिल्ला रहे हैं। उन्होंने

बिना किसी भूमिका के अपनी रचना - उर्फ गिनती पढ़ी - इक्का-दुक्का-तिक्का। पंजा-छक्का-सत्ता। श्रोताओं ने टोका - क्यों हास्य के नाम पर बट्टा लगा रहे हो। कविता सुना रहे हो या सट्टा लगा रहे हो। ऐसी कविता हमारे बच्चे भी लिख लेते हैं और आपसे अच्छी गिनती पढ़ लेते हैं। कवि "चना जोर गरम" डर गए, हाथ जोड़ कर श्रोताओं से बोले - "आप हमारे माई बाप हैं, हमें अपना ही बच्चा समझें।" श्रोताओं ने कहा - "बेटे! इतनी घटिया रचना नहीं चलेगी।" कवि "चना जोर गरम" ने कहा - "दूसरी सुनाता हूं, आपको अच्छी लगेगी।" "मैं इश्क में अन्धा हो गया। मैं हुश्न का बन्दा हो गया, फिर इतने जूते पड़े सिर पर, मैं सिर से गंजा हो गया।"

श्रोताओं ने जमकर हूटिंग की। मैं देख रहा हूं, कुछ सड़े टमाटर मंच पर फेंके जा रहे हैं। एक अण्डा कवि "चना जोर गरम" के माथे पर बिना निशाना चूके, त्रिशंकु संसद की तरह टकराया। वे लड़खड़ा गए। संचालक जी ने उन्हें बैठने का संकेत किया - वे बैठ गए। श्रोता कहने लगे - कैसे गुंडे कवियों को बुला लिया।

संचालक जी गटागट पानी उसी तरह पी रहे हैं, जैसे कभी शिवजी ने हलाहल पिया था।

पानी पीने के बाद भी, खुश्क हो चले गले से संचालक जी ने माइक पर जोर लगाया - आप लोग यहां की परम्परा बिगाड़ रहे हैं। एक ऐतिहासिक कवि सम्मेलन को उखाड रहे हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि यहां हिन्दी के दिग्गज कवि बैठे हैं। नीचे से एक श्रोता चिल्लाया - "हम भी तो बैठे हैं, यह भी बोलो।" संचालक जी ने ऐलान किया - "श्रोताओं अब आपके सामने वीररस के कवि धुंआधार आ रहे हैं। आप अपनी फील्डिंग का, किसी मंत्रिमंडल की भांति रिशिफल कर लीजिए। बेहतर यही होगा, आप अपने कानों में रूई ठूंस कर मंच से दूर हट जाएं।

कवि धुंआधार ने आस्तीनें ऊपर चढ़ाई और ताल ठोकते हुए पंक्तियां सुनाई - "मुझसे टक्कर लेने वाले। ध्वस्त करूंगा तेरी काया। है कोई माई का लाल जो, मुझसे कुश्ती लड़ने आया।" श्रोताओं ने कहा - "पहलवान क्या कविता सुनाते हो! हमें आपका नाम पता याद रहेगा। दशहरे के दंगल में बुलाएंगे। फिलहाल आप मंच से हट जाइए और हमें कविता सुनने दीजिए।" धुंआधार को माइक से हटना पड़ा। इसके बाद संचालक जी ने करुण रस के कवि दु:खी जी को

बुलाया। वे मंच पर खड़े होकर रोते रहे। श्रोता बोले - "क्या अभिनय शक्ति पाई है। यदि होली से पहले आपके यहां मृत्यु हो गई थी, तो आप यहां क्यों पधारे।"

इस तरह दुःखी जी के आउट अर्थात हूट होते ही कोई भी कवि नहीं जम पाया और जैसा कि मैंने पहले ही अनुमान लगाया था, कवियों की टीम को श्रोताओं की टीम ने, जीरो पर ही मार गिराया।

नेताजी जीते, कम्प्यूटर हारा

समाचार पत्रों में एक दिलचस्प खबर छपी - शतरंज खिलाड़ी गैरी कास्परोव को कम्प्यूटर ने हरा दिया, जैसे इन्सान ने भगवान को मात दे दी हो। कम्प्यूटर का निर्माण इन्सान ने किया और आज, उसका आविष्कार उसे हराने लगा है। कभी-कभी लगता है कम्प्यूटर एक छुटभैया नेता हो, और टिकट दिलाने वाले अपने "आका" का ही पत्ता साफ कर रहा हो। शतरंज की चालें कम्प्यूटर में किसने फीड की - हमने। वजीर, हाथी, घोड़े, प्यादों को चलना किसने सिखाया - हमने। हमारी बिल्ली, हमीं से म्याऊं। सच को नकारा नहीं जा सकता। मनुष्य से भूल हो सकती है, मशीन से नहीं।

लेकिन, यदि यही खेल भारत में खेला जा रहा होता, तो कम्प्यूटर हारता। खेल होना चाहिए - घोटाले वाला। खिलाड़ी होना चाहिए - भारत का भ्रष्ट नेता। दुनिया का कोई ऐसा कम्प्यूटर नहीं है, जो भारत के भ्रष्ट नेता को हरा दे - चाहे शतरंज का खेल हो, या घोटाले का।

कल्पना कीजिए, खेल चल रहा है। प्रारम्भ में ऐसा लगेगा - नेता जी हार रहे हैं, कम्प्यूटर आगे निकल रहा है। नेता जी शांत हैं, क्लान्ति का नामों निशान नहीं, जैसे कुछ दिनों पूर्व चारे वाले लोग शांत थे। जनता की अदालत पर नेताओं को बहुत भरोसा होता है, क्योंकि बाकी मोर्चों पर भेड़-चाल चल नहीं पाती। हालांकि कम्प्यूटर भेड़ चाल नहीं चलता, परन्तु नेताजी का दिमाग कम्प्यूटर से अधिक सक्रिय होता है। वह जब चलता है, तो बाकी चालें धरी रह जाती हैं। पचास वर्षों से यह देश उन्हीं के दिमाग के कारण चल रहा है।

कम्प्यूटर की प्रारम्भिक जीत पर दर्शक नेताजी का उपहास उड़ा सकते हैं। नेताजी आश्वस्त हैं, जीत के लिए। चुनावों में अनेक बार ऐसे अवसर आ चुके हैं, जब सामने वाला पहले चक्र की मतगणना में आगे निकल जाता है। यहां तक की दूसरे चक्र की मतगणना में भी आगे निकल जाता है। नेताजी, तब भी विचलित नहीं होते, यह तो कम्प्यूटर है। कुछ देर बाद सचमुच आश्चर्य हो जाएगा - नेताजी

जीतने लगेंगे, जैसे अंतिम चक्र की मतगणना के बाद, कोई प्रत्याशी चुनाव हारते-हारते जीत जाता है।

मुझे अपने देश के भ्रष्ट नेताओं पर पूरा भरोसा है। सी.बी.आई. और नेताजी में शतरंज चल रही है। नेताजी बराबर हार रहे हैं, लेकिन सब जानते हैं अंतिम विजय किसकी होगी। कुर्सी चली जाए, हमें जो कमाने थे कमा लिए। हमें जितने खाने थे - खा लिए।

ऐसी कोई जेल अभी तक इस देश में नहीं बनी, जो भ्रष्ट नेता को लम्बी अवधि तक अपने यहां रख सके। नेताजी आज़ाद देश के नेता हैं - कैदियों के नहीं। वे फिर बाहर आ जाएंगे, चुनाव लड़ने या फिर जेल से ही चुनाव जीत जाएंगे। जब सचमुच के हत्यारे खुलेआम चुनाव जीत सकते हैं, तो हम तो सिर्फ घोटालेबाज हैं। हमने प्रत्यक्ष किसी की हत्या तो नहीं की। अप्रत्यक्ष की बात अलग है।

सभी जानते हैं, चूहे मारने की दवाई बेचने वाले को चूहे मारने का पाप नहीं लगता - दवाई का उपयोग करने वालों को यह पाप लगता है। अतः इस देश के भ्रष्टाचार के लिए नेताओं को दोषी ठहराना उचित नहीं है।

भ्रष्ट नेता हमेशा चतुर होता है - उसे नौसिखिया कहना भूल होगी। भ्रष्टाचार, वह किसी स्कूल में नहीं सीखता, बल्कि नेता की पदवी प्राप्त होते ही भ्रष्टाचार उसकी छाया का रूप ग्रहण कर लेता है।

नेता कितना ही नवोदित क्यों न हो, अपनी चालों से कम्प्यूटर को हरा देगा। नया से नया नेता, कुछ ऐसी "तिकड़म" चलाएगा - कम्प्यूटर को हार माननी पड़ेगी। सुपर कम्प्यूटर कितना ही "सुपर" क्यों न हो, भ्रष्ट नेता हमेशा कम्प्यूटर से "सुपीरियर" होता है।

हमने एक नेताजी से इस सम्बन्ध में बात की तो वे बोले - आप ठीक कहिन ! ससुरा ऐसा कौनऊ कम्प्यूटर नाहीं बना, जो हमको हरा दे। हम जौन चाल चलिहैं, कम्पूटर के बापऊ नाहिं समझ सकि हैं।

मैंने कहा - नेता जी मान लो विदेश से एक ऐसा कम्प्यूटर आ जाए, जो आपके प्रतिभाशाली दिमाग से अधिक ब्रिलियन्ट हो।

नेताजी नाराज हो गए - तुमऊं लेखक लोग कैसी विचित्र भासा बोलत हौ। ऊ जौन, आयातित कम्पूटर है, कौन आयात करि है - हम ही नां। ससुरी कम्पनी, कमीसन दैकेंऊ सुद्ध माल सप्लाई करि है, तो फेल हुइ जइहै ना। मानलो

गलती से सुद्ध कम्पूटर आइ गवा, तो चालें हमहीं फीड करिहैं ना। हमरा कम्पूटर में हमारा चालें फीड नाहीं हुइ हैं, तो का रसिया वालिन की हुइ हैं। हमारे देस में जौन कम्पूटर काम करि है, ऊ हमारे इसारन पै नाचि है, जैसे हमरी पुलिस नाचति है।

मैं नेताजी की सोच के आगे नतमस्तक हो गया। वास्तव में हमारे यहां कोई कम्प्यूटर भ्रष्ट नेता को नहीं हरा सकता। यदि कभी गैरी कास्पारोव की तरह शतरंज का खेल कम्प्यूटर और नेताजी के बीच खेला गया, तो यह तय है, नेताजी ही जीतेंगे। और तब समाचार पत्रों में छपेगा - नेताजी जीते, कम्प्यूटर हारा।

साहित्यकार का तकिया

वर्मा जी मेरे पास बैठे थे - परम्परागत तरीके से मुंह लटकाए हुए, मुंह में जर्दा दबाए हुए और महंगाई की मार का जिक्र करते हुए। वे कह रहे थे - सरकार, समर्थन देने वाली पार्टी के सहारे जिन्दा है और हम इस जर्दे के कारण जिंदा हैं। हालांकि जर्दा महंगा नहीं है, परन्तु कैंसर की रिस्क तो है ही। मैंने वर्माजी को आश्वस्त किया कि आपकी उम्र केन्द्र सरकार से अधिक है, अतः चिन्ता छोड़ो, सुख से जियो। वे बोले महंगाई ने कमर तोड़ दी, गुण्डों ने कानून-व्यवस्था को सड़क पर कुचल दिया और आप कह रहे हैं, शांति से जियो। मैं समझ गया वर्माजी चुप होने वाले नहीं हैं।

गुंडई का जवाब गुंडई से दो, नंगेपन का जवाब नंगेपन से, यही राजनीति है और यही कूटनीति भी। वर्माजी को चुप रखना है, तो महंगाई का रोना मुझे भी रोना ही पड़ेगा। मैंने कहा - टाइप करने वाले ने रेट बढ़ा दिया है, कागज, लिफाफे सब महंगे हो गए हैं, अखबार वाले पारिश्रमिक नहीं बढ़ा रहे। मुझे रात भर नींद नहीं आती, क्योंकि पुरस्कार रेवड़ियों की तरह बंटने के बावजूद मुझे नहीं मिल पा रहे हैं। शांति मुझे भी नहीं मिल पा रही है। वर्माजी बोले कौनसी शांति - आपके मोहल्ले में रहने वाली या हमारे मुहल्ले वाली। मैंने कहा - दोनों ही नहीं, मैं उस शांति की बात कर रहा हूं, जो अशांति का विलोम शब्द है। यार वर्मा, कुछ तो लिहाज करो मेरी इस फाकापरस्ती का, इसे इतने हल्के तरीके से मत लो।

वर्माजी ग़मगीन हो गए। मुझे अच्छा लगा। उधर केन्द्रीय सरकार भी ग़मगीन है, आटे के भाव को लेकर। ऐतिहासिक सरकार के मुखिया खुद चल कर जाते हैं, विपक्षी दल के नेता के घर, समर्थन देने वाली पार्टी के घर - विचार-विमर्श करने। महंगाई पहले चंचला थी, आजकल कुटिला हो गई है। जिसे "मुंहजरी", "कलंकिनी" वगैरह कहा जा सकता है। सूचकांक ऊपर, और ऊपर चढ़ रहा है। जैसे नैनीताल की चाइना पीक हो गया हो, देखने की कोशिश करो तो सिर की टोपी नीचे गिर जाती है। नेताओं ने इसी डर से टोपियों को अलविदा कह

दिया।

वर्माजी की गंभीरता टूटती है - एक तरीका है महंगाई से फौरी तौर पर राहत पाने का अपने तकिए को नीलाम कर दो। मैं आवाक् रह गया। वर्माजी कह क्या रहे हैं। मेरा तकिया, जिसका गिलाफ़ गंदा चीकट हो चुका है, जिसमें भरा हुआ फोम, मेरे लेखन कर्म के कारण स्वयं पर शर्मिन्दा हो रहा है, नीलामी में कौन खरीदेगा। मैंने वर्माजी के मुंह पर पानी का छींटा मारा - यह देखने के लिए वे होश में तो हैं। वे बोले इसे गंभीरता से लो - जब माइकल जैक्सन का तकिया ऊंची कीमत पर नीलाम हो सकता है, तो तुम्हारा पांच, दस हजार भी नहीं दिला सकता। मैंने कहा माधुरी दीक्षित के "हम हैं आपके कौन" में पहने गए कपड़े नीलामी में अच्छी रकम नहीं जुटा सके, तो मेरा तकिया कैसे नीलाम हो जाएगा। वर्माजी बोले आपका तकिया, लेखक का तकिया है, इसके कवर को धुलवा लो, फिर देखो इसकी कीमत मिलती है या नहीं।

मैंने कहा लेखक को तकिये का कवर कभी नहीं धुलवाना चाहिए। इससे लेखक की मौलिकता नष्ट हो जाती है। मैं चाहता हूं हजार दो हजार भले ही कम मिले, लेकिन तकिया अपने मूल रूप में नीलाम करना उचित होगा।

वर्माजी बोले तुम्हारी यही मौलिकता तुम्हें नष्ट कर रही है। मौलिकता के कारण न तो तुम प्रेमिका जुटा पाए और न कोई बड़ा साहित्यिक पुरस्कार। तुम्हारा तकिया इसी मौलिकता के कारण दुर्गन्ध छोड़ रहा है, नीलामी की बात छोड़ो, कोई भी सभ्य प्राणी इस तकिये के पास खड़ा रहना भी पसन्द नहीं करेगा। माइकल जैक्सन का तकिया पंचतारा होटल का तकिया था। जिस दर्पण में उसने देखा, मेकअप किया, उसकी नीलामी भी हो गई। एक तुम्हारे दर्पण है, जिसे तुम मुफ़्त में देना चाहो, तो भी कोई लेने वाला नहीं है। एक तो वैसे ही परिस्थितियों ने मनुष्य के चेहरे को विद्रूप बना दिया है, ऊपर से तुम्हारा दर्पण, विद्रूपता को उसी प्रकार बढ़ा देता है, जैसे पांचवें वेतन आयोग ने आई.ए.एस. अधिकारियों के वेतन बढ़ा दिए हैं।

मैंने वर्माजी को सांत्वना दी - साहित्यकार साहित्य जरूर अच्छा लिखता है, लेकिन वह स्वयं सुन्दर हो, यह आवश्यक नहीं है। साहित्यकार का दर्पण राजनीतिक आइना नहीं है, जो बुरे को भी अच्छा बना दे, हमारा दर्पण हू-ब-हू शक्ल दिखाता है - आप अच्छे हैं तो अच्छे लगेंगे, बुरे होने का दोष दर्पण के मत्थे मत मढ़िए।

वर्माजी और मैं एक-दूसरे को घूर रहे थे, छकाने की कोशिश कर रहे थे। हम दोनों दोस्त थे और एक-दूसरे की आलोचना करके भी, उसी तरह एक बने हुए थे, जैसे मिलीजुली सरकार के घटक एक बने रहते हैं। मेरे तकिए की नीलामी टल गई।

दीवाली पर उल्लू पूजन

मैं इस समय, आपको किसी शहर के व्यस्ततम बाजार का हाल सुना रहा हूं। मैं स्वयं इस बाजार में, घण्टाघर पर चढ़ा हुआ दीवाली का बाजार देख रहा हूं। यहां जो घण्टाघर है, उसमें घड़ी नाम की वस्तु का उसी दिन से अभाव रहा है, जब से इसका निर्माण हुआ। मेरे आस-पास यहां घण्टाघर पर कबूतरों की बीट का साम्राज्य होने से, मैं अपने आपको हिमालय की किसी चोटी पर बैठा हुआ समझ रहा हूं।

हमारे शहरों में घण्टाघर और महात्मा गांधी की मूर्ति, दो ऐसे स्थान होते हैं, जहां *कबूतरों को बीट करने की पूरी स्वतंत्रता होती है।* घण्टाघर की घड़ी के अभाव में, मेरे चेहरे को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि बारह बज गए हैं। जो लोग चेहरे को नहीं देख सकते हों, वे ग्राहकों के चेहरे देख कर बारह बजे का समय जान सकते हैं।

कल दीवाली है, अतः आज का बाज़ार दुकानदारों, ग्राहकों, जेब कतरों, जमाखोरों, पुलिसियों, नगर पालिका वालों, मार्केटिंग इन्स्पेक्टर, हैल्थ इन्सपेक्टर आदि के लिए अविस्मरणीय है। इसके अलावा छेड़छाड़ करने वाले, उठाईगीर तथा साइकिल चोर सुबह से ही सक्रिय हो गए हैं।

आज सब्जी मण्डी में अतिरिक्त सब्जी आई हुई है, जो अभी बोरों में बन्द है। कल की सड़ी व बासी सब्जी धड़ल्ले से बेची जा रही है।

सब्जियों के भाव प्रति घण्टे के हिसाब से उसी प्रकार बढ़ रहे हैं जैसे नेताओं और मंत्रियों के भत्ते प्रति वर्ष बढ़ जाते हैं। सब्जियों में पानी का छिड़काव सुबह से ही हो रहा है, ताकि कीचड़ की मात्रा बढ़ जाए और सब खरीदने वाले फिसलने लगे। फिसलने से उनकी सब्जी भी कीचड़ में गिर जाएगी और उन्हें, फिर से सब्जी खरीदनी पड़ेगी।

घण्टाघर के दायीं ओर, गली में किराने की दुकाने हैं, जिनमें आज दीवाली के उपलक्ष्य में हल्दी में पिसी हुई ईंट, मिर्ची में लाल लकड़ी का बुरादा तथा इसी

तरह का, अच्छे प्रतिशत वाला मिलावटी सामान, परम्परागत श्रद्धा एवं विश्वास के साथ बेचा जा रहा है। इसी बाजार में फुटपाथ पर पूजन सामग्री पुड़िया में बांधकर बेची जा रही है। पूजन सामग्री के भाव भी आसमान को छू रहे हैं। धूपबत्ती, अगरबत्ती, मोमबत्ती तथा लालबत्ती - महंगे दामों पर बेची जा रही है।

पं. दुलारे लाल एक बड़ी बोरी लेकर पूजन सामग्री खरीदने आए हैं। कारण यह है कि उन्हें दीवाली के दिन पूरे मौहल्ले में पूजन करना है। दीवाली उनके लिए "सीजन" होती है। एक दुकान पर भाव बहुत कम देखकर पंडित जी बोरी भर पूजन सामग्री खरीद लेते हैं। उन्हें आश्चर्य होता है कि दूसरे दुकानदारों की अपेक्षा यह दुकानदार इतनी सस्ती सामग्री क्यों बेच रहा है। पैसे देकर वे दुकानदार से पूछते हैं - "भैया इतना सस्ता क्यों बेच रहे हो।" दुकानदार कहता है - "लक्ष्मी मैया की सेवा कर रहा हूं।" पंडित जी उत्सुक हैं - "घाटा खाकर।" दुकानदार - "जी हां, घाटा खाकर।" पंडित जी - "ऐसा क्यों ?" दुकानदार - "मैं अनुसूचित जाति का जो हूं।"

पंडित जी इधर-उधर चोर नज़रों से देखते हैं और तुरन्त रिक्शे पर सवार हो जाते हैं। उनकी कट्टरता उन्हें कचोटती है। पूजन सामग्री अपवित्र हो गई है। लेकिन पचास रुपए का फायदा हुआ। फायदेवाली बात सोचने से अपवित्रता स्वतः ही पवित्रता में बदल गई।

हमारे देश में पवित्रता का मापदण्ड पैसा है। जिसके पास जितना पैसा है, वह उतना ही पवित्र है। गरीब लोग अपवित्र होते हैं। पंडित जी सोचते हैं पूजा की सामग्री अग्नि में समर्पित होगी और अग्नि में इतनी ताकत है कि वह सबको पवित्र कर देती है, तभी तो इसका प्रयोग पंडित जी से लेकर पुलिस तक करती है। दंगाई, आरक्षण विरोधी तथा अन्य प्रकार के लोग अग्नि परीक्षा से गुजरते रहते हैं।

चीनी की दुकानों पर गीली चीनी बेची जा रही है। प्रातःकाल ही चीनी के बोरे भिगो दिए गए थे। आज चीनी के भाव चालीस प्रतिशत बढ़ गए हैं। इस प्रकार कल जिन्होंने चीनी खरीद ली, वे फायदे में हैं। लाला भगवती ने मौके का पूरा फायदा उठाया था। कल उन्होंने सूखी चीनी खरीदी थी और आज बढ़े हुए दामों पर भिगो कर बेच रहे हैं।

शुद्ध चमड़े के जूतों को भिगो कर मारने पर जो चोट लगती है, वैसी ही चोट गीली चीनी खरीदने वालों को लग रही है। पूरे बाजार में केवल एक दुकान पर सूखी चीनी बेची जा रही है, लेकिन यहां भाव आसमान छू रहे हैं।

चीनी की दुकानों के आगे पटाखों की दुकानें हैं। पटाखे बहुत महंगे हैं, क्योंकि बारूद का प्रयोग हिंसक घटनाओं के लिए होने लगा है। देश में दंगों की संख्या बढ़ जाने के कारण, पटाखों के लिए निर्धारित कोटे का बारूद चोर बाजारी से समाज विरोधी तत्वों के हाथों बिक जाता है। कुछ लोग पटाखों की जमाखोरी चुनावों के लिए करते हैं।

आज हालत यह है कि फुलझड़ी, पटाखों की तरह चलती है और पटाखे फुलझड़ी की तरह। पटाखों का स्वभाव दलबदलू नेता की तरह होता जा रहा है। आम जनता को इन अवसरवादी पटाखों से सावधान रहना होगा।

पटाखों की दुकानों से आगे मूर्तियों की दुकानें हैं। इनमें गणेश जी से लेकर लक्ष्मीजी तक, देवताओं की श्रृंखला है। मूर्तियां हर किसी को आकर्षित कर रही हैं। एक गरीब लक्ष्मी जी की मूर्ति खरीदने पहुंचता है, "कितने की दोगे।" दुकानदार कहता है "सौ रुपए।" गरीब - "इतनी महंगी क्यों।" दुकानदार - "लक्ष्मी की जो है। लक्ष्मी माने पैसा और लक्ष्मी पूजन से ही पैसा आता है।" जिस प्रकार किसी नेता का पूजन करने से पुजारी स्वयं नेता बन जाता है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी की मूर्ति की पूजा करने से पुजारी स्वयं धनवान बन जाता है। गरीब - "मेरे पास सौ रुपए नहीं है, कुल पच्चीस रुपए है।"

दुकानदार - "तो उल्लू की मूर्ति ले जाओ मेरे पास है।"

दुकानदार उल्लू की मूर्ति निकालता है। गरीब ध्यान से देखता है वह कहता है - उल्लू अशुभ होता है। दुकानदार कहता है - अशुभ तो तुम स्वयं हो। तुम्हारे दर्शन से बनते काम बिगड़ सकते हैं। मेरी बात मानो और उल्लू ले जाओ। लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू है।

जिस प्रकार नेता जी की गाड़ी, बिना नेता के भी रोब मारती है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू, बिना लक्ष्मी के भी रोब मारता है। आज बिना लक्ष्मी के आपके घर जा रहा है, कल लक्ष्मी को बैठा के भी ले आएगा।

गरीब पच्चीस रुपए में उल्लू पूजन हेतु उल्लू की मूर्ति खरीद लेता है। वह मन में सोचता है कि दुकानदार ने उल्लू बेच कर मुझे उल्लू बनाया है।

नेताओं की अंग्रेजी

प्राचीन नेताओं को अंग्रेजी से वैर था, इसलिए उन्होंने अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने का बीड़ा उठाया और सफल भी हुए। अनगिनत शहीदों ने अंग्रेजों को निकालने के लिए अपनी कुर्बानी दी। अंग्रेज चले गए, परन्तु अपनी दुम अर्थात अंग्रेजी को यहीं छोड़ गए। आधुनिक नेता इसी दुम को पकड़ कर राजनीति कर रहे हैं। कभी वे अंग्रेजी की दुम को मरोड़ देते हैं, कभी उसे झाड़-पोंछ कर चमकाने का प्रयास करते हैं।

कुछ नेता संघ लोक सेवा आयोग से अंग्रेजी को हटवाने के लिए आन्दोलन चला रहे हैं, तो कुछ नेता अंग्रेजी विषय जुड़वाने के लिए आन्दोलन चला रहे हैं। कुछ नेताओं ने पान-गुटकों की तरह अंग्रेजी की दुकान खोल रखी है। आजकल पान-गुटकों की बिक्री बहुत होती है, इसलिए इन नेताओं की दुकानदारी भी चल निकली है।

इसी दुकानदारी के चलते अंग्रेजी समाप्त नहीं हो पा रही है। इस देश में, जब तक हिन्दी को उठाने का अभियान चलता रहेगा, तब तक अंग्रेजी अपने आप उठती आएगी। हिन्दी का भार थोड़ा अधिक है। इसलिए लोग अधिक भार उठाने की अपेक्षा, कम भार वाली अंग्रेजी उठा लेते हैं। यहां तक कि वे, उसे सिर पर बैठा लेते है। एक बार सिर पर चढ़ने के बाद, अंग्रेजी नीचे उतरने का नाम नहीं लेती है।

अंग्रेजी से प्रेम करने वाले एक नेता किसी क्षेत्र में थे। जिस प्रकार नेता सार्वभौमिक होता है, उसी प्रकार क्षेत्र भी सार्वभौमिक होता है। वह क्षेत्र हमारा, आपका या किसी और का हो सकता है। वह क्षेत्र देश के किसी भी कोने में हो सकता है। उसी कोने से कभी कोई नेता पी.एम. के पद का दावेदार हो सकता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, नेताओं की प्रकृति एक ही होती है। यही बात हमारे देश की अखण्डता को सिद्ध कर देती है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, सभी नेता अंग्रेजी के प्रति झुकाव रखते हैं। सुन्दर नारी की तरह, अंग्रेजी हर नेता के दिल में

चीनी की दुकानों के आगे पटाखों की दुकानें हैं। पटाखे बहुत महंगे हैं, क्योंकि बारूद का प्रयोग हिंसक घटनाओं के लिए होने लगा है। देश में दंगों की संख्या बढ़ जाने के कारण, पटाखों के लिए निर्धारित कोटे का बारूद चोर बाजारी से समाज विरोधी तत्वों के हाथों बिक जाता है। कुछ लोग पटाखों की जमाखोरी चुनावों के लिए करते हैं।

आज हालत यह है कि फुलझड़ी, पटाखों की तरह चलती है और पटाखे फुलझड़ी की तरह। पटाखों का स्वभाव दलबदलू नेता की तरह होता जा रहा है। आम जनता को इन अवसरवादी पटाखों से सावधान रहना होगा।

पटाखों की दुकानों से आगे मूर्तियों की दुकानें हैं। इनमें गणेश जी से लेकर लक्ष्मीजी तक, देवताओं की श्रृंखला है। मूर्तियां हर किसी को आकर्षित कर रही हैं। एक गरीब लक्ष्मी जी की मूर्ति खरीदने पहुंचता है, "कितने की दोगे।" दुकानदार कहता है "सौ रुपए।" गरीब - "इतनी महंगी क्यों।" दुकानदार - "लक्ष्मी की जो है। लक्ष्मी माने पैसा और लक्ष्मी पूजन से ही पैसा आता है।" जिस प्रकार किसी नेता का पूजन करने से पुजारी स्वयं नेता बन जाता है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी की मूर्ति की पूजा करने से पुजारी स्वयं धनवान बन जाता है। गरीब - "मेरे पास सौ रुपए नहीं है, कुल पच्चीस रुपए है।"

दुकानदार - "तो उल्लू की मूर्ति ले जाओ मेरे पास है।"

दुकानदार उल्लू की मूर्ति निकालता है। गरीब ध्यान से देखता है वह कहता है - उल्लू अशुभ होता है। दुकानदार कहता है - अशुभ तो तुम स्वयं हो। तुम्हारे दर्शन से बनते काम बिगड़ सकते हैं। मेरी बात मानो और उल्लू ले जाओ। लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू है।

जिस प्रकार नेता जी की गाड़ी, बिना नेता के भी रोब मारती है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू, बिना लक्ष्मी के भी रोब मारता है। आज बिना लक्ष्मी के आपके घर जा रहा है, कल लक्ष्मी को बैठा के भी ले आएगा।

गरीब पच्चीस रुपए में उल्लू पूजन हेतु उल्लू की मूर्ति खरीद लेता है। वह मन में सोचता है कि दुकानदार ने उल्लू बेच कर मुझे उल्लू बनाया है।

नेताजी की अंग्रेजी

प्राचीन नेताओं को अंग्रेजी से वैर था, इसलिए उन्होंने अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने का बीड़ा उठाया और सफल भी हुए। अनगिनत शहीदों ने अंग्रेजों को निकालने के लिए अपनी कुर्बानी दी। अंग्रेज चले गए, परन्तु अपनी दुम अर्थात अंग्रेजी को यहीं छोड़ गए। आधुनिक नेता इसी दुम को पकड़ कर राजनीति कर रहे हैं। कभी वे अंग्रेजी की दुम को मरोड़ देते हैं, कभी उसे झाड़-पोंछ कर चमकाने का प्रयास करते हैं।

कुछ नेता संघ लोक सेवा आयोग से अंग्रेजी को हटवाने के लिए आन्दोलन चला रहे हैं, तो कुछ नेता अंग्रेजी विषय जुड़वाने के लिए आन्दोलन चला रहे हैं। कुछ नेताओं ने पान-गुटकों की तरह अंग्रेजी की दुकान खोल रखी है। आजकल पान-गुटकों की बिक्री बहुत होती है, इसलिए इन नेताओं की दुकानदारी भी चल निकली है।

इसी दुकानदारी के चलते अंग्रेजी समाप्त नहीं हो पा रही है। इस देश में, जब तक हिन्दी को उठाने का अभियान चलता रहेगा, तब तक अंग्रेजी अपने आप उठती आएगी। हिन्दी का भार थोड़ा अधिक है। इसलिए लोग अधिक भार उठाने की अपेक्षा, कम भार वाली अंग्रेजी उठा लेते हैं। यहां तक कि वे, उसे सिर पर बैठा लेते है। एक बार सिर पर चढ़ने के बाद, अंग्रेजी नीचे उतरने का नाम नहीं लेती है।

अंग्रेजी से प्रेम करने वाले एक नेता किसी क्षेत्र में थे। जिस प्रकार नेता सार्वभौमिक होता है, उसी प्रकार क्षेत्र भी सार्वभौमिक होता है। वह क्षेत्र हमारा, आपका या किसी और का हो सकता है। वह क्षेत्र देश के किसी भी कोने में हो सकता है। उसी कोने से कभी कोई नेता पी.एम. के पद का दावेदार हो सकता है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, नेताओं की प्रकृति एक ही होती है। यही बात हमारे देश की अखण्डता को सिद्ध कर देती है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, सभी नेता अंग्रेजी के प्रति झुकाव रखते हैं। सुन्दर नारी की तरह, अंग्रेजी हर नेता के दिल में

नरम कोना बना लेती है। जिन्हें अंग्रेजी नहीं आती, वे सत्ता पर काबिज होते ही अंग्रेजी सीख लेते हैं। कई राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने ऐसा किया है।

हमारे नेताजी उर्फ लीडर जी का जन्म, आज़ादी के बाद हुआ था, परन्तु उन्हें कुल मिलाकर हिन्दी भी नहीं आती थी। अंग्रेजी के मामले में, वे पूरे हिन्दुस्तान को पछाड़ चुके थे। इनका अंग्रेजी ज्ञान आश्चर्यजनक था। इनकी राजनीति फेल हो सकती थी, परन्तु अंग्रेजी नहीं। अपने अंग्रेजी ज्ञान के कारण वे शोध का विषय होते जा रहे थे। उनके अंग्रेजी ज्ञान को देख-सुन कर अंग्रेजी के विद्वान ईर्ष्या से अपनी गर्दन नीचे झुका लेते थे, लेकिन लोगों का कहना है, वे ऐसा कार्य शर्म की वजह से करते थे। पता नहीं, उन्हें नेताजी पर शर्म आती थी या अंग्रेजी पर। नेताजी अंग्रेजी में जीरो लाते थे, परन्तु आज उसी अंग्रेजी के कारण हीरो बन गए थे। मिडिल स्कूल में उन्होंने ''माई बेस्ट फ्रेंड'' पर निबन्ध याद किया। लेकिन प्रश्न पत्र में ''माई फादर'' पर लिखने को कहा गया। नेताजी ने ''माई बेस्ट फ्रेंड'' वाला निबन्ध ही लिख दिया फ्रेंड की जगह फादर लिखकर। उन्होंने लिखा - आई हेव थ्री फादर्स। रामू इज माइ बेस्ट फादर ....।

इस समय वे, किसी क्षेत्र विशेष से ब्लाक प्रेसीडेन्ट थे। होने को एम.एल.ए. होते, तो भी उनकी अंग्रेजी और जनता की सेवा पर, कोई असर नहीं पड़ता। वे किसी अन्य क्षेत्र से एम.पी. भी हो सकते थे। वे ब्लॉक स्तर के नेता होते हुए भी अपने अंग्रेजी ज्ञान के कारण अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त कर चुके थे। नेताजी से मेरी पुरानी जान-पहचान थी और उनकी अंग्रेजी ने मेरे सामान्य ज्ञान में आशातीत वृद्धि की थी। वे ब्लॉक प्रेसीडेन्ट थे और ब्लॉक प्रेसीडेन्ट का अपने क्षेत्र में उसी प्रकार दबदबा होता है, जैसे कोई नादान बच्चा गुब्बारे, पर अपना दबाव बनाए रखता है। ब्लॉक प्रेसीडेन्ट से या पंचायत समिति प्रमुख से अधिकारी और जनता को दबना पड़ता है। जो लोग नेताजी से पद के कारण नहीं दबते, उन्हें नेताजी अपनी अंग्रेजी सुनाकर दबा देते थे। अधिकारी को ''इडिएट'' और उसके चपरासी को ''योरपार्डन'' कहते हुए नेताजी को आनन्द आता था। ब्लॉक प्रेसीडेन्ट द्वारा सबसे अधिक चरी जाने वाली घास, बी.डी.ओ. होता है। बी.डी.ओ., कैसा भी हरा भरा सूखा क्यों न हो, नेताजी उसे तब तक चरते थे - जब तक वह अपना स्थानान्तरण नहीं करवा लेता था।

एक बार नेताजी बी.डी.ओ. साहब के साथ ट्रेन में कहीं जा रहे थे। स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही वे लोग जगह ढूंढ़ने लगे। अचानक नेताजी को लगा कि

बी.डी.ओ. साहब लेडीज कम्पार्टमेन्ट में चढ़ रहे हैं।

बी.डी.ओ. साहब ग़लती करने जा रहे थे, अतः नेताजी ने उन्हें अंग्रेजी में डांटा - "यह तो वाइफ का डिब्बा है, इसमें मत चढ़ो।" संयोग से उस डिब्बे में अविवाहित कॉलेज छात्राएं यात्रा कर रही थीं। छात्राओं ने नेताजी की शेर की आवाज में, गीदड़ जैसी अंग्रेजी को सुन लिया था। वे चप्पलें लेकर नेताजी पर टूट पड़ीं। उसी दिन से नेताजी ने अपने ज्ञान को सुधार लिया कि ट्रेन में जो डिब्बा महिलाओं के लिए होता है, उसे वाइफ का डिब्बा नहीं कह सकते।

नेताजी को एक बार अपने आदेश की प्रतियां वितरित करनी थीं। उन्होंने तुरन्त सहायक को बुलाकर आदेश दिया - "इस आदेश की दो सौ साइकिल स्टैण्ड प्रतियां निकालो और डिस्पेच कर दो। पी.ए. साइक्लोस्टाइल शब्द को साइकिल स्टैण्ड से समझ नहीं पाया, इसलिए उसने साइकिल स्टैण्ड के टेण्डर कॉल कर लिए। जब नेताजी ने टेण्डर देखे तो वे आग-बबूला हो गए। नेताजी अपनी ग़लती मानने को तैयार नहीं थे, अतः पी.ए. को ही अपनी ग़लती माननी पड़ी।

जिम्मेदारी का निर्धारण करना हमारे लोकतंत्र का आधार है। जब मंत्री लोग अपनी गलतियां नहीं मानते, तो संतरी के ऊपर गलतियां थोप दी जाती हैं। गलती होने पर दोषी को पकड़ना आवश्यक हो जाता है। ऐसे अवसरों पर पी.ए. लोग अपने बॉस को कठिन अंग्रेजी में गालियां देते हैं। जब नेताजी छात्रों की सभा में जाते हैं, तब वे बोलने में छात्रों से अधिक चुलबुले हो जाते हैं। एक बार नेताजी ने अपने कॉलेज में भाषण देते हुए कहा -

"हमारे कस्बे में जो बिजली आई है, उसका मैं तहे दिले से आब्जेक्शन (स्वागत) करता हूं। हमारे कस्बे का यह कॉलिज प्रगति कर रहा है, इसका भी मैं 'ऑब्जेक्शन' करता हूं। मैं वायदा करता हूं, कस्बे को जोड़ने वाली सड़क पर रोड और पुल पर ब्रिज बनवा दूंगा। छात्रों से मेरा कहना है, वे मेहनत से पढ़ें और अपने फर्नीचर (फ्यूचर) को ध्यान में रखें। अगर आपने इस समय पढ़ाई में ध्यान नहीं लगाया, तो आपका फर्नीचर (फ्यूचर) बिगड़ जाएगा। हमारे कस्बे में अभी ड्रिंकिंग वाटर प्राब्लेम है। अभी भी वाइफें पिक्चर (पिचर) लेकर दूर के कुएं पर जाती हैं। रास्ते में उनके पिक्चर (पिचर) में टूट-फूट हो जाती है। मैं वाइफों की हिम्मत पर आब्जेक्शन करता हूं और वायदा करता हूं कि शीघ्र ही वाइफों का नाता पिक्चर से छुड़वा दूंगा। इस प्रकार नेताजी का अंग्रेजीनुमा भाषण सुनकर शहरनुमा कस्बे के

लोग नेताजी पर गर्व करने लगे।

एक बार उन्हें एक आवश्यक दौरे पर जाना था। वे नहीं पहुंचे तो अधिकारी उन्हें लेने उनके निवास पर पहुंच गए। नेताजी ने फरमाया क्या करें लास्ट-नाइट नीचे में बड़ा पेन हो रहा था। हेडेक एक्सेज था। इसी कारण मार्निंग में लेट से उठा। रेडी होते-होते लेट होना था। यहां नीचे अर्थात घुटने को समझने में पसीना आ गया।

एक बार नेताजी जिला कलेक्टर से मिलने गए। विदा लेते समय उन्होंने कलक्टर से हाथ मिलाकर कहा - हार्न प्लीज, हार्न प्लीज। कलक्टर स्तब्ध रह गए। वे हार्न प्लीज का अर्थ नहीं समझे। बाद में जब किसी ने नेताजी से हार्न प्लीज का अर्थ पूछा, तो उन्होंने कहा, इतना नहीं जानते - ट्रकों के पीछे अर्थ सहित हार्न प्लीज लिखा रहता है। हार्न प्लीज का अर्थ है "फिर मिलेंगे।" नेताजी की इस अंग्रेजी पर पूरी डिक्शनरी रची जा सकती है।

शादी या बर्बादी

नोटः यह लेख नवोदित पतियों के लिए आरक्षित है। नवोदित पतियों द्वारा न पढ़े जाने पर, अन्य प्रकार के पति पढ़ सकते हैं। इस लेख को पढ़ने के बाद यदि भारत में तलाक देने की दर बढ़ जाए या परिवार कल्याण विभाग को शत-प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त हो जाएं, तो उसके लिए इस लेख का लेखक कतई जिम्मेदार नहीं होगा।

मानवता का यह तकाजा है कि यदि आपने ठोकर खाई है, तो दूसरों को भी खाने दें। व्यावहारिकता यह है कि आप कुएं में पड़ रहे हैं, तो लोगों को प्रेरित करें कि वे अधिक से अधिक तादाद में कुएं में पड़ें। भीड़ में अगर आपकी जेब कट जाए, तो आपकी अनायास इच्छा होती है कि सब लोगों की जेबें कट जाएं। मन्दिर के बाहर अगर आपकी चप्पल चोरी हो जाए, तो इच्छा होती है कि बाकी लोगों की भी चप्पलें भी चोरी हो जाएं। कम से कम, एक जोड़ी चप्पल तो आप अपने नंगे पांवों में डालकर ला ही सकते हैं। जिसकी शादी हो जाती है, वह हमेशा दूसरे को शादी न करने की सलाह देता है, क्योंकि वह जानता है कि ऐसी सलाह आज तक किसी ने मानी नहीं। वैसे भी, जो सलाह मान ली जाए, उसे देने से भी क्या फायदा ? मैं भी शादी करने के बाद शादी के उम्मीदवारों को शादी न करने की सलाह देता आया हूं और वे, पारम्परिक रूप से मेरी सलाह को ठुकराते आए हैं।

बचपन से ही बारातें "अटैंड" करने का मुझे शौक रहा है। निमंत्रण चाहे वर पक्ष की ओर से आया हो या कन्या पक्ष की ओर से, मैं शादी समारोह जरूर "अटैण्ड" करता। पता नहीं कब और कैसे मेरी कल्पना में यह बात घर कर गई कि पत्नी के बिना जीवन अधूरा है। जिस दिन से यह विचार मानस पटल पर अंकित हुआ, शायद उसी दिन से मेरी कुंडली पर बुरे नक्षत्रों का प्रभाव पड़ गया था। किशोरावस्था में "मुंगेरीलाल के हसीन सपनों" की भांति मैं भी पत्नी को लेकर सपने देखता था। शादी के बाद लगा कि मेरा "हसीन सपनों वाला" सीरियल समाप्त हो चुका है और उसके स्थान पर, जीवन का उत्तरकांड प्रारम्भ हो

चुका है। "वाइफ" के आते ही मेरा रोल कॉमेडियन का हो गया और वास्तविक जिन्दगी ट्रेजडी बन गई। मैं विवाह संस्था को नियमित गालियां देने लगा, परन्तु सालियों के प्रेम पत्रों का जवाब पत्नी के डर से नहीं दे सका। सालियों ने मुझे अट्ठारहवीं सदी का जीजा घोषित कर दिया और इस प्रकार मैं उनके लिए अप्रासंगिक हो गया। पत्नी की दृष्टि में मेरी प्रासंगिकता बहुत पहले समाप्त हो चुकी थी। धीरे-धीरे मैं पत्नी के प्रति निर्लिप्त हो गया। इसे मोक्ष की स्थिति कहा जाता है। जो लोग आजीवन ब्रह्मचारी रहकर मोक्ष प्राप्त करने का ढोंग रचते हैं, मैं उनका पर्दाफाश करता हूं। और दावा करता हूं कि बिना पत्नी के इस जन्म में या उस जन्म में मोक्ष प्राप्त हो ही नहीं सकता। कुंआरे लोगों का जीवन इतना सुखी होता है कि मोक्ष उनके पास तक नहीं फटकता। मोक्ष वहां है, जहां दुःख है और दुःख वहीं है, जहां पत्नी है। पत्नी के बिना दुःखी जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

मैंने बचपन में किसी महापुरुष की यह उक्ति पढ़ी थी कि हर सफल व्यक्ति के पीछे किसी न किसी नारी का हाथ होता है। शादी से पहले इसी उक्ति को पढ़ कर खुशी और शादी के बाद इसके पढ़े जाने के लिए, रह रहकर पश्चाताप हो रहा है। उम्र के हर नए वर्ष के साथ पश्चाताप की एक अतिरिक्त किश्त मिल जाती है। कम से कम पत्नी वह स्त्री नहीं हो सकती, जिससे किसी पुरुष को सफलता मिले। व्यवहार में यह देखने में आया है कि हर असफल पुरुष के पीछे, उसकी पत्नी का हाथ होता है। मान लीजिए कोई पुरुष किसी लड़की से प्रेम सम्बन्ध बढ़ाना चाहता है, परन्तु पत्नी ऐसा करने में उसे बाधा पहुंचाती है। इस प्रकार वह पति, किसी लड़की से प्रेम करने में असफल हो जाता है। पत्नी के कारण किसी पति की असफलता का, इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है?

पत्नी शादी के बाद के चन्द वर्षों तक पति को आत्महत्या की धमकी देती है, पति बेचारा भारतीय दण्ड संहिता की दफा चार सौ अठानवे के तहत डरा-डरा रहता है। शादी के पन्द्रह बीस वर्ष बाद पत्नी पति को "पागल" करार देकर पागलखाने भिजवाने की धमकी देने लगती है। इस प्रकार पति का पूरा जीवन, यातनाओं की लोमहर्षक कहानी बन जाता है। कई समझदार पति तलाक या आत्महत्या का अभिनय करके आतंकवाद से छुटकारा पा जाते हैं। ऐसे पतियों को प्रतिभाशाली पति कहा जाता है। साधारण पति आत्महत्या की धमकी देते हैं, तो उनकी पत्नी कह देती है, कि जाओ शीघ्रातिशीघ्र कर लो आत्महत्या। इस प्रकार के पति बिना आत्महत्या किए हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

शादी के कुछ वर्षों बाद हम भी अपनी पत्नी के साथ विवश होकर पहाड़ों पर घूमने गए। हर स्थान पर पत्नी की धुंआधार शॉपिंग से तंग आकर वहीं किसी पहाड़ की चोटी से कूद आत्महत्या करने का फैसला कर लिया, परन्तु पत्नी के डर से नहीं कर सका। कई पर्वतीय स्थलों को अनमने मन से देखने के बाद, जब हमने वापिस लौटने का प्रोग्राम बनाया तो पत्नी ने कश्मीर चलने की जिद की। मैंने उसे समझाया कि वहां भीषण गर्मी पड़ रही है, तुम्हें लू लग जाएगी। उसने बोफोर्स कांड की भांति खुलते हुए कहा कि मैंने भी भूगोल पढ़ा है। मैंने उसको बहुत समझाया कि भारतीय राजनीति के मूल्यों में परिवर्तन के कारण, कश्मीर की जलवायु बदल गई है।

उसने मेरी एक न मानी, मैंने खाली जेबें दिखाते हुए कहा कि तुम अपना एक कंगन बेच दो, तो हम कश्मीर चल सकते हैं। जैसा कि हम और आप सभी जानते हैं कि त्रेतायुग से ही नारियों को सोना प्रिय है, इसलिए कश्मीर की यात्रा कैन्सिल हो गई।

बच्चों के सुख की कल्पना का पहला आघात उस समय लगा जब पड़ौस के बूढ़े पटवारी के जवान बेटे ने उससे कहा कि मेरी नौकरी नहीं लगवा सकते, तो मुझे पैदा ही क्यों किया था। दूसरा आघात उस समय लगा जब भतीजे ने अपने बाप से कहा, तुम सी.डी. खरीद कर नहीं दे सकते तो इंजीनियरिंग कैसे पढ़वाओगे। उपरोक्त अनुभव के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जो लोग सुखी दाम्पत्य जीवन की कल्पना करते हैं, वे रेगिस्तान में पानी खोज रहे हैं। हर जोड़े को दूसरा जोड़ा सुखी नजर आता है, लेकिन सच बात यह है कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक पत्नियों का एक ही रूप है अर्थात पतियों पर शासन करना। पत्नियों के इसी रूप के कारण हम आसानी से कह सकते हैं कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है।